कंब रामायण

[महाकवि कंबन-रचित मूल तमिल से अनूदित]

[भाग २]

अनुवादक
श्री न० वी० राजगोपालन

संपादक
श्रीअवधनन्दन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

प्रथम संस्करण २०००

विक्रमाब्द २०२१; शकाब्द १८८६, खृष्टाब्द १९६४

सजिल्द मूल्य :

मुद्रक

गया प्रिंटर्स

पुरानी गोदाम, गया
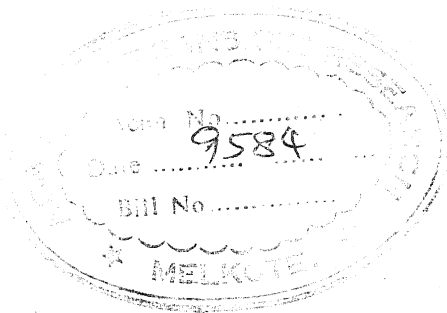
वक्तव्य

तमिल-भाषा के अतिशय श्रेष्ठ रामकाव्य 'कंब रामायण' के हिन्दी-अनुवाद का यह दूसरा भाग भी अब साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष प्रस्तुत है। नित्य उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर होनेवाली हिन्दी-भाषा के भाण्डार में इस श्रेष्ठ साहित्य को समाविष्ट कर परिषद् ने एक और भी ठोस सोपान का निर्माण किया, यह निःसंकोच कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रकाशन आज से लगभग दो वर्ष पूर्व परिषद् द्वारा संपन्न हो चुका है, जिसमें बाल, अयोध्या, अरण्य और किष्किंधा—ये चार काण्ड सम्मिलित हैं।

प्रथम भाग की प्रकाशित प्रथम प्रति राष्ट्रमूर्त्ति स्व० डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी के कर-कमलों में हमारे शिक्षा-मंत्री श्रीसत्येन्द्रनारायण सिंह ने सदाकत-आश्रम के आम्र-कानन में स्थित स्वर्गीय 'बाबू' के निवास-स्थान पर समर्पित की थी। उस मधुर मुहूर्त्त में इस ग्रन्थ के अनुवादक श्रीराजगोपालनजी भी सौभाग्यवश उपस्थित थे। 'बाबू' ने इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार को अपना अशेष-विशेष आशीर्वाद दिया था। आज वह सारा दृश्य अपनी पूरी गरिमा और करुणा में उमड़ आया है और विशेष इसलिए भी कि वही उत्सव-समारोह राजेन्द्र बाबू के जीवन का अन्तिम समारोह था; क्योंकि उसके तीन-चार दिन बाद ही वे अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर परम धाम को सिधारे। आज वे होते, तो इस अनुष्ठान की सविधि समाप्ति पर कितना आह्लादित हुए होते।

इस दूसरे भाग में शेष दो काण्डों—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड का अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इस रामायण में प्रकरणों के स्थान पर 'पटल' का उल्लेख हुआ है। इनमें से सुन्दरकाण्ड में १५ और युद्ध काण्ड में ३९ पटल सन्निविष्ट हैं। सम्पूर्ण कंब रामायण का अनुवाद लगभग १२०० पृष्ठों में मुद्रित हुआ है, जिसमें से यह दूसरा भाग लगभग ६१२ पृष्ठों में समाप्त होता है। यही कारण था कि हमें इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त करना पड़ा है।

प्रथम भाग के निदेशकीय वक्तव्य में हमने लिखा था कि परिषद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण के लिए एक नया 'सेतु' का निर्माण करेगा। हमारे इस कथन का इतना ही तात्पर्य था कि किसी काल में समस्त भारत को एक सूत्र में पिरोने का कार्य संस्कृत-भाषा ने किया था, जिसका वास्तविक स्थान आज हिन्दी ने ले लिया है। अतः, दक्षिण के सबसे दीप्त भाषा 'तमिल' के इस श्रेष्ठ महाकाव्य के हिन्दी-रूपान्तर का प्रकाशन अवश्य ही एक नवीन 'सेतु' प्रमाणित होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है।

ग्रन्थ, ग्रन्थनिर्माता और अनुवादक—इन तीनों का परिचयात्मक विवरण इसके प्रथम भाग के वक्तव्य और भूमिका में दिया जा चुका है। अब यहाँ उन बातों की पुनरुक्ति अनावश्यक है। दूसरे भाग के पढ़ने के पहले प्रथम भाग को आद्यन्त पढ़ लेना ही श्रेयस्कर होगा और तभी इस ग्रन्थ का मर्म और महत्त्व पूरा-पूरा आँका जा सकेगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् अपनी अनुवाद-योजना के अन्तर्गत यह तेरहवाँ ग्रन्थ अर्पित कर रही है। इस अनुवाद के संबंध में सुधी पाठकों से हमारा नम्र निवेदन है कि इसके अध्ययन-मनन से अपने को तथा परिषद् को धन्य करने की कृपा करें। एक बार पुनः हम इसके अनुवादक महोदय श्री न० वी० राजगोपालन (प्राध्यापक, केन्द्रीय हिन्दी-शिक्षक-महाविद्यालय, आगरा) के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं, जिन्होंने इस कठिन एवं अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य को विधिवत् सम्पन्न किया है। वस्तुतः, 'कंब रामायण' का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर देने के बाद, इस पुनीत अनुष्ठान की पूर्णाहुति के लिए, हम परम आत्मतुष्टि का अनुभव कर रहे हैं : **सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।**

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
नागपंचमी, श्रावण, २०२१ विक्रमाब्द

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
निदेशक

विषय-सूची

सुन्दरकाण्ड

युद्धकाण्ड

कंब रामायण

सुन्दरकाण्ड

मंगलाचरण

हमारे जन्मों की यह परंपरा पंचभूतों के विविध विवर्त्तनों के कारण उत्पन्न होती है तथा विविधता से युक्त है। माला को देखकर जिस प्रकार सर्प की भ्रांति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार के भ्रमात्मक ज्ञान से (यह परंपरा) संयुक्त है। ऐसी यह जन्म-परंपरा जिस परमात्मा के दर्शनमात्र से मिट जाती है, उसी वेदों के परम अर्थभूत भगवान् ने कर में चाप धारण कर लंका में युद्ध किया था।

●

अध्याय १

समुद्र-लंघन पटल

[महेन्द्र शैल पर हनुमान् विराट् रूप धारण कर समुद्र को लाँघने के लिए उद्यत हैं।]

पराक्रमी (हनुमान्) ने उस समय, अपने समीप, देवताओं के लोक (स्वर्ग) को देखा[1] और यह संशय करने लगा कि कदाचित् जलधि से आवृत लंका यही है। फिर, इस तथ्य को जानकर कि वह दुष्प्राप्य देवलोक है, मन में निश्चय कर लिया कि दर्शनीय मयूरी-तुल्य (सीता) उस लोक में नहीं है और अपना ध्यान वहाँ से हटा लिया।

(फिर, हनुमान् ने महेन्द्र शैल पर से ही) पुरातन नगरी लंका के सुरभिपूर्ण उद्यानों, यंत्रों से युक्त स्वर्णमय और मंडलाकार प्राचीरों, विजय-पताकाओं से सुशोभित नगरद्वार, रत्नजटित श्वेत सौधों, कनक-निर्मित प्रासादों की विशाल वीथियों तथा अन्य दृश्यों को देखा। तब इस प्रकार अपनी भुजाओं को हिलाया कि आठों स्वर्गलोक और आठों दिशाएँ डगमगा उठीं।

---

१. हनुमान् इतना ऊँचा हो गया था कि देवताओं का स्वर्ग उसके समीप दिखाई देता था।—अनु०

उस अन्तहीन (अर्थात्, मरण-रहित) ने उस पर्वत पर खड़े होकर उसे दबाया, तो वह नीलवर्ण पर्वत टूटकर नीचे की ओर खिसक गया। तब उसकी स्वर्णमय कंदराओं से तीक्ष्ण दंत तथा रेखाओंवाले सर्प, अपने मुँह से प्रज्वलित अग्नि उगलते हुए, घिसटते-रेंगते बाहर निकल आये। वह दृश्य ऐसा था, मानों उस पर्वत का पेट फट गया हो और उसकी आँतें बाहर निकल आई हों।

प्रवेश करने के लिए दुर्गम कंदराओं में सोये हुए केसरी (सिंह) धारा में बहनेवाले रक्त (रक्त की धारा) को उगलते हुए निर्जीव होकर भीतर ही पिस गये। विहग ऐसा घोर शब्द करते हुए, जिससे प्रलय-जलधि का गर्जन भी लज्जित हो जाय, दिनकर के प्रकाश को भी ढकते हुए आसमान में छा गये।

वे मत्तगज, जिनके मेघ सदृश शरीर को दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हथिनियाँ खड़ी थीं और जो अपनी पूँछ को बादल-भरे आकाश में उठाये हुए खड़े थे—भयभीत हो गये और अपने बलिष्ठ कानों को अपनी पीठ पर फटकारने लगे। उस फटकार से जोर की हवा उत्पन्न करते हुए अपनी सूँड़ों से वृक्षों को पकड़कर चिग्घाड़ने लगे।

उस महेंद्र शैल का स्वर्णमय शिखर, विद्युत्-जैसा चमकता हुआ टूटकर गिरा, तो उससे चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उस समय, वहाँ के व्याघ्र अपने उन नन्हें बच्चों को, जिनकी देह पर अभी रोएँ नहीं उगे थे और जिनकी आँखें भी अभी खुली नहीं थीं, अपने मुँह में उठाकर वहाँ से भागे।

वह (महेंद्र) पर्वत, जिसके शिखर शाल के वृक्षों से भरे थे, हनुमान् के चरणों के भार से (अपने स्थान से) हिल गया और ढह गया। तब (उस पर के) विद्याधर-वीर अपने हाथों में ढाल और तलवार ताने हुए ऊपर की ओर उचककर उड़ गये। वह दृश्य ऐसा था, जैसे युद्ध करते समय शत्रु-योद्धाओं के द्वारा उनके पैरों को लक्ष्य करके खड्ग चलाये जाने पर, उनसे बचने के लिए झट ऊपर की ओर उछल पड़े हों।

वह विशाल उन्नत तथा शीतल पर्वत धरती में इस प्रकार धँस गया कि ज्योतिष्पुंज नक्षत्र (सूर्य और चंद्र) तथा मेघ उस पर्वत से एकदम दूर हट गये। वह दृश्य ऐसा था, जैसे वह पर्वत एक जलपोत हो, पैने नखों तथा उठी हुई भुजाओंवाला (हनुमान्) उस पोत का मस्तूल हो और सूर्य, चंद्र आदि नक्षत्र उस जलपोत के डूब जाने से उठे हुए बुलबुले हों। (उस पर्वत के) ऊपर से गिरनेवाली जलधाराओं में गैरिक, केसर, ईंगुर, टूटकर गिरी हुई सुगंधित और सुकुमार (रक्त) चंदन, शीतल पुष्पों से झड़े हुए स्वर्णवर्ण मकरंद इत्यादि रक्तवर्ण की वस्तुओं के मिल जाने से, वे लाल होकर नीचे झरने लगीं, तो ऐसा लगा, मानों उस (महेंद्र) पर्वत का शरीर चिर जाने से उसमें से रक्त की धाराएँ बह रही हों।

वह काला पर्वत इस प्रकार घूमने लगा, जैसे समुद्र में डाली गई मथानी हो। जो मुनि उस ऊँचे पर्वत पर रहकर अपनी बलवान् इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके तपस्या करते थे, वे (अपने तप को) अधूरा ही छोड़कर अंतरिक्ष में उड़ गये और शरीर का संबंध तोड़े बिना ही (सशरीर ही) स्वर्ग जानेवालों के समान दिखाई पड़ने लगे।

दिनकर की कांति से युक्त वह पर्वत फट गया। देवांगनाएँ थरथराकर अपने

पतिदेवों के गले से लिपट गईं, तो उन देवताओं में से प्रत्येक उन शिवजी की समता करने लगा, जो तीक्ष्ण दंतवाले राक्षस (रावण) के द्वारा कैलास के उठाये जाने पर पार्वती से आलिंगित हुए थे।

(शरीर में) व्याप्त हुए मद्य तथा (अपने प्रति अपने पति द्वारा) किये गये अपराधों से बुद्धिभ्रष्ट हो जो देवांगनाएँ मान करने लगी थीं, वे अब (उस पर्वत के हिल जाने से) थरथरा उठीं, अपना क्रोध भूलकर अपने पतियों से लिपट गईं और उनके साथ अंतरिक्ष में उड़ गईं। फिर, (उस घबराहट में) पर्वत पर ही छोड़कर आये हुए अपने शुकों का स्मरण कर दुःखी होने लगीं।

जब इस भाँति के दृश्य उपस्थित हो रहे थे, तब देवता मुनि और तीनों लोकों के निवासी पंक्तियाँ बाँधकर शीघ्रता के साथ वहाँ आये और पुष्पों के गुच्छे, चन्दन, सुगंध-चूर्ण, रत्न आदि (हनुमान् पर) बिखेरकर कहा—'हे चतुर (दूत)! जाओ और विजयी बनकर लौटो।' वीर (हनुमान्) भी उत्साह से भर गया।

अति बलशाली (हनुमान् के) साथियों ने उससे कहा—विजय के निवास गिरि-सदृश कंधोंवाले, हे वीर! तुम यह सोचकर कि एक बौने मुनि के द्वारा (अपने चुल्लू में भरकर) पिये गये इस समुद्र को पार करना क्या बड़ी बात है, (इसे पार करना) मेरे लिए कौन-सा बड़ा काम है, (इस समुद्र को) तिरस्कार की दृष्टि से मत देखो। तुम (सावधानी से) जाओ। पर्वत-समान (हनुमान्) उनसे सहमत हुआ।[1]

उस समय, देवता आश्चर्य के साथ (हनुमान् के) उस विराट् रूप को देखकर सोचने लगे—इसने जो इतना बड़ा रूप धारण किया है, यह कदाचित् लंका तक ही नहीं, बल्कि उससे कहीं आगे जाने के लिए है। मालालंकृत वक्षवाले हनुमान् ने शरीर के अग्र भाग को झुकाकर अपने दोनों पैरों से दबाया, तो वह स्वर्णमय पर्वत तथा (हनुमान के) चरण धरती में धँस गये।

उस वीर ने अपनी पूँछ अतिशीघ्रता से ऊपर की ओर उठाई। अपनी बलिष्ठ टाँगों को झुकाया। वक्ष को संकुचित किया। ग्रीवा को इस भाँति झुकाया कि उसके भारी तथा स्फूर्त्ति-भरे दोनों कंधे ऊपर की ओर उभर आये। और, (गति को) तीव्र करने-वाले पवन-वेग से युक्त अपनी विशाल बाहुओं को आगे की ओर फैलाकर, तीव्र वेग से ऊपर उठ गया, तो उसका शिर ब्रह्मलोक से जा लगा। उस समय उसका वह रूप दृष्टि में नहीं समाता था।

---

१. इस पद्य के मूल की भाषा कुछ ऐसी है कि इससे एक दूसरा अर्थ भी निकलता है, जो इस प्रकार है—अति बलशाली (हनुमान् के) साथियों ने कहा—तुम जाओ और (रावण को देखकर) यह कहो कि कलभ-सदृश (राम) समुद्र के जल को सुखाकर ही सही, उसे पार करके यहाँ आयेंगे। अतः, (सीता को पाने की) तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी। महान् कैलास पर्वत को उठाने के कारण दुखती भुजावाले हे वीर (रावण) तुम्हारा यह कार्य अत्यंत क्षुद्र है। यह कहकर उसे धिक्कारना मत। जाओ, लोकमाता (सीता) के दर्शन कर आओ।—अनु०

इस प्रकार, जब हनुमान् अंतरिक्ष में उड़ा, तब भारी शाखायुक्त वृक्ष, ऊँचे बाँसों से युक्त पर्वत के शिखर, महान् गज तथा अन्य वस्तुएँ हनुमान् के साथ ही अंतरिक्ष में ऐसे उड़ चले, मानों राम की आज्ञा मानकर वे भी शीतल समुद्र से आवृत लंका की दिशा में उड़े जा रहे हों।

उस यशस्वी महानुभाव के गमन-वेग से पर्वत के अग्र भाग, हरे वृक्ष, मृग आदि तीव्र गति से उड़-उड़कर उसके साथ उस (दक्षिण) दिशा में जाने लगे, किन्तु समुद्र से आवृत लंका तक पहुँचने की शक्ति न रखने से वे समुद्र में यत्र-तत्र ऐसे गिरे, जैसे उसमें ढकेल दिये गये हों।

ऊर्ध्व गमन करनेवाले उस वीर के वेग के कारण प्राणिसमूह, वृक्ष, पत्थर, लताएँ तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ अंतरिक्ष में उड़ने लगीं और (समुद्र में) जहाँ-तहाँ गिर पड़ीं, जिससे समुद्र उमड़ उठा और वह ऊपर और भीतर से पट-सा गया। वह दृश्य ऐसा था, मानों श्रुति-समान वीर (रामचंद्र) के (समुद्र पर) क्रुद्ध होने के पूर्व ही उसमें एक सेतु बन गया हो।

समुद्र का वह प्रचुर जल (हनुमान् के गमन-वेग के कारण) फट गया। तब उसके अतल में विद्यमान नागों का प्रिय निवास (पाताल)-लोक सर्वत्र खुला हुआ दिखाई देने लगा और (नागों के मुकुट के) माणिक्य चमकने लगे। यह देखकर पराक्रमी हनुमान् ने सोचा—अहो, मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि सर्पराज के निवास के भी दर्शन कर सका।

नागलोक के निवासी—जो सदा यही याद करते रहते हैं कि किस प्रकार (गरुड) अपने विशाल पंखों से जलधि को आहत करके उसके जल-विस्तार को फाड़कर पाताल में पहुँच गया था और अति त्वरित गति से वहाँ के दुर्लभ अमृत को लेकर चला गया था—अब फिर, डरने लगे और कहने लगे कि वह महा बलशाली गरुड दुर्भाग्य से फिर आ पहुँचा है। हाय! अब हम कैसे जीवित रह सकेंगे। और, वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे।

तीक्ष्ण नख-युक्त उस वीर के प्रलयकालिक प्रभंजन जैसे वेग का सहन न कर सकने के कारण, कुछ ग्राह और मत्स्य छटपटा उठे, कुछ निःस्पंद होकर पड़े रहे, कुछ बड़े-बड़े मगरमच्छ झोंके से एक ओर फेंक दिये गये और वहीं तड़फड़ाते पड़े रहे। चमकते हुए कुछ मत्स्य मरकर तरंगों के बीच पड़े रहे। उथल-पुथल से भरे समुद्र में जो तरंगें उठीं, वे आगे बढ़कर लंका नगर से जाकर टकरा गईं।

प्रभु (राम) का दूत (हनुमान्) इतने वेग से चला कि आठों दिशाओं के दिग्गज इस डर से काँप उठे कि दिशाओं के मध्य-स्थित सभी वस्तुएँ, पता नहीं, किस दशा को प्राप्त होंगी! वह (हनुमान्) उस त्रिकूट पर्वत की समता करता था, जो आदिशेष के (बल की) स्पर्धा में प्रभंजन के द्वारा बड़े शब्द के साथ तोड़ा गया था और अति तीव्र गति से दक्षिण समुद्र में जा पहुँचा था।

हनुमान् ऐसे वेग से जा रहा था कि मंडलाकार गतिवाले अश्व (उच्चैःश्रवा)

और (इंद्र) भी उसे नहीं देख पाते थे। (वह ऐसा जा रहा था), मानों वह समुद्र तथा भूमि को अपने पदतल में करके समस्त ब्रह्मांड को ही पार करने जा रहा हो। उस समय वह लंका की ओर जानेवाले पुष्पक-विमान जैसा लगता था।

स्वर्गवासी प्रशंसा कर रहे थे। वेदज्ञ मुनि विस्मय से अभिनंदन कर रहे थे। पृथ्वी के निवासी नमस्कार कर रहे थे। इस प्रकार उड़नेवाला मारुति उस मनोहर कैलास-गिरि के सदृश दिखाई पड़ता था, जो गहरी वैर-भावना से (प्रेरित हो) महिमापूर्ण कठोर राक्षस (रावण) को और भी दबाने के निमित्त, काल-नेत्र से अलग हो उड़ रहा हो।

वह प्रतापी (हनुमान्), जो ब्रह्मचारी था, ज्ञान में कमलासन (ब्रह्मा) से भी बढ़ा हुआ था, जो समस्त लोक का आधार बनकर धर्ममय अर्थनीति को सुस्थापित करने-वाला था (यह भविष्य की ओर संकेत है), उस स्वर्णाचल (मेरु) के समान था, जो दीर्घकाल से वियुक्त अपने पुत्र, उन्नत त्रिकूट पर्वत को देखने के लिए वेग से जा रहा हो।

नक्षत्र मेघों को भेदकर नीचे गिर गये। तरंगायित समुद्र उमड़ चला। अंतरिक्ष शिथिल-सा हो गया। दिशाएँ फट गईं। मेरुगिरि हिल उठा। शिखरों और कंदराओं से युक्त पर्वत उखड़ गये। इस प्रकार, तीव्र गति से जानेवाला (हनुमान्) प्रलयकाल में अति वेग के साथ बहनेवाले और विनाशकारी अपने पिता (वायुदेव) की समता करता था।

बीस विशाल बाहुओं और दस शिरों से युक्त (रावण) ने अपनी पंचेंद्रियों को जीतकर जो तप किया था, उसका फल अब विनष्ट हो गया है। वह (रावण) भी अब विनाश को प्राप्त होगा, मानों इस (उत्पात) की सूचना देता हुआ सूर्य प्राची में उदित न होकर अब उत्तर में उदित हुआ हो और (दक्षिण में) लंका की ओर जा रहा हो, (हनुमान्) इसी प्रकार दिखाई पड़ता था।

पापकर्मी राक्षसों के निवास (लंका नामक) महानगर में रहने से डरकर, अन्य किसी निवास में भी न जाकर, मनु महाराज के वंशज अतिदक्ष राम नामक वीर की शरण में आनेवाले धर्मदेव नामक राजा के (शासन)-चक्र के समान (वह हनुमान्) शोभायमान हुआ।

वह हनुमान, जिसके कंधे अति उज्ज्वल चन्द्रिका-जैसी कांति को बिखेरकर अंधकार को दूर करते थे और दृढ मेरुपर्वत को भी लज्जित करते हुए आकाश तक उठे थे, प्रलय की वेला में, जब असहनीय अग्नि, जलधि से आवृत पृथ्वी को जला देती है, तब उत्तर दिशा में उदित होनेवाले पूर्ण-चंद्र के सदृश लगता था।

वह (हनुमान्) उस गरुड की समता करता था, जो अपनी समस्त शक्ति को दबाकर चक्रधारी मायावी (विष्णु) के अधीन रहता है, फिर भी अपना प्रताप दिखाने के लिए राक्षसों की आँतें निकालता हुआ, भूधर नामधारी सब टीलों को उड़ाता हुआ, दूरस्थ मेघों को बुहारता हुआ तथा अलौकिक शक्ति से भरे समुद्रों को भी उनके स्थान से विचलित करता हुआ उड़ा जा रहा हो।

(हनुमान्) अपनी पूँछ को इस प्रकार उठाये हुए चला कि स्वर्गवासी यह सोचते हुए विस्मय से स्तब्ध हो गये कि इस हनुमान् ने, कालपाश-सदृश अपनी पूँछ से, इस

अंडकटाह को ही नहीं, किन्तु उससे भी आगे बढ़कर सप्तलोकों को भी भयभीत करते हुए नाप लिया है, जिसे पूर्वकाल में विष्णु के एक पग ने नापा था।

बड़े कोलाहल के साथ समुद्र को लाँघनेवाले उस वीर की वह पूँछ, जिसने वेद-निरूपित भगवान् (राम) की करुणा का बल प्राप्त किये हुए हनुमान् नामक धर्ममूर्त्ति का योग प्राप्त किया था, कालपाश-सा लगता था। और, जो इस विचार से कि पापकर्मी राक्षस उसे देख न ले, उस हनुमान् के पीछे छिपकर जा रहा था।

(हनुमान् की) वह शोभायमान पूँछ इस प्रकार लहरा रही थी कि मेरु को पूरा लपेटकर पड़ा हुआ आदिशेष ही मेघवर्ण (विष्णु) भगवान् की आज्ञा से गरुड के आने पर भय से शिथिलचित्त हो, अपनी लपेटों को ढीला करके, उससे हटकर चल रहा हो।

पुष्ट, पर्वत-सदृश तथा विजयप्रद कंधोंवाले उस वानरश्रेष्ठ के गमन से उत्पन्न वेगवान् प्रभंजन ऐसे जोर से चला कि देवों को ले जानेवाले अति-उज्ज्वल गगनगामी विमान शीघ्रता से एक दूसरे के साथ टकरा गये और चूर-चूर होकर बड़े समुद्र में जा गिरे।

दक्षिण हस्त में वज्रायुध को धारण करनेवाले (इन्द्र) के निवास देवलोक में इस विचार से व्याकुलता छा गई कि समुद्र को लाँघनेवाले इस हनुमान् का, (जो इतने वेग के साथ जा रहा है) न जाने क्या उद्देश्य है ? इधर भूलोक भी इस विचार से सिकुड़-सा गया कि तीक्ष्ण तथा वक्र दंतवाले इस वीर का यह तीव्र वेग निष्ठुर राक्षसों के लंकानगर तक ही सीमित नहीं रहेगा (किंतु उसके आगे भी बढ़कर कुछ उत्पात करेगा)।

उस समय उस महिमा-भरे (हनुमान्) के शरीर (की गति) से उत्पन्न जो हवा चली, उससे दिगंत तक व्याप्त समुद्र हलचल से भर गया। जिन तिमिंगिलगिलों[1] के संबंध में लोक तथा शास्त्र में यह कथन प्रचलित है कि उनका शरीर असंख्य योजन-पर्यंत का होता है, वे भी दूसरी मछलियों के साथ मरकर उतराने लगे।

अनुपम आकारवाला वह (हनुमान्) जब (इस प्रकार से) जा रहा था, तब उसकी दोनों विशाल बाहुएँ—जो उसके वेग को बढ़ा रही थीं, तेजी के साथ आगे-पीछे हो रही थीं तथा अपना उपमान स्वयं ही बन रही थीं—यों शोभायमान हो रही थीं, जैसे चिरंतन सद्गुणों से भरित वरप्रद (राम) तथा उनके प्राणस्वरूप अनुज दोनों, हनुमान् के आगे-आगे चल रहे हों।

पर्वतोपम वह (हनुमान्) जब प्रचंड वायु के वेग से जा रहा था, तब मैनाक पर्वत समुद्र के भीतर से गगनोन्नत हो उसी प्रकार ऊपर उठ आया, जिस प्रकार दिग्गजों में श्रेष्ठ अति बलिष्ठ, पूर्व दिशा की रक्षा करनेवाला, शुंड-शोभित (ऐरावत) गज, पहले कभी क्षीर-सागर से ऊपर उठा था।

(वह मैनाक पर्वत ऐसा ऊपर उठ आया कि) उसके अत्युन्नत सहस्र स्वर्णमय शिखर प्रकाशमय किरणें फैलाने लगे। निरंतर बहनेवाले निर्झर-समूह उसके उत्तरीय-जैसे शोभित

---

१. कहा जाता है कि समुद्र के मत्स्यों में सबसे बड़ा मत्स्य 'तिमि' होता है। उससे बड़ा 'तिमिंगिल' होता है, जो तिमि मत्स्य को निगल जाता है। उससे भी बड़ा 'तिमिंगिलगिल' होता है, जो तिमिंगिल को भी खा जाता है।—अनु०

होने लगे। वह ऐसा लगा, मानों संसार में दुर्जनों के रहने के कारण उनके विनाश के लिए, मकरों से भरे समुद्र से विष्णु भगवान् ऊपर उठ आये हों।

शास्त्रों में प्रतिपादित ज्ञेय विषयों का (गुरु-मुख से) श्रवण न करने के कारण क्षुद्र व्यक्ति जिस प्रकार पहले इंद्रियों के विषयों का आस्वादन करके फिर उन्हीं में डूब जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी समुद्र-मंथन के समय, पहले (मंदर-पर्वत को) धारण करके, फिर उसके भार का सहन न करने के कारण धँस गई थी और वह मंदर डूब गया था। फिर, विष्णु ने कच्छप के रूप में आकर उसे उठाया, तो जिस प्रकार वह ऊपर उठ आया, उसी प्रकार अब वह मैनाक भी समुद्र के भीतर से ऊपर उठ आया।

दोनों पार्श्वों में अपने अति दृढ तथा सुन्दर पंखों को फैलाकर, प्रशंसनीय शरीर-ज्योति से प्रकाशमान हो, सुपर्ण नामक पक्षिराज जब स्वर्ग से छीनकर लाये गये अमृत को लेकर विविध विभूतियों से पूर्ण जलधि को चीरकर (पाताल में) प्रविष्ट हुआ था और फिर, वह जिस प्रकार वहाँ से ऊपर उठ आया था, उसी प्रकार वह मैनाक भी समुद्र से ऊपर उठा।

सृष्टि के प्रारंभ में जब सर्वत्र जल-ही-जल व्याप्त था, तब सृष्टि का आदि और अन्त बनकर अदृश्य रूप में रहनेवाले परमात्मा के करुणामय संकल्प को प्रकट करता हुआ एक अनुपम स्वर्णमय अंड निकला था। उस अंड से वह ब्रह्मा निकला, जिसने तीनों लोकों को सृष्टि की और समस्त प्राणियों को उत्पन्न किया। उसी स्वर्णमय अंड के समान अब वह मैनाक समुद्र से ऊपर उठा।

आदिकाल में, यह सोचकर कि इस जल में मुझे उत्पन्न करनेवाले अपने पिता-परमात्मा को जबतक मैं प्रत्यक्ष न देखूँगा, तबतक कोई सत्कार्य नहीं करूँगा, वह प्रथम ब्राह्मण (ब्रह्मा) मानों शीघ्र उस जल में निमग्न हो गया हो और उसके भीतर ही अपनी तपस्या पूरी करके फिर ऊपर उठा हो। उसी प्रकार वह मैनाक समुद्र से ऊपर उठा।

पुष्पमाला के कारण उत्पन्न अपराध न सहन करके क्रोधी (दुर्वासा[1]) मुनि ने शाप दिया, तो उससे इन्द्र की जो संपत्तियाँ समुद्र में डूब गई थीं, उनको फिर वह अनादि प्रथम देव (विष्णु) बाहर निकालने लगे थे। उस समय, देवासुरों द्वारा मथित समुद्र से जिस प्रकार चन्द्रमा प्रकट हुआ था, उसी प्रकार अब मैनाक समुद्र से निकला।

उसके कुछ शिखर रंग में केसर पुष्प की समता करते थे, तो कुछ नील रंगवाले थे। कुछ शिखर जल में जड़ फैलानेवाली प्रवाल-लताओं से आवेष्टित थे, तो कुछ अरुण स्वर्ण से रंजित थे। इस प्रकार के शिखरों की घाटियों में जो मकर अपनी मादाओं के साथ सोये पड़े थे, वे अब निद्रा से जगकर निःश्वास भरते हुए इधर-उधर भागने लगे।

उसके शिखरों में वक्र रूपवाली तथा पूर्ण गर्भवाली शुक्तियाँ बोल रही थीं। वहाँ फैला हुआ शैवाल आकाश में छाये हुए बादलों की समता करता था। स्फटिक-शिलाओं

---

१. देवेन्द्र के प्रति दुर्वासा के शाप की कहानी बालकांड में वर्णित है।—अनु०

के तल पर, शंख अपने जाये बड़े-बड़े मोतियों के मध्य इस प्रकार प्रकाशित हो रहा था कि उससे नक्षत्रों से घिरे हुए धवलचन्द्र का महत्त्व भी मिट गया।

उस पर्वत के शिखर, जिनकी शिलाओं के मध्य नाना प्रकार के सहस्रों रत्न, अपने-अपने स्थान से चमक रहे थे—हाथों के समान ऊपर की ओर उठे हुए थे। अतः, वह दृश्य ऐसा था, मानों वह पर्वत पुराने समुद्र के अंतराल में निमग्न होकर, उज्ज्वल कांति-पूर्ण विविध रत्न-समूहों को हाथों में भरकर ऊपर उठा हो।

अट्टालिकाओं पर शोभायमान दीर्घ ध्वजाओं की पंक्तियों के समान उस (मैनाक) पर अति सुन्दर ढंग से उज्ज्वल निर्झर प्रवाहित हो रहे थे। इस प्रकार, वह मैनाक (हनुमान् को) सहायता करने के विचार से ज्योंही समुद्र से ऊपर उठा, त्योंही तिमि आदि बड़े-बड़े मत्स्य एक साथ उन निर्झरों की ओर लपक पड़े।[1]

छह संख्यावाले निष्ठुर शत्रुओं तथा तीन दोषों को दग्ध कर देनेवाले ज्ञान के प्रकट होने से, जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष पूर्व के संदेहों से मुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार विषनाग, जो दीर्घ काल से उस पर्वत की कंदराओं में पड़े दुःखित हो रहे थे, अब समुद्र से बाहर निकलकर श्वास के अवरोध से उत्पन्न दुःख से मुक्त हो गये।

अविचल मनवाले (हनुमान्) ने देखा—स्वच्छ मुकुट पर रखा हुआ उड़द जितने समय के भीतर लुढ़क जाता है, उतने ही समय में वह महान् पर्वत आकाश और धरती के अंतराल को पूर्ण रूप से भरता हुआ ऊपर उठ आया। वह (हनुमान्) विस्मय में पड़कर सोचने लगा कि यह क्या है?

समुद्र को लाँघकर चलनेवाले हनुमान् ने यह सोचकर कि यह बड़ा पर्वत, जो समुद्र के मध्य उठकर खड़ा हुआ है, कोई हितकारक नहीं है, अपनी छाती से उसपर ऐसा धक्का लगाया कि वह पर्वत, शिखर नीचे की ओर और पदतल ऊपर की ओर होकर औंधा लुढ़क गया। हनुमान् त्वरित गति से स्वर्गलोक तक ऊपर उठ गया तथा अंतरिक्ष में (मैनाक को पार करता हुआ) आगे बढ़ने लगा।

उत्तुंग तरंग-पूर्ण समुद्र में छिपा रहनेवाला वह पर्वत हनुमान् के ढकेलते ही अत्यंत क्लान्त हो गया। फिर भी, मन में चिंताकुल होकर अदम्य प्रेम के कारण ऊँचा उठकर हनुमान् के पीछे-पीछे चला और छोटे मनुष्य का रूप लेकर कहने लगा—मेरे प्रभु, मैं जो कहता हूँ उसे सुनो—

"हे प्रभु! (तुम मुझे) पराया मत समझो। (प्राचीन काल में) सब पर्वत पंखोंवाले थे और मनमाने (जहाँ-तहाँ बैठकर) प्राणियों का विनाश करते थे, अतएव रुद्र (इन्द्र?) ने यह समझकर कि ये पर्वत दुष्ट प्रकृतिवाले हैं, लोक-कल्याण के लिए अपना वज्र चलाकर उनके पंखों को काट दिया। उस समय, वायुदेव ने मुझे इस समुद्र में छिपाकर मेरी रक्षा की तथा मेरे मन में अपने प्रति भक्ति उत्पन्न कर दी।

---

१. भाव यह है कि मैनाक के एकाएक बाहर आ जाने से उसके ऊपर रहनेवाले मीन जल की तलाश में झरनों की ओर दौड़ पड़े!—अनु०

हे उन्नत से भी उन्नत कंधोंवाले ! तुम उस वायुदेव के प्रिय पुत्र हो, अतः मैंने प्रेम से प्रेरित होकर तुम्हारा अन्य कोई उपकार न कर सकने के कारण यह सोचा कि यदि तुम मेरे स्वर्ण-शिखर पर (कुछ समय) विश्राम कर लो, तो मैं धन्य हो जाऊँगा।

हे न्याय पर दृढ रहनेवाले ! जलनिधि ने मुझसे कहा कि वायुदेव का प्रिय पुत्र देवताओं के उद्धार के हेतु कालमेघ-वर्ण (राम) की आज्ञा से सीता का अन्वेषण करता हुआ आ रहा है। अतः, तुम अनन्त अंतरिक्ष में उठ जाओ (जिससे वह तुम पर विश्राम कर सके)। इससे बढ़कर सौभाग्य की बात दूसरी क्या हो सकती है।

माला से अलंकृत स्वर्णमय विशाल वक्षवाले ! तुम यह जानो कि यह जन तुम्हारे लिए माता से भी अधिक हितकारी है। अभी कुछ क्षण मुझपर विश्राम करो। मैं यथाशक्ति तुम्हारा जो सत्कार करता हूँ, उसे स्वीकार करो। बंधुजनों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने यहाँ आये हुए प्रियजन का सत्कार करें।"—इस प्रकार मैनाक ने हृदय-पूर्वक वचन कहे।

सुगंधित कमल-सदृश कांति-पूर्ण वदनवाले वीर (हनुमान्) ने ये वचन सुनकर, उसे निष्कलुष जानकर मंदहास किया। मुस्कराकर जब वह अपनी दिशा में जाने लगा, तब इतने में उस पर्वत के अत्युन्नत स्वर्ण-शिखर को अपने निकट देखा।

"मैं थका नहीं हूँ। इसका कारण मेरे संरक्षक भगवान् (राम) की मेरे ऊपर करुणा ही है। जबतक मेरे मन का संकल्प पूर्ण न हो, तबतक मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा। अमृत-धारा के प्रवाहों से भरे हुए तुम्हारे मन में जब मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, तभी मैंने (तुम्हारे पास) विश्राम पा लिया। भोजन भी पा लिया। इससे बढ़कर अब तुम्हारा दूसरा कर्त्तव्य क्या होगा ?

याचकों की इच्छा को पूर्ण करते हुए—उत्तम दाता, मध्यम दाता तथा अधम दाता—सब प्रकार के दानियों में जो गुण समान रूप से रहता है (अर्थात्, प्रेम) वही सर्वश्रेष्ठ सत्कार है। वही प्रेम अस्थियों से भी बढ़कर शरीर का दृढ आधार होता है। उस अस्थि को भी दान[1] करने की प्रेरणा देनेवाले प्रेम से बढ़कर श्रेष्ठ सत्कार और क्या हो सकता है ?

मैं अब शीघ्र ही (त्रिकूट) पर्वत पर स्थित लंका में जा पहुँचूँगा। यदि मैं स्वामी की आज्ञा को दक्षता के साथ पूरा कर सकूँगा, तो (लंका से) लौटकर तुम्हारे सत्कार को—अच्छे भोज को—स्वीकार करूँगा।" यह कहकर उस सत्यव्रत (हनुमान्) ने मैनाक से आज्ञा ली और आगे चला। मैनाक की दृष्टि तथा प्रज्ञा भी उसका अनुगमन करती हुई उसके पीछे-पीछे चली।

नभ में, अरुणकिरण (सूर्य), शीतल चंद्रमा, देवों के विमान, नक्षत्र, मेघ तथा विश्व के विविध पदार्थ (हनुमान् के गमन-वेग के कारण) एक होकर मिल गये। उस

१. इस पद्य में दधीचि की कहानी की ओर संकेत किया गया है, जिसने अपनी अस्थियों का ही प्रेम से दान कर दिया था।—अनु०

समय वह (हनुमान्) उस प्रलयकालिक प्रभंजन के समान था, जिसके वेग से परस्पर न मिलनेवाले पदार्थ भी सम्मिलित हो जाते हैं।

समुद्र पर हनुमान् के गमन-वेग को देख सूर्य यह सोचकर आशंकित हो उठा कि जब यह अपने पैरों को सीधा करके चल भी नहीं सकता था, धरती पर घुटनों के बल चलता था, उस समय (शैशव) अवस्था में ही मेरे रथ पर लपक पड़ा था। इस समय न जाने किस पर आक्रमण करने के लिए यह इस प्रकार उड़ा जा रहा है ?

अपने प्रकाश से गगन को भरनेवाले सूर्य को ग्रसने के लिए आनेवाले, करवाल जैसे चमकनेवाले श्वेत दंतों की पंक्तियों से विभूषित ग्रह (राहु) की समता करती हुई उसकी पूँछ ऊपर उठी हुई थी। ऐसी पूँछ से विशिष्ट, आकाश को दो भागों में विभाजित करनेवाला उसका शरीर, एक दिवस के समान था—(क्योंकि, उसके कारण इस विश्व के ऊपर के भाग में प्रकाश और नीचे के भाग में अंधकार फैल रहा था)।

वहाँ एकत्र देवों ने सुरसा नामक परिशुद्ध चित्तवाली देवी से यह कहकर प्रार्थना की कि यह हनुमान् तीनों लोकों में बढ़ी हुई विपदा को दूर करने के हेतु सहायक होकर जा रहा है। इसकी यथार्थ शक्ति की परीक्षा करके तुम हमें बताओ। सुरसा एक राक्षसी का रूप लेकर हनुमान् के सम्मुख उपस्थित हुई।

वह सुरसा (हनुमान् से) यह कहकर कि हे अतिपुष्ट वानरजन्म ! यम को भी भयभीत कर जीवित रहनेवाले ! मेरे योग्य मांस का आहार बनकर तुम यहाँ आये हो, उसे निगलने का अभिनय करती हुई अपने विशाल मुँह-रूपी गह्वर को खोलकर, अत्युन्नत गगनतल में अपना सिर उठाये खड़ी रही।

सुरसा ने कहा—हे बलशाली ! तुम अग्नि-समान मेरी भूख की ज्वाला को शांत करने के लिए ही अतिशीघ्र मेरे निकट आ पहुँचे हो, अब तुम स्वयं ही मांस का स्वाद चाहनेवाले, वक्र दंतों से पूर्ण, मेरे मुख में समा जाओ। अब अंतरिक्ष में तुम्हारे आगे जाने के लिए और कोई मार्ग नहीं रह गया है।

तुम एक स्त्री हो और बड़ी भूख की ज्वाला से पीडित हो रही हो। स्वर्गवासी देवों के प्रभु राम की आज्ञा पूर्ण करके यदि मैं लौट आऊँगा, तो मैं (तुम्हारा आहार बनकर) अपने को तुम्हें सौंप दूँगा।—यों मित्रतापूर्ण वचन कहकर हनुमान् मुस्कराया।

तब उस (सुरसा) ने कहा—तुम्हारी सौगंध खाकर कहती हूँ कि सप्तलोकों के देखते हुए तुम्हें मारकर, तुम्हारे शरीर को आनंद से खाऊँगी और अपनी भूख मिटाऊँगी। उस ज्ञानी ने उसका उपहास करते हुए कहा—मैं एकाकी हूँ। तुम्हारे अति भीषण मुक्त वदन में प्रविष्ट होकर फिर जाऊँगा, यदि तुमसे हो सके, तो मुझे खाओ।

उस समय, वह राक्षसी अनेक अंडगोलों को एक साथ खाने पर भी न भरनेवाली अपने अति विशाल वदन-रूपी गह्वर (मुँह) को खोलकर बिना हिचकी लिये ही (हनुमान् को) निगल जाने के लिए तैयार हो खड़ी रही। उसे देखकर वह वीर आसमान में इस प्रकार बढ़ गया कि सब दिशाओं में व्याप्त उस राक्षसी का मुँह भी उसके सामने छोटा दीखने लगा।

उस प्रकार बढ़ा हुआ वह (हनुमान्) झट अत्यंत लघु रूप लेकर, राक्षसी के विशाल वदन से उसके पेट में यों पहुँच गया कि उसका भोजन ही बन गया हो। किंतु एक बार उस (राक्षसी) के निःश्वास लेने के पहले ही वह बाहर निकल आया। उस विस्मयकारी कार्य को देखकर स्वर्गवासी देवों ने यह कहकर कि यह हमारी रक्षा करने में समर्थ है, पुष्प बरसाये और अनेक आशीर्वाद दिये।

कार्य-व्रतधारी वह हनुमान् पूर्ववत् अपने उज्ज्वल शरीर को फुलाकर अपने मार्ग में जाने लगा, तो उस सुरसा ने अपना प्राकृतिक रूप धारण करके माता से भी अधिक प्रेम के साथ कहा—'अब तुम्हारे लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है।' और, उसकी प्रशंसा करती खड़ी रही। कांचनमय देहवाला (हनुमान्) भी अनेक बधाइयाँ पाता हुआ आगे बढ़ा।

किन्नरों ने गीत गाये। देव-रमणियों ने गीतों के विविध भेदों को नर्त्तन के साथ निरूपित करके गाया। सब भूत (हनुमान् के) पीछे-पीछे जाते हुए उनका स्तवन करने लगे।[1] भूसुरों ने श्रेष्ठ वेद-पाठ किया। मंद मारुत बहुत सुखदायक हो बहने लगा।

मंदार—पुष्पों के परागों को लानेवाले मलयानिल (हनुमान् के) रक्तकमल-जैसे उज्ज्वल वदन पर के पसीने को पोंछ रहा था। उसके कान विद्याधरों से अपने-अपने स्थानों में, वादित होनेवाले वीणा-वाद्यों के मधुर गांधार का आनंद ले रहे थे।

(जब इस प्रकार हनुमान् समुद्र को पार कर रहा था, तब) हलाहल विष-सदृश अंगारतारा नामक राक्षसी समुद्र से इस प्रकार उठी, मानों भयंकर नील समुद्र पर, उमड़ते जल से युक्त एक दूसरा समुद्र छा गया हो। वह (राक्षसी) हनुमान् को देखकर गर्जन कर उठी—'मुझे पार कर जानेवाला तू कौन है?'

वह राक्षसी, जिसकी आँखें इतनी विशाल थीं कि उसके सामने माप के सब साधन समाप्त हो जाते थे (अर्थात् , वे मापी नहीं जा सकती थी) और जिसकी दृष्टि दस मील दूर तक जाती थी, अपने पदों की पायलों से समुद्र-घोष के समान शब्द उत्पन्न करती हुई, समुद्र से उठी। वह आदिकाल में, वेद-प्रतिपादित परम ज्योति के साथ युद्ध करने की इच्छा से प्रलयकालिक जलोदधि में गमन करनेवाले मधु-कैटभ की समता कर रही थी।

वह अर्धचंद्रसदृश खड्ग-दंतों से युक्त थी। नीलकंठ के सदृश, शुंड-सहित हाथी के चर्म को अपने शरीर पर डाले हुई थी। और, उसका अति विशाल मुँह ब्रह्मांड के लिए निर्मित आवरण (गिलाफ) जैसा था।

वह राक्षसी, सिर ऊँचा करके खड़ी हो गई, तो उसके बलिष्ठ चरणों को लहराते हुए सागर का जल धोने लगा और उसका शिर आकाश से टकराने लगा। तब विचारवान् हनुमान् ने जान लिया कि यह एक ऐसी स्त्री है, जिसने करुणा के साथ-साथ धर्म को भी चबा डाली है।

हनुमान् ने देखा कि (उस राक्षसी के) खुले मुँह में से होकर जाने के अतिरिक्त,

---

१, हनुमान् रुद्र का अंश माना जाता है। अतः, भूतगण उसका स्तवन करने लगे।—अनु०

विशाल धरती को ढके हुए अनंत गगन में जाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसपर पहले वह चिंताग्रस्त हुआ, किन्तु फिर सोचा कि उसके उदर को चीर दें। अतः, उसके समीप जाकर इस प्रकार बात बढ़ाने लगा—

(हनुमान् ने राक्षसी से कहा—) तुम्हें देखने से लगता है कि तुमने छाया-ग्रहण का वर प्राप्त किया है (किसी की परछाइँ को पकड़कर उसे आक्रांत करने का वर पाया है)। तुम्हारे द्वारा मेरी परछाइँ को ग्रहण करने पर भी, किंचित् भी श्रांत हुए बिना मैं जाता रहा। मेरे वैसे वेग को देखकर भी तुमने मुझे पहचाना नहीं और अपने वदन-रूपी गह्वर से समस्त अंतरिक्ष को भरकर मेरे मार्ग को रोककर खड़ी हो गई। तुम कौन हो और क्यों यहाँ आकर खड़ी हो?

(हनुमान् के वचन सुनकर अंगारतारा ने उत्तर दिया—) तुम यह विचार छोड़ दो कि मैं केवल स्त्री हूँ। (मेरे पास आने पर), देवताओं का भी मरण निश्चित है। स्वयं यम ही आ जाये (और मेरे शिकार को बचाने की चेष्टा करे), तो भी मेरे दृष्टि-पथ में आगत प्राणियों को खाने की मेरी इच्छा का दमन नहीं कर सकता।

(इस प्रकार कहकर) उस राक्षसी ने, खड्ग-दंतों से युक्त अपने कराल मुँह को विशाल रूप में खोला। उस महिमापूर्ण (हनुमान्) ने उसके उदर में प्रवेश किया। 'हनुमान् मर गया'—यह सोचकर धर्मदेव भी रो पड़ा। देवता व्याकुल हो उठे। किंतु, एक क्षणमात्र के भीतर ही, (उसके उदर से) वह इस प्रकार बाहर निकल आया, मानों भीमकाय नरसिंह ही (स्तंभ को भेदकर) बाहर निकला हो।

मद्य प्रवाहित करनेवाले मुँहवाली वह राक्षसी दहाड़ कर रो उठी। इधर क्षण-भर में उसकी आँतों को अपने विशाल दीर्घ हस्तों में लिये हुए हनुमान् अंतरिक्ष में प्रकट हुआ। तब वह उस अतिबली गरुड़ जैसा लगा, जो कँटीले वृक्षों से भरे पर्वत की कंदरा में घुसकर वहाँ के कठोर नागों को लेकर बड़ी शीघ्रता के साथ ऊपर उड़ा हो।

अमरत्व का वर पाये हुए महापुरुषों में तिलक के समान वह (हनुमान्) उस (राक्षसी) के मुँह में घुसकर उसकी आँतों को उखाड़कर झट ऊपर उठ गया। वह ऐसा लगा, जैसे तेज हवा में कोई पतंग उड़ रहा हो, जिसकी डोरी धरती से आसमान तक फैली हुई हो और जिसकी पूँछ लहरा रही हो।

(वह दृश्य देख) दानव चिंताकुल हो पसीने-पसीने हो गये। स्वर्गवासी आनंद से कोलाहल कर उठे। ब्रह्मा ने आनन्दित होकर प्रशंसा करते हुए पुष्प बरसाये, जिससे वह समुद्र भी पट-सा गया। विशाल कैलास पर स्थित अविनाशी भगवान् भी देखता रह गया और ऋषि आशीर्वाद देते रहे।

उस राक्षसी को मुँह से उदर तक (उस हनुमान् ने) चीर डाला, जिससे उसका अंत हो गया। इधर हनुमान् क्षणमात्र में मेरु को भी नीचा करता हुआ ऊपर उठा और मन से भी अधिक वेग से अंतरिक्ष में सूर्य के मार्ग से होकर उड़ा।

उस हनुमान् ने सोचा—'यह अपार समुद्र वर्णन से परे है। यह अंतरिक्ष भी अन्तहीन है। अभी (बाधा देने के लिए) आये हुए इस प्राणी-जैसे किसी भी प्राणी

के आने पर मुझे विचलित नहीं होना चाहिए। मुझे आगे बढ़कर अवश्य लंका में पहुँच जाना चाहिए। तभी सब विघ्न दूर होंगे (अर्थात्, जबतक मैं लंका में नहीं पहुँच जाऊँगा, तबतक कोई-न-कोई विघ्न होता ही रहेगा)। अतः, अब मुझे विलंब नहीं करना चाहिए। शीघ्र लंका पहुँचना चाहिए।

हितकारी धर्म की उपेक्षा करके अज्ञ राक्षस जो पाप करते रहते हैं, उनसे अनेक विपदाएँ उत्पन्न हो गई हैं। उन विपदाओं को दूरकर, उद्धार पाने का मार्ग क्या है? 'राम' कहते ही समस्त विपदाएँ दूर हो जायँगी। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है—इस प्रकार सोचकर उस (हनुमान् ने) उसी (राम-नाम) का आश्रय दृढतापूर्वक लिया।

मधुस्रोत से भरे अलौकिक कल्पवृक्ष से शोभायमान देवलोक के समीप में, अंतरिक्ष-मार्ग से जानेवाले वह हनुमान्, स्वर्णमय कलशों तथा यंत्रों से युक्त और (प्रहरियों से) सुरक्षित प्राचीर पर न उतरकर लंका नामक उस पुरातन नगरी से कुछ दूर हटकर, हरे-भरे उद्यानों से शोभायमान एक भारी तथा अनुपम प्रवाल-पर्वत पर जा उतरा।

बहुत ऊँचाई पर चलनेवाला वह (हनुमान्) जब उस (प्रवाल-पर्वत) पर झपटकर उतरा, तब जलधि से घिरी लंका का वह पर्वत विचलित होकर, इधर से उधर और उधर से इधर होकर डूबने-उतराने लगा, जैसे कोई नाव, आँधी और वर्षा के आघातों से प्रताडित होकर डगमगा उठी हो और (नाव में) रखी गई वस्तुएँ छितरा रही हों।

(लंका के) सम्मुख स्थित इस प्रवाल-पर्वत पर, जिसका मूल धरती के अधोभाग तक गया था और शिखर स्वर्ग की सीमा को छूता था—खड़े होकर उस हनुमान् ने निहारा, तो (सामने) उस लंकापुरी को अति स्पष्ट रूप में देखा, जो स्वर्गपुरी नामक सुन्दरी के अपना सौंदर्य देखने के लिए रखे हुए मुकुर के सदृश थी।

उस अति रमणीय नगर को देखकर अपने कमल-करों को बाँधे हुए हनुमान् सोचने लगा—यह कहना कि देवों की स्वर्णपुरी (अमरावती) इस नगरी के समान है, अज्ञता है। आह! वह अमरावती क्या इससे अधिक सुन्दर हो सकती है? समस्त ब्रह्मांड पर शासन करनेवाला रावण इस नगरी में निवास करता है, यही तथ्य इसके महत्त्व का सबसे बड़ा कारण है।

'स्वर्ग महिमापूर्ण है और अनुपम सौंदर्य से युक्त है'—ऐसा कहना सत्य नहीं है। क्योंकि, स्वर्ग वही होता है, और वेदों का निश्चय भी यही है कि, जहाँ सब अभीष्ट वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हों और अलभ्य भोगों को अनंत परिमाण में इस प्रकार भोगने का संयोग मिले कि उनसे कभी तृप्ति न हो।

कहते हैं कि इस नगरी का प्रसार सात सौ योजन है। तीनों लोकों के श्रेष्ठ पदार्थ इस नगर में भरे पड़े हैं। अति सूक्ष्म मति से ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के ज्ञाता और उनका विवेचन करने में चतुर पुरुष भी (इसके वैभव को) देख नहीं सकते; क्योंकि देखनेवाली इंद्रियाँ असीम नहीं हैं, किन्तु इस नगर के वैभव निस्सीम हैं। (१—६४)

●

अध्याय २

नगरान्वेषण पटल

धनी घटाओं को पार कर चंद्र को छूनेवाले (लंकानगर के) प्रासाद, ऐसा संशय उत्पन्न करते थे कि क्या ये सोने को ढालकर उसमें रत्नों को जड़कर निर्मित किये गये हैं, या ये बिजली के बने हैं, या सूर्य की कांति से निर्मित हुए हैं, या और किसी पदार्थ से बने हैं ?—कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता।

(इस नगर के सौध) इतने उन्नत थे कि उन्हें देखने पर ऐसा भान होता था कि देव-सौधों के सहित देवलोक भी इस नगरी का एक भाग ही है। देवताओं को भी भयभीत करते हुए, विशाल मेरु को विचलित करनेवाले वायुदेव जो मंद लहरें उत्पन्न करता था, वे उन (सौधों) में ही प्रवाहित होती थीं।

चाशनी के समान मधुर बोलीवाली (दासियाँ) विशाल घन-घटाओं की बिजलियों को पकड़-पकड़कर (उनका झाड़ू बनाकर) उनसे (प्रासादों के) बाहरी भाग में बिखरे हुए सुगंधि-चूर्ण को बुहार देती थीं और अँगुलियों में भरकर आकाशगंगा से जल लाकर उनपर छिड़कती थीं।—उस नगरी में इस प्रकार के सौध थे।

महावर से रंजित और संगीत उत्पन्न करनेवाली किंकिणी से भूषित (राक्षस-स्त्रियों के) पैर, मनोहर तथा रक्तवर्ण प्रवाल के समान अपनी कांति बिखेरकर मेघों के अंजन-वर्ण को मिटा देते थे (उन्हें रक्तवर्ण कर देते), अतः उन (राक्षसियों) के शरीर के उपमानभूत वे मेघ अब उनके आभरण-भूषित (रक्तवर्ण) केशों के उपमान बन गये थे।

आकाश-गंगा, उस नगर के प्रासादों के आँगनों में प्रवाहित होती थी, जिससे सद्योविकसित कस्तूरी-गंधयुक्त कल्प-पुष्प की सुगंध वहाँ फैल जाती थी। (उन कल्प-पुष्पों के) मधु का इच्छा-भर पान करके डूबे हुए भौंरे, अन्य मधु की चाह से वहाँ के सुरभित रक्त-कमलों पर आ बैठते थे।

वंशी, वीणा, याक् इत्यादि के नाद को परास्त करनेवाली, प्रासादों के शुकों को भी मृदु-मधुर बोली सिखानेवाली राक्षस-रमणियाँ तथा चारों ओर स्थित मनोहर, उन्नत, रत्नमय भित्तियों में दृष्टिगत होनेवाले उनके प्रतिबिंब—दोनों की वास्तविकता को पहचानना कठिन था। वहाँ के सौध इस प्रकार के थे।

यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार के वे सौध इंद्र के आवासभूत भव्य प्रसाद जैसे थे, तो यह कथन भी दोषपूर्ण होगा (क्योंकि, इनमें उपमान-उपमेय भाव उचित नहीं है।)[1] यदि इस कथन को सत्य माना जाय, तो राक्षसों के ऐश्वर्य की एक सीमा निर्धारित हो जाती है, (जो वास्तव में नहीं है।) इतना ही नहीं, वह उपमा भी उसी प्रकार की होगी (अर्थात्, सौध ही नहीं, राक्षसों की संपत्ति का भी उपमान इंद्र की संपत्ति होगी।)

---

१. तात्पर्य यह है कि इन्द्र का ऐश्वर्य सीमित है और राक्षसों का असीम। अतः, इनमें उपमान-उपमेय भाव संगत नहीं है।—अनु०

कोई रत्न, चाहे वह कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, (उसके सबंध से) यह नहीं कह सकते कि वह विष्णु के वक्ष पर शोभित (कौस्तुभ नामक) रत्न से भी श्रेष्ठ है। (उसी प्रकार) उत्तम देवशिल्पी विश्वकर्मा ने, श्रेष्ठकला-निर्माण का दृढ संकल्प करके, अपने हाथों से, शिल्प-चातुरी से युक्त जिस अति सुन्दर (लंका) नगरी का निर्माण किया है, वह भी उसी प्रकार की है (अर्थात्, कौस्तुभ मणि के समान ही श्रेष्ठ है और तीनों लोकों में कोई नगरी इसकी तुलना नहीं कर सकती है)।

वह (लंका) नगरी, (संसार के) सब प्राणियों के अपने भीतर एक साथ निवास करने योग्य होने से, लोकनायक विष्णु के उदर की समता करती थी। वर्त्तुलाकार ब्रह्मांड के भीतर रहनेवाले, सूर्य के सात अश्वों को छोड़कर, बाकी सब अश्व इसी नगरी में रहते थे।

(यहाँ के) वृक्ष सब कल्पवृक्ष ही थे। सब प्रासाद कांचनमय ही थे। राक्षस-स्त्रियों की सब दासियाँ अप्सराएँ ही थीं। यहाँ देवता अपनी शक्ति खोकर राक्षसों की चाकरी करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहते थे। यह सारा ऐश्वर्य, किसी को अनायास ही प्राप्त होनेवाला नहीं है, यह तो बड़ी तपस्या का ही फल हो सकता है।

युद्ध में पराजित होकर (रावण से) तिरस्कृत होने से आठ गज दूर-दूर, आठों दिशाओं की सीमा में भाग खड़े हुए और एक अनुपम तथा महिमामय पंचहस्तवाले गज (अर्थात्, विनायक) तथा सूर्य का विलक्षण एकचक्र रथ—यही उस नगर में नहीं थे। (अर्थात्, शेष सब हाथी और रथ आदि उसी नगरी में ही थे।)

देवता कहलानेवालों में कौन ऐसा था, जो इस शोभामयी नगरी के अधिपति (रावण) की सेवा न करता हो ? अष्ट रूपवाले[1] त्रिभूतियों से भी यदि वह (रावण) अधिक प्रतापी था, तो उसका यह प्रभाव उसके द्वारा अति उत्साह से आचरित तपस्या का ही फल था। नहीं तो, और कौन इतना महान् ऐश्वर्य दे सकता है ?

शब्दायमान भेरियों का बड़ा नाद, सुन्दर महागजों के गर्जन का नाद समुद्र के गर्जन से भी बढ़कर शब्द करते थे। सुनिर्मित वंशी की-सी मधुर बोलीवाली (राक्षस)-रमणियों के नूपुर-नाद से भेरी आदि के नाद भी दब जाते थे।

मरकत तथा अन्य रत्नों से सुन्दर रूप में निर्मित उत्तम अश्व जुते हुए विशाल रथों से युक्त (वहाँ के) मार्ग इस प्रकार चमकते थे कि (उन्हें देखकर) सूर्य की किरणें भी लज्जित हो जाती थीं। अत्युत्तम स्वर्गलोक भी इस नगर की तुलना में नरक-तुल्य था।

पीने योग्य सौंदर्य से युक्त (अर्थात्, जिसके अत्यधिक सौंदर्य को दर्शक अपने नेत्रों से पी-से जाते हैं) इस नगरी की कांति लगने से वैर उत्पन्न करनेवाले, क्रोध से भरे, राक्षसों का काला रंग भी मिट जाता था। (उस नगर के) समीप जाने पर चंद्रमा भी कलंक-हीन हो जाता था ; तथा पृथ्वी को घेरे रहनेवाला सागर भी ऐसा लगता था, जैसे बारहबानी (?) सोना पिघल रहा हो।

---

१. अष्टरूप = परमात्मा के आठ रूप हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र और अग्नि।

ऊँचाई पर रहनेवाली प्रखर किरणें, धरती को आवृत करनेवाले अंधकार को हटा देती हैं। उस अति सुन्दर नगर के अतिदीर्घ गृहों की किरणें समस्त अंधकार को निगल जाती थीं।—इन दोनों की किंचित् भी तुलना अनुचित है (अर्थात्, सूर्य गगन पर रहकर जो काम करता है, उसे ये प्रासाद धरती पर रहकर ही कर देते थे)। यदि सूर्य के साथ इस नगर की कांति की तुलना करेंगे, तो वह सूर्य इसके सम्मुख उतना भी नहीं चमकेगा, जितना उसके सामने जुगनू चमकते हैं।

(फूलों से बहनेवाले) मधु, चन्दन, कस्तूरी-मिश्रित सुगंध-रस, स्वर्ग के कल्पवृक्ष के नवविकसित पुष्पों के रस, अति बलिष्ठ मत्तगजों का मद-रस, इन सब (रसों) के समुद्र-नीर में बहने से समुद्र की दुर्गन्धि (मिट जाती थी) और उसमें रहनेवाले मीन अति उत्तम सुगंधि से भर जाते थे।

देवशिल्पी (विश्वकर्मा) की प्रशंसा करें या क्रोधारुण नेत्रवाले राक्षस ने सत्य पर दृढ रहकर जो तप किया था, उसकी प्रशंसा करें, या ब्रह्मा ने संदेह-रहित होकर जो वर (रावण को) दिया था, उसकी प्रशंसा करें—यह न जाननेवाले शिथिलचित्त हम किसकी क्या कहकर प्रशंसा करें?

(यहाँ के) वन और उद्यान यद्यपि स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित थे, तथापि वे मधु, पुष्प और फल देते थे। ऐसा विचित्र निर्माण-कौशल क्या और कोई भूमि या आकाश प्राप्त कर सकेगा?

जल, भूमि, अग्नि, ऊपर बहनेवाली वायु तथा इनके संचरण का क्षेत्र आकाश (इस नगर के औन्नत्य के सामने) अपनी महत्ता के कारण प्रशंसित नहीं होते। यदि मेरुपर्वत भी इस नगर के गोपुर की ऊँचाई को जान ले, तो वह लज्जित हो अपने सारे अंगों से सफेद हो जाय।[१]

प्राचीरों की अमंद कांति से दृष्टि चौंधिया जायगी, इसी डर से सूर्य उस लंका नगरी से दूर हटकर संचरण करता था। इस तथ्य को न जानकर ही लोग दीर्घकाल से यह कहते आ रहे थे कि रावण के क्रुद्ध हो जाने के डर से ही वह (सूर्य) उस स्वर्णनगर से होकर नहीं जाता था।

कैलास को उठानेवाले (रावण) ने यह सोचा कि हम (राक्षसों) का अहित करनेवाले यदि कोई हैं, तो वे देवता ही हैं। अतः, उनके आने के मार्ग से भी अधिक उन्नत प्राचीर बनाऊँगा। फिर, उसने असंख्य देवों के संरक्षण-क्षेत्र अंतरिक्ष से भी अधिक ऊँचा तथा दृढ प्राचीर बनाया।

उस सुन्दर प्राकार को पार कर, परिभ्रमण कर चलनेवाली वायु भी उस नगर में प्रविष्ट नहीं हो सकती थी। दिनकर की किरणें भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। यमराज का कठोर कौशल भी वहाँ नहीं चल सकता था। अब यह कहना व्यर्थ है कि

---

१. जल की गंभीरता, भूमि की विशालता, अग्नि का तेज, वायु का प्रसार और आकाश की विभुता—ये सभी लंका नगरी की महत्ता की समानता नहीं कर पाते थे।—अनु०

देवता भी उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकते थे। (यहाँतक कि) वह धर्मदेवता भी, जो प्रलयकाल में सबका विनाश होने पर भी अविनश्वर रहता है—उस नगर में प्रवेश नहीं कर सकता था।[1]

यह नगर, उत्तुंग तरंगों से शब्दायमान समुद्र के मध्य स्थित होकर, अनन्त आकाश को छूनेवाले शिखरों से शोभित था। इस लंकापुरी का आकार सर्पराज पर शयन करनेवाले (विष्णु) की नाभि से उद्भूत अंडगोल के सदृश था।

(इस नगर में) यदि संगीतज्ञ अनेक थे, तो नृत्य करनेवाले उनसे भी अधिक थे। उन नृत्य-कलानिपुणों से भी अधिक, नृत्य के अनुकूल (ताल) के अनुसार चर्मबद्ध सुन्दर मद्दल (वाद्य) बजानेवाले थे। वे (राक्षस) कारागारों से मुक्त किये गये देवों से नृत्य कराकर उसे देखते रहते थे।

(वहाँ) देवांगनाओं से भी अधिक सुन्दर ढंग से विद्याधर-स्त्रियाँ नृत्य करती थीं। उन (विद्याधर-स्त्रियों) से भी अधिक सुन्दर ढंग से यक्ष-स्त्रियाँ नृत्य करती थीं। निरंतर वर्षा करनेवाले कालमेघ-सदृश केशवाली राक्षसियाँ उन (यक्ष-स्त्रियों) से भी अधिक सुन्दर ढंग से नृत्य करती थीं। उस प्रकार उनके नृत्य करते समय, अन्य लोकों की स्त्रियाँ, उनके अपूर्व नृत्यों का अवलोकन करके आनन्द उठाती रहती थीं।

नवनिधियों, आभरणों, मालाओं, वस्त्रों और चन्दन को लेकर उन राक्षसों के निकट दासियों के सदृश खड़ी रहती थीं। क्या यहाँ के ऐसे भोगों की कामना अन्य कोई कर सकता था? यदि अपने मुँह से इसका वर्णन करने लगें, तो वाणी ही कुंठित हो जायगी। यदि मन से उसकी कल्पना करने लगे, तो मन उसे दोष के रूप में लेगा (अर्थात्, मन भी उसकी कल्पना करने में असमर्थ हो, बुरा मान लेगा)।

(इस नगर के निर्माण के समय) चतुर्मुख (स्वयं) सोच-समझकर, समीप में खड़े होकर, कर्त्तव्य कार्यों के विषय में आदेश देता रहा होगा। पहले जिस शिल्पी (अर्थात्, विश्वकर्मा) के संबंध में कहा गया है, उसने सोच-समझकर, स्वर्णमय उत्तम मेरु-गिरि से लाये गये बहुत-से रत्नों को स्थान-स्थान पर जड़कर, अनेक काल तक परिश्रम करके, प्रशंसनीय रूप से इस नगर का निर्माण किया होगा।

(वहाँ की) मकरवीणा के गंभीर नाद से सागर का बड़ा गर्जन भी मंद पड़ जाता था। वहाँ के सौधों के भीतर, जिनके शिखरों को चतुर्मुख अपने हाथ से छू सकता था (अर्थात्, जो शिखर सत्यलोक तक पहुँचते थे), रहनेवाली रमणियाँ जो अगरु-धूम अधिक परिमाण में उत्पन्न करती थीं, उससे मेघ-समूह अदृश्य हो जाते थे।

(वहाँ राक्षस) स्फटिकमय गृहों में, नवमधु बरसानेवाले कल्पवृक्षों से भरे शीतल उद्यानों में तथा अन्य स्थानों में, (दास-दासियों के द्वारा) दिये जानेवाले मधु का पान करके नाचने, गाने और आनन्द मनाने में मस्त रहते थे। वहाँ के रहनेवालों में कोई भी व्यक्ति चिन्तामग्न नहीं दिखाई देता था।

---

१. ध्वनि यह है कि वहाँ धर्म के लिए कोई स्थान नहीं था।—अनु०

राक्षसियों के प्राणतुल्य राक्षस कहीं मदिरा-पान करते थे, कहीं मधु-सदृश संगीत-पान करते थे। कहीं (राक्षसियों के) अधरामृत का पान करते थे। कहीं मधुर संलाप का (पान) करते थे। कहीं मन के कोप-पूर्ण वचनों का पान करते थे और उन मानवतियों को नमस्कार करके उनके उमड़ते हुए कोप की शांति का पान करते थे (अर्थात्, उनको शांत करके उससे आनन्द उठाते थे)।

कुछ राक्षसों के काले शरीर (उनपर लगे हुए) राक्षसियों के स्तनों पर रक्त कुंकुम-रस से लिखित पत्र-लेखाओं से शोभायमान हो रहे थे। (कुछ) राक्षस-पुरुषों के केश, प्रणय-कलह में रूठकर क्रोध-भरी दृष्टि से देखनेवाली (राक्षसियों) के चरण-कमलों के महावर से उत्पन्न चिह्नों से शोभायमान हो रहे थे।

गर्जन करनेवाले जलधि से आवृत लंका 'धैवत' स्वरवालियों के (लाल-लाल) अधरों के कारण समुद्र में बढ़े हुए प्रवाल-वन के समान शोभित हो रही थी। (उन रमणियों के) शूल-तुल्य नेत्रों के कारण कमल-सर के सदृश शोभित हो रही थी तथा उन रमणियों के शीतल वदनों के कारण रक्त-कमलवन के सदृश शोभित हो रही थी।

वहाँ के राक्षस उस अंडगोल में उड़कर सर्वत्र संचरण करते रहते थे, फिर भी अबतक यह (अंडगोल) टूटकर गिरा नहीं। अंडगोल की इस दृढ़ता पर ही आश्चर्य प्रकट करना है। इसके अतिरिक्त (राक्षसों की संख्या जानने के लिए) चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? कमलभव (ब्रह्मा) से लेकर समस्त प्राणी (इस नगर के) राक्षसों की गणना करते समय चिह्न के रूप में रखने के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं।

आकार में बड़े, वीरता में अपरिमेय, लोकों का विनाश करने के लिए सदा तत्पर, बाहुबल में असीम तथा अज्ञेय माया से पूर्ण राक्षस जिस नगर में रहते थे, क्या उसकी कहीं सीमा हो सकती है? (उस नगर में) एक वीथि में रहनेवाले का दूसरी वीथि में जाना एक देश के निवासियों का दूसरे देश में जाने के समान था।

वीर-वलय से रहित पैरवाले, यमतुल्य शूल से रहित करोंवाले और प्रज्वलित अग्नि से रहित नेत्रोंवाले पुरुष (उस नगर में) नहीं थे। वहाँ ऐसी वीणा-स्वरवाली रक्ताधरा स्त्रियाँ भी नहीं थीं, जिनके (चरणों के) महावर-चिह्न, मधुमत्त हो गानेवाले भ्रमरों से गुंजरित (पुरुषों के) केशों से न मिटे हों।

मुखपट्टों से भूषित वहाँ के हाथी, जो प्रेम के साथ भ्रमरों से अनुगत रहते थे, जो इस प्रकार तीव्र गति से जाते थे कि उनकी देह से मांस की गंध चारों ओर फैल जाती थी, जो श्वेत तथा दृढ दंतवाले थे, जिनके मन में आनन्द भरा रहता था तथा जो पहाड़-जैसे ऊँचे थे, (वे हाथी उस नगर के) पुष्पों से स्रवित मधु से युक्त लाल केशवाले राक्षसों के ही समान थे।

मधुपान करके राक्षस-स्त्रियाँ मन के मोद से लास्य-नृत्य करती थीं और उसे देखनेवाली लता-समान सूक्ष्म कटिवाली देवांगनाएँ (जो उनकी सेवा में नियुक्त रहती थीं) उनके ताल-विशुद्ध नृत्य को देखकर अपने मन में शिथिल हो जाती थीं। जब उन विशाल

नयन-युक्त राक्षस-रमणियों का रजत उज्ज्वल मंदहास प्रकट होता था, तब वे देवांगनाएँ भी लज्जित हो जाती थीं।

(हनुमान् उस नगर को देखकर अपने मन में सोचने लगा—) हमारी श्रेष्ठ वानर-सेना के लिए एक साथ इस नगर में आ पहुँचना भले ही संभव हो, पर उससे क्या होगा ? हमारे द्वारा इस नगर का विनाश होना तो दूर की बात है, क्या वे वानर (इस नगर में पैर रखकर) चल भी पायेंगे ? (क्योंकि) कालवर्ण राक्षसों और राक्षसियों ने जो आभरण घृणा से उतारकर फेंक दिये हैं, उनसे इस नगर की सारी वीथियाँ पटी हुई हैं।

इस नगर की वीथियों में स्वर्णहार, कर्णाभरण, अन्य आभूषण, पुष्पमालाएँ, चन्दन-रस, हाथियों का मद-जल, लगाम-लगे घोड़ों के मुँह से बहता हुआ फेन, अपरिमेय मात्रा में गिरे हैं। उस नगर से नदियों के द्वारा बहाकर लाये गये उन पदार्थों को यदि समुद्र अपने में समा सका है, तो क्या समुद्र-सदृश गहरा स्थान कोई अन्य हो सकता है ?

(हनुमान् आगे सोचने लगा) मैं जब अपने प्रभु को (इस नगर के संबंध में) बताऊँगा, तब क्या कहूँगा ? क्या यह कहूँगा किय हाँ की धनुर्धारी सेना बड़ी है, या यह बताऊँगा कि शूलधारी सेना बड़ी है, या मल्ल योद्धाओं की सेना को श्रेष्ठ बताऊँगा, अथवा खड्गधारी सेना को अधिक कहूँगा, अथवा यह कहूँगा कि यहाँ गदा, भिंडिपाल, अरिगंड इत्यादि आयुधों से युक्त सेना सबसे श्रेष्ठ है ?

(हनुमान्) लंकानगर को देखकर इसी प्रकार सोचता रहा। फिर, यह विचार-कर कि यहाँ रहनेवाले निष्ठुर राक्षस कदाचित् मेरा सामना करने के लिए आ जायें—अपने उस विराट् स्वरूप को छोटा कर लिया और मनोहर सानुयुक्त उस (प्रवाल) पर्वत पर ही खड़ा रहा। उसी समय उष्णकिरण (सूर्य) गर्जन करनेवाले समुद्र में निमग्न हुआ।

तब अंधकार सर्वत्र उसी प्रकार बढ़ गया, जिस प्रकार (अपने) मनमाने कामों से (दूसरों का) नुकसान करके धन उपार्जन करनेवाले का, पुण्य-पाप का विचार न करने-वाले का, विज्ञ व्यक्तियों के (सद्) वचनों को स्वीकार न करनेवाले का, अपने दुष्परिणामों का विचार न करनेवाले का तथा सत्य से रहित आचरणवाले का पाप बढ़ता है।

वह अंधकार समस्त विश्व को आवृत करनेवाली विशालता से युक्त था, मानों त्रिपुरों को जलानेवाले, परशुधारी (शिव) भगवान् ने मुनियों के द्वारा होमाग्नि से उत्पन्न किये गये गज का चर्म निकालकर उससे सारे विश्व के लिए एक आवरण (खोल या गिलाफ) तैयार कर दिया हो।

वह अंधकार ऐसा फैला, मानों दुःखदायक सर्पराज (आदिशेष) असंख्य वर्षों से, अपने सब फनों से जो विष बहा रहा था, उससे संपूर्ण विश्व को क्रमशः अपने वश में लाता हुआ, अग्नि और धूम के साथ, उमड़ चला हो।

(वह अंधकार ऐसा फैला, मानों) उदारता को न त्यागनेवाले अतिश्रेष्ठ (सूर्य)-कुल में अवतीर्ण (राम) की, स्त्रीत्व (अर्थात्, स्त्री-सहज लज्जा, संकोच, निष्कपटता और मुग्धता) को न त्यागनेवाली साध्वी को, पराक्रम को न त्यागनेवाले (रावण) ने बंदी

बनाया है—इस कारण से ही मानों श्वेतवर्ण को त्यागनेवाला अपयश[1] सर्वत्र फैल गया हो।

उस स्थान में जब उस प्रकार का अंधकार व्याप्त हुआ, तब राक्षस, यद्यपि वे यथाक्रम उपदेश-प्राप्त मंत्रबल से दिशाओं में उड़ सकते थे, अपने अति क्रूर मार्ग पर अंधकार को रौंदते हुए सब दिशाओं में बढ़ चले।

उनमें (निशाचरों में), रावण की आज्ञा पाकर, कोई इंद्र के ऐश्वर्य-संपन्न नगर को जा रहा था, कोई शक्ति-पूर्ण चंद्रलोक को जा रहा था और कोई कोलाहल करते हुए अंतक (यम) के विनाश को जा रहा था।

स्वर्ग-नगर (अमरावती) में निवास करनेवाली सुन्दरियाँ, विद्याधर-स्त्रियाँ, नागकन्याएँ और यक्ष-रमणियाँ (उन राक्षसों के द्वारा) सोचे गये (बताये गये) कार्यों को ठीक ढंग से संपादित करने के लिए एक के आगे एक बढ़तीं और बिजलियों के दल के समान आकाश-मार्ग से जाती थीं।

देवता, असुर, रक्तनेत्र नाग, रमणीय रूपवाले यक्ष, विद्याधर तथा अन्य लोग (राक्षसों द्वारा) निर्दिष्ट कार्यों को ठीक ढंग से पूरा करने के लिए इस प्रकार भीड़ लगाकर आकाश-मार्ग पर चलते थे कि (उनके शरीर की कांति से) अंधकार मिट जाता था।

पंक्तियों में लिखे चित्रों के सदृश (सुन्दर ढंग से) मंदगति प्रकृतिवाले देवता (सूर्यास्त होने पर) यह सोचकर कि हमने इतना विलंब कर दिया, (रावण) क्रुद्ध हो जायगा, ऐसे दौड़ पड़ते थे कि उनके मुक्ताहार, केशों में बँधे पुष्पहार और उत्तरीय वस्त्र उड़ने लगते थे।

अस्पृश्य पापकर्म-रूपी ग्रीष्म से दग्ध होकर धर्म-रूपी जो अंकुर झुलसकर शुष्क हो गया था, वह मानों मारुति नामक प्रतापवान् वर्षा के आगमन से, रक्षित होकर, फिर सजीव हो उठा हो, उसी प्रकार चंद्र उदित होकर प्रकाशमान हुआ।

प्राची दिशा में चंद्र उदित हुआ। वह दृश्य ऐसा था कि 'राघव का दूत आया और मेरे नायक इंद्र पुनः जीवित हो गये'—यों सोचकर अंत-रहित प्राची-रूपी, उज्ज्वल केशों तथा ललाट से संयुक्त सुन्दरी आनन्दित हो उठी हो और उसका वदन प्रकाशमान हो रहा हो।

शीतल तथा श्वेत चंद्रमंडल इस प्रकार चमक उठा, मानों इंद्र का श्वेत छत्र हो, जिसके पार्श्वों में समुद्र की धवल तरंगों के सदृश पुंजीभूत चामर डुल रहे थे—यह सोचकर कि राक्षस अब मिट गये, ऊपर उठ आया हो।

गगन-रूपी महापुरुष उदित होकर, उज्ज्वल दिखाई पड़नेवाले चंद्रमंडल-रूपी रजतघट को लेकर, वीचीमय क्षीरसागर (के क्षीर) को भर-भरकर उड़ेल रहा हो—इस प्रकार धवल चंद्रिका, उस क्षीर के बुलबुले-जैसे लगनेवाले नक्षत्रों के साथ, ऊपर और नीचे फैली।

---

१. यश श्वेतवर्ण का और अपयश काले वर्ण का माना गया है।

आदिगगन ही अपूर्व तपस्या-संपन्न (वसिष्ठ) की सुरभि था। विशाल चन्द्रमा का उदय-स्थान ही उस गाय का अंक था। चन्द्रमा ही उसका क्लेश-रहित थन था (क्लेश-रहित इसलिए कि उसे दुहने की आवश्यता नहीं होती थी, वह स्वयंस्रावी था)। (चन्द्र की) किरणें ही उसकी दुग्ध-धाराएँ थीं तथा चन्द्रिका का दृश्य ही फैलते हुए दूध के समान था।

सब नक्षत्र ऐसे लगते थे, मानों प्रशंसनीय हनुमान् के ऊपर (देवों के द्वारा) जो पुष्प बरसाये गये थे, वे प्रतापी खड्गधारी राक्षस (रावण) के डर से धरती पर न गिरकर और फिर ऊपर भी न जाकर उज्ज्वलकिरण (सूर्य आदि) के संचरण-क्षेत्र नभ में ही अटक गये हों।

मल्लिका-पुष्पों पर भ्रमर मँडराते थे। वे भ्रमर और पुष्प इस प्रकार लगते थे, मानों निशा में बिखरे अंधकार-खंड तथा उस अंधकार को मिटानेवाली धवल चन्द्रिका के खंड, एक दूसरे को वैरी समझते हुए परस्पर युद्ध कर रहे हों।

शीतल किरणपुंज-रूपी छिटकती हुई चाँदनी शीघ्र ही (उस नगर में) सर्वत्र व्याप्त हो गई। वह दृश्य ऐसा था, मानों रत्न-जटित सुरक्षित प्राचीरों से घिरी हुई लंका नगरी पर श्वेतवस्त्र का आवरण लगाया गया हो।

वह चाँदनी लंका में इस प्रकार व्याप्त हुई, मानों अनिन्दनीय उत्तम गुणशाली राम के द्वारा प्रयुक्त बाण की गति से जब हनुमान् वहाँ आ पहुँचा, तब उसके सहारे उन (राम) की कीर्त्ति भी वहाँ आ गई हो और परिखा तथा प्राचीरों को लाँघकर, लंका में प्रविष्ट होकर सर्वत्र व्याप्त हो गई हो।

उस समय (हनुमान् ने) मन में यह विचार करते हुए कि मैं इस लंकापुरी में किस प्रकार प्रवेश करूँ? अंत में सीधे मार्ग से (अर्थात्, सब जिस राजमार्ग से जाते हैं, उसी से) भीतर जाने का निश्चय किया और देवों से प्रशंसित होता हुआ दुष्टमार्ग पर चलनेवाले राक्षसों के नगर में (सीधे मार्ग से) प्रवेश करने लगा।

(हनुमान्, लंका के) उस प्राचीर के निकट जा पहुँचा, जिसे घेरकर समुद्र ही परिखा के रूप में पड़ा था, जिसका शिखर देवताओं के निवासभूत सत्यलोकों के परे शून्य स्थान तक उठा हुआ था, जो अनुपम स्वर्ण से निर्मित था और जो प्रलयकालिक जल-प्रवाह से सारे विश्व के विनष्ट होने पर भी नहीं मिटता था।

'अपने स्थान से विचलित न होनेवाले तीव्रगामी (सूर्य, चन्द्रादि) ज्योतिष्पुंज, विजयप्रद शूलधारी वंचक (रावण) से डरकर ही (उसकी नगरी के) ऊपर शीघ्रता से नहीं चलते'—यह कथन सत्य नहीं है। (किंतु) यह सोचकर कि इस लंका के प्राचीरों को लाँघकर जाना असंभव है, वे वहाँ से शीघ्रता से हट जाते थे—यों विचार करता हुआ (हनुमान्) विस्मित हुआ।

यदि यह कहें कि यह प्राचीर असंख्य शत्रुओं के रहने योग्य विशाल है, तो यह उतने में ही सीमित नहीं है। ब्रह्मांड के मध्य जितना अवकाश है, वह सब इस प्राचीर में समाया हुआ है। इसकी सीमा भी वह (ब्रह्मांड) ही है, (अर्थात् ब्रह्मांड की सीमा तक

यह प्राचीर फैला हुआ है), के उस नगर शासक अति बलवान् राक्षस के बारे में मन में विचारकर वह (हनुमान्) विस्मित हुआ।

लंबे केसरोंवाले सिंह तथा महान् मत्तगज को लज्जित करते हुए एकाकी ही चल-कर (उस प्राचीर के द्वार पर) पहुँचनेवाले उस शूर ने उस अतिप्राचीन और अतिविशाल नगर-द्वार को सामने देखा, जो असंख्य सेनाओं से सुरक्षित था तथा शूलधारी यम की आज्ञा पूरी करनेवाले भयंकर और शक्ति-पूर्ण मुख के समान था।

(हनुमान् ने उस नगर के सिंहद्वार को देखकर) सोचा कि क्या यह (द्वार) मेरु को ही यहाँ खड़ा करके उसमें छेद बनाकर निर्मित किया गया है, या स्वर्गलोक में जाने के लिए निर्मित सीढ़ी के चौखट को ही लाकर यहाँ रखा गया है, या सप्तलोकों को स्थिर रखने के लिए बीच में खड़ा किया हुआ कोई स्तंभ है, या समुद्र के समस्त जल के बहने का ही मार्ग है ?

सप्तलोकों के समस्त प्राणी यदि एक साथ मिलकर (रावण का) सामना करने आयें, तो वे एक के पीछे एक न चलकर सब एक साथ इस मार्ग से प्रवेश कर सकते हैं। यदि यह कहें कि यह विशाल द्वार (इस नगर के) निवासियों के जाने के लिए बनाया गया है, तो वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि हमारे शत्रु-(राक्षसों) की संख्या सप्तसमुद्रों में भी नहीं समा सकती है।

उस पराक्रमी (हनुमान्) ने देखा कि सामने अनेक शत-सहस्र अक्षौहिणी संख्या में वीरता, माया तथा कठोरता से युक्त राक्षस अपने दोनों ओर फैले काँटे-जैसे खड्ग-दंतों के साथ, अपने दोनों हाथों में करवाल लेकर पंक्ति बाँधे खड़े हैं।

वे बलशाली (राक्षस) त्रिशूल, परसा, करवाल, भाला, तोमर, मूसल, यम-तुल्य बाण, लौह-काँटे, भुशुंडि (नामक आयुध-विशेष), दंड, वक्रदंड, चक्र, कुलिश, छुरिका, कुंत, भिंडिपाल इत्यादि आयुधों को दृढता से धारण किये खड़े हैं।

उनके हाथ, अंकुश, पत्थर फेंकने का दीर्घ जाल, अति तीक्ष्ण शब्द करनेवाले दाभ (काटनेवाले) के समान पाश इत्यादि भयंकर आयुधों से युक्त हैं। उनके घने केश रक्त-जैसे लाल हैं। वे क्रोध से भरे हैं, अतः वे फाल्गुन में पुष्पित होनेवाले पलाश-वन के समान दीखते हैं।

(उसने) सम्मुख देखा कि असंख्य दीप अंधकार को निगलकर प्रकाश उगल रहे हैं। अति कठोर हृदयवाला यम भी जिस मनोहर द्वार में प्रवेश करने से डरे, ऐसे द्वार पर समुद्र-जैसी फैली हुई अतिदृढ सेना खड़ी है।

हनुमान् ने सोचा—अहो! कोलाहल से पूर्ण इस विशाल द्वार को पार कर सकनेवाले देवता, असुर या अन्य कोई हैं ? शत्रुओं ने कैसी रक्षा की है ? महावीर (राम) और हम (वानर) यदि (यहाँ आकर) घोर युद्ध छेड़ेंगे, तो उसका परिणाम क्या होगा ?

हनुमान् ने और सोचा—काले समुद्र को भी लाँघना कठिन नहीं है। किंतु, इस नगर की रक्षा करनेवाली बड़ी वाहिनी को पार करना दुष्कर है। यदि (मैं) सोच-

विचार में किंचित् भी त्रुटि करूँगा, तो मेरे कठिन कार्य की पूर्त्ति असंभव होगी। यदि मैं इन सैनिकों से युद्ध छेड़ दूँ, तो वह कई दिनों तक चलता रहेगा।

इस द्वार से प्रवेश करना कठिन है, यही नहीं, विचार करने पर शूरों को दूसरों के बनाये मार्ग से होकर शत्रुनगर में प्रवेश करना शोभा भी नहीं देता। अतः, उष्णकिरण (सूर्य) भी जिसे लाँघ नहीं सकता, उसी प्राचीर को त्वरित गति से लाँघकर नगर में प्रवेश करूँगा—यों निश्चय करके प्राचीर के एक ओर गया।

दीर्घकाल से अपने द्वारा सुरक्षित उस अति विशाल नगर की आयु का उस दिन अंत होने के कारण, (उस नगर की देवी) स्तंभ-सदृश भुजाओंवाले (हनुमान्) को देखकर अग्निमय नेत्रों को लिये हुए उसके मार्ग में आकर खड़ी हो गई, जिस प्रकार सूर्य को देखकर (उसे निगलने के लिए) चक्षुःश्रवा (सर्प) आ गया हो।

वह (लंकादेवी) आठ भुजा तथा चार मुखवाली थी। उसकी शरीर-ज्योति सातों लोकों में प्रतिबिम्बित हो लौटनेवाली थी। वह चक्र के समान घूर्णित नयनोंवाली थी। यदि युद्ध करने लगती, तो तीनो लोकों को समूल बाँधकर क्रोध उगलने लगती, (वह) उस नगर की रखवाली करने के योग्य शक्ति रखनेवाली और क्षमाहीन थी।

उसके पैरों में नूपुर पड़े थे (जिनके शब्द) दूसरों को भयभीत कर देते थे। वह बिजली-जैसे चमकनेवाले आभरण पहने हुए थी। वह इस विचार से कि उस (हनुमान्) के साथ और कोई तो नहीं आ रहा है, आठों दिशाओं में दृष्टि फेर रही थी। उसकी देह से पसीना वह रहा था और वह वर्षा के मेघ के समान गर्जन कर रही थी।

वह अपने आठों हाथों में त्रिशूल, करवाल, भाला, गदा, परशु, घोर शब्द करनेवाला शंख, दंड और चमकता हुआ भाला धारण किये हुए थी। देखने में मेरुपर्वत के सदृश थी। मुख पर चंद्रमंडल के दो खंडों के समान दो खड्गदंत चमक रहे थे। वह अपने मुख से धुआँ निकाल रही थी और यम को भी भयभीत करनेवाले क्रोध से भरी थी।

वह पंचवर्ण वस्त्र पहने हुए थी। सर्पों को डरानेवाले गरुड के समान थी। करुणाहीन थी। सुन्दर स्वर्ण की कला से पूर्ण उत्तरीय धारण किये हुए थी। उसने ऐसा एक उज्ज्वल हार पहना था, जो तरंग-भरे समुद्र में उत्पन्न मनोहर तथा भारी सीपों से उत्पन्न मुक्ताओं से बना था।

वह सुवासित चन्दन-रस से लिप्त थी। शास्त्रोक्त रीति से वादित याक् के 'निषाद' स्वर के स्वच्छ संगीत की समता करनेवाले वचनों से युक्त थी। उसके मुकुट पर मंदारमाला हिल रही थी, जिसमें 'गांधार' स्वर गानेवाले भ्रमर आनंद से विश्राम कर रहे थे।

वह सब प्राणियों के लिए भयदायक समुद्रों से आवृत उस लंका नामक शक्तिशाली नगरी का हित करनेवाली थी। उसके ऐसे अतिविशाल नयन थे, जो उस पूरे नगर को अपने अंतर्गत कर लेते थे और उस (नगर) के आवरण-जैसे थे। ऐसी वह लंकिनी यह गर्जन करती हुई कि, 'रुको! रुको!' उस (हनुमान्) के सामने कुछ सोच-विचार करने के पहले ही (सहसा) आ उपस्थित हुई। मारुति ने उसे देखा और 'आओ' कहकर उसका आह्वान किया।

प्रज्वलित अग्नि-तुल्य, धूम-पूर्ण नयनोंवाली लंकिनी ने कहा—हे बुद्धिहीन ! तुमने अनुचित कार्य किया है, तुम डरो नहीं । पत्ते और कंदमूल खाकर जो जीवित रहते हैं, उनपर क्रोध क्यों करना चाहिए ? सुधा पीते हुए इस मनोहर प्राचीर को लाँघने के लिए उतावला न बनो । यहाँ से हट जाओ ।

सुख के उद्वेगों से रहित मनवाले उस महात्मा हनुमान् ने (अर्थात्, सुख-दुःख के भाव से रहित, स्थितप्रज्ञ हनुमान् ने) मन के क्रोध को दबाकर नीतिपूर्ण ढंग से उस (लंकिनी) के व्यापारों को जानने के लिए उसका आह्वान करके कहा—प्रेम से इस नगर को देखने की इच्छा से आया हूँ । मैं, गरीब, यदि इस नगर में प्रवेशकर जाऊँ भी, तो तुम्हारी क्या हानि होगी ?

ज्योंही हनुमान् के ये वचन निकले, त्योंही वह कह उठी—मैं 'हटो' कहती हूँ, तो तू हटे बिना, मुझे उत्तर देता हुआ अभी तक खड़ा है । कौन है रे, तू ? प्राचीन नगर त्रिपुर को जलानेवाले (रुद्र) जैसे व्यक्ति भी (इस नगर में) आने से डरते हैं । तू भीतर जाना चाहता है, तो क्या तू जा सकेगा ? यह कहकर वह ठठाकर हँस पड़ी ।

उस हँसनेवाली को देखकर आर्य (हनुमान्) भी भावपूर्ण मंदहास कर उठा । वह देख, लंकिनी ने पूछा—' ऐ हँसनेवाले ! तू कौन है ! किसके कहने से यहाँ आया है ? अपने प्राणों को खोने से तुझे क्या मिलेगा ? अभी तू यहाँ से भाग । उत्तर में प्रख्यात-कीर्त्ति (हनुमान्) ने कहा—अब इस नगर में गये बिना मैं हटूँगा नहीं ।

तब हनुमान् की कठोर दृढता को देखकर, स्तब्ध हो वह सोचने लगी—'यह वानर नहीं है, यह कोई मायावी है। काल भी मुझे देखकर डरता है । अतः, यह यम नहीं है । यह तो तरंगायित समुद्र से उत्पन्न विष का पान करनेवाले ललाटनेत्र (रुद्र) के सदृश हँस रहा है ।

यह सोचकर कि 'इसे मार दें, नहीं तो इस नगरी की हानि हो सकती है', उस (लंकिनी) ने यह कहती हुई, 'यदि जीत सकता है, तो (मुझे अब) जीत ले । यदि तुझे (इस नगर के भीतर) जाना है, तो सिंहद्वार से ही होकर जा ।' अपनी आँखों और मुँह से तीक्ष्ण अग्नि उगलती हुई त्रिशूल को तान कर (हनुमान् पर) फेंका ।

बिजली के सदृश अपने सम्मुख आनेवाले उस जाज्वल्यमान शूल को हनुमान् ने पकड़कर सर्प को अपने मुँह में उठा गगन में ले जाकर तोड़नेवाले गरुड के समान अपने हाथों से तोड़ डाला । यह देख देवता उमंग से भर गये और दीर्घकाल से (उस शूल को) पकड़े रहनेवाली और कभी व्यर्थसंकल्प न होनेवाली उस लंकिनी का हृदय धड़क उठा ।

जब त्रिशूल टूट गया, तब अग्नि-तुल्य वह (लंकादेवी) अन्य अनेक अलौकिक आयुधों को लेकर युद्ध करने लगी । (यह स्त्री है) यह सोचकर, अपयश का विचार करनेवाला हनुमान् उसपर झपटा और उसने अपने हाथों से उसके सम्पूर्ण आयुधों को छीन-कर आकाश में फेंक दिया ।

क्षमारहित वह (लंकिनी) प्रयोग के योग्य अपने सब आयुधों को खोकर अत्यंत

क्रुद्ध हुई। अब वह मेघ के समान गर्जन करके, पहाड़ों को गोटी बनाकर खेलनेवाले अपने विशाल हाथों को ऊँचा उठाकर, अपने विरुद्ध युद्ध करनेवाले (हनुमान्) पर इस प्रकार आघात करने लगी कि जिससे शब्द के साथ भड़कनेवाली चिनगारियाँ भी निकलने लगीं।

(किंतु) उसके आघात करने के पूर्व ही (हनुमान् ने) उसके हाथों को अपने एक ही हाथ से पकड़ लिया और फिर, यह सोचकर कि, 'अहो! यह तो स्त्री है, अगर इसको मारूँगा, तो पाप लगेगा', उसके अशिथिल बलवान् कंठ पर जोर से प्रहार किया। (उस चोट से) वह धरती पर यों गिरी, जैसे कोई वज्राहत पर्वत हो।

(उस प्रकार) गिरी हुई (लंकिनी) दुःखित हुई और उष्णरक्त-रूपी अरुण-जल-प्रवाह में निमग्न हो वह (पूर्वकाल में) चतुर्मुख की करुणा का (अर्थात्, करुणा-पूर्ण आज्ञा का) स्मरण करके उठी तथा सब लोकों के महत् (नर, देव आदि) तथा अमहत् (पशु-पक्षी आदि) प्राणी-वर्ग से वंदित चरणवाले वीर (राम) के दूत के सामने खड़ी होकर ये वचन कहने लगी—

हे महात्मन्! सुनो। लोकों की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा की आज्ञा से मैं इस प्राचीन नगर में आकर इसकी रक्षा करती आ रही हूँ। मेरा नाम लंकादेवी है। अपने कार्य में उत्साह के कारण मैंने (तुम्हारे प्रति) अपराध किया है। भ्रम से ऐसा क्षुद्र कार्य कर दिया है। यदि तुम कृपा करके मुझे जीवित रहने दोगे, तो मैं एक रहस्य की बात तुम्हें बताऊँगी।

वह आगे कहने लगी—मैंने चतुर्मुख से पूछा था कि मैं कबतक इस बड़े नगर की रखवाली करती रहूँगी? तब चतुर्मुख ने मुझसे कहा था कि जिस दिन एक अति बलिष्ठ वानर अपने हाथ से आघात करके तुझे कष्ट देगा, उस दिन तू मेरे पास चली आना। उसके पश्चात् वह सुन्दर नगर (लंका) भी निश्चय ही विनष्ट हो जायगा।

हे महाभाग! वैसा ही सब हुआ है। क्या यह बताने की आवश्यकता है कि धर्म विजयी होता है और पाप पराजित। इसके पश्चात् वह सब घटित होगा, जो तुम चाहते हो। क्या तुम्हारे लिए कोई भी कार्य असंभव है? अब तुम इस स्वर्णपुरी में जाओ।—यों कहकर वह (हनुमान् की) प्रशंसा करके, नमस्कार कर, चली गई।

वीर (हनुमान्) आनंदित हुआ और सोचा कि सदा सत्य ही सफल होता है। फिर, आर्य के कमल-चरणों को मन में नमस्कार किया और क्षुद्र जनों (राक्षसों) के उस विशाल लंकानगर के स्वर्ण-प्राचीर को फाँदकर (उस नगर में) ऐसे प्रविष्ट हुआ, जैसे श्रेष्ठ क्षीर से पूर्ण समुद्र में थोड़ा-सा जामन छिड़क दिया गया हो। (अर्थात्, जिस प्रकार थोड़े से जामन से बहुत-सा दूध विकृत हो जाता है, उसी प्रकार छोटे आकारवाले हनुमान् से विशाल लंका विनष्ट होनेवाली है।)

रत्नों से निर्मित तथा त्रुटिहीन गगन-चुंबी सौध-पंक्तियाँ (सर्वत्र) व्याप्त घने अंधकार को मिटाकर दिन के समान कांति बिखेर रही थीं। उस दृश्य को देखकर, वह ज्ञानी (हनुमान्) भी यह संदेह करता हुआ विस्मित हुआ कि कदाचित् एक चक्रवाले महान् रथ पर चलनेवाला (सूर्य) ही तो उदयाचल पर प्रकट नहीं हुआ है?

वह (हनुमान् आगे) सोचने लगा—'अपरिमेय रत्नों से खचित प्रासादों से भरी यह पुरातन नगरी, समस्त अंधकार को दूर कर देगी। अब वह खर-किरण दिनकर भी (इस प्रकाश को देखकर) सचमुच लज्जित होगा और (इस नगर में अपनी किरणों को फैलाना) अनावश्यक समझकर हट जायगा। यदि वह प्राकारों से आवृत इस लंका के मध्य आ भी जाय, तो वह अपने सम्मुख आये हुए खद्योत के सदृश ही दीखेगा (अर्थात्, लंका के सम्मुख सूर्य जुगनू जैसा लगेगा)।

अहो! इस महती नगरी के रहनेवाले राक्षस यदि निशाचर बन गये हैं, तो इसका कारण यही है कि पिघलनेवाले पीले स्वर्णपर्वत-सदृश प्राचीरों के मध्य स्वच्छ प्रकाश से चमकनेवाले और ज्योतिर्मय रत्नों से निर्मित प्रासादों के कारण, यह अनश्वर लंकापुरी अंधकारहीन है। (अर्थात्, यहाँ रात भी दिन की तरह प्रकाश से भरी रहती है। अतः, राक्षस रात में संचरण करने के अभ्यस्त हो गये हैं।)

देवों को अमृत देनेवाले (मंदर) पर्वत के समान और अयोध्या-नरेश की कीर्त्ति के समान पुष्ट स्कंधोंवाला (हनुमान्), उपर्युक्त प्रकार से विचार करता हुआ—वीथियों के बीच जाना ठीक नहीं समझकर अपनी गंभीर आकृति को संकुचित बनाये ही—सौधों के किनारे-किनारे चलने लगा।

गायों के गोड़ों में, हाथियों की शालाओं में, सेना में, प्रमुख रथों तथा अश्वों की शालाओं में, पहरे से सुरक्षित पण्यशालाओं में, नील समुद्र को पार करने में सहायक बने अपने पैरों के सहारे वह इस प्रकार चला-फिरा, जिस प्रकार पुष्पों के पास उड़नेवाली तथा गानेवाली रंग-बिरंगी तितली हो।

नक्षत्रों की कांति से युक्त नाना प्रकार के भारी रत्नों से जटित दीवारें, जो उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती थीं, उसके कारण वह वायुकुमार (भक्तिहीनों के लिए) दर्शन-दुर्लभ होकर भी भक्तों के लिए दर्शन-सुलभ होनेवाले अपने हृदयंगम सुन्दर (राम) के समान ही, कभी नीलवर्ण, कभी श्वेतवर्ण और कभी रक्तवर्ण हो जाता था।

देवांगनाएँ दिव्य नदी (आकाश गंगा) से स्वच्छ नीर लातीं और उस जल से, मधु-प्रवाह से युक्त पुष्पोद्यानों में, स्नान करतीं। ऐसी उन राक्षस-रमणियों को (हनुमान् ने) देखा, जो वन्य मयूरियों तथा मत्त मरालियों के सदृश थीं और जिनके मुख विकसित कमल के समान शोभायमान थे।

'जो तपस्या का फल अर्जित करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की वस्तुओं का अर्जन करनेवालों का कोई हित नहीं होता।' इसे विधि ने प्रत्यक्ष दिखाया है। यदि कोई देखना चाहे, तो (लंका में) आकर देखे। अहो! उस नगर में कंचुकाबद्ध स्तन-भार वहन न कर सकनेवाली देव-नारियाँ अपनी झूठी (अतिसूक्ष्म) कटि को दुखाती हुई, स्वच्छ जल लेकर स्नान कराती हैं और राक्षस-स्त्रियाँ भी स्नान करती हैं।

वहाँ की स्त्रियाँ महावर-लगे पल्लव-समान अपने हाथों को दुखाती हुई (संगीत को लक्षणों के) विधान के अनुसार निर्मित सप्तविध तंत्रियों से युक्त उत्तम शकोटयाल् (वीणा) के स्वर में तालयुक्त संगीत करती थीं। उस संगीत के लिए तब बाधक बनकर मेघ गरज

उठते थे और तब दासियाँ सौधों पर स्थित मेघों के मुँह अपने पुष्पकोमल करों से बंद कर देती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) सब का अभीष्ट प्रदान करनेवाले दिव्य रत्न-दीपों से प्रकाशित पर्यंकों पर लेटी हुई कुछ राक्षस-रमणियाँ, सुन्दर पुष्प-वितानयुक्त स्वर्णमय नृत्य-रंग में द्रुतलय-विशिष्ट, रसिकजनों से प्रशंसित, ताल का अतिक्रमण न करनेवाले, गंधर्व-रमणियों के नृत्य देख रही थीं।

(हनुमान् ने देखा—) राक्षस-रमणियाँ सुडौल स्फटिक-वेदियों पर बैठकर दुर्लभ मदिरा का पान कर रही हैं। मानों (वियोग) में वेदना देनेवाले अपने प्रियतमों के प्रति, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने असीम प्रेम-रूपी सस्य को जल से सींच रही हों। उन रमणियों के मनोभावों को प्रकट करनेवाले उनके अंजनांचित मीनतुल्य नयन, स्वच्छ चकचक करनेवाले बरछे की-सी तीक्ष्ण कांति बिखेर रहे हैं।

(उन राक्षसियों के) त्रुटिहीन नीलोत्पलतुल्य नेत्र (मदिरा पान करते-करते) उनके पतियों के नेत्रों की समता करने लगे (अर्थात्, लाल हो गये)। उनके बिम्बारुण अधर श्वेत वर्ण हो गये और युवक-युवतियाँ, परस्पर के प्रेम के सदृश ही, बारी-बारी से मदिरा का पान कर रहे थे।

उस स्थान में कल्पतरु सब वस्तुओं को देता रहता था। उससे ले-लेकर राक्षस-रमणियाँ अपने प्रकाशमान प्रवाल-सम पैरों में महावर, अपने शरीर पर अपार सुरभि से पूर्ण नवीन चंदन-रस, अपने विस्मयकारी तीक्ष्ण नयनों में अंजन तथा आभरणों को चुन-चुनकर यथास्थान धारण कर लेती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) व्याघ्र को भी मारनेवाले बलिष्ठ पुरुषों के द्वारा किया गया नया अपराध (मन में) प्रविष्ट होकर जब प्राणों को सताने लगता, तब शूल-सदृश नयनोंवाली (राक्षसियाँ) अपने अमृतमय मुख से विष-समान निःश्वास भरती हुई (अपने पतियों पर) इस प्रकार पदाघात करतीं कि उनकी बिजली-जैसी कमर लचक जाती, नूपुर झनझना उठते और राक्षसों के शरीर में रोमांच होने लगता।

उन राक्षसियों के अंजन-रंजित नयन अंतर की मादकता के कारण लाल हो गये थे। उनके मुख श्वेत हो गये थे। स्पन्दित भृकुटि-युक्त भौंहें झुक गई थीं। उनके अवयव काँप रहे थे। शरीर से स्वेद बह रहा था। शून्य-जैसी कटिवाली वे रमणियाँ मदिरा में प्रतिबिम्बित अपने मुख को किसी अन्य स्त्री का मुख समझकर, अपने प्रियतमों के लिए चिन्तित हो रही थीं।

(हनुमान् ने) उन राक्षसों को देखा, जो ईख के कोल्हुओं में, पर्वत की कंदराओं में, अमृत-सदृश जल से सिंचित उद्यानों में, सोनक (एक म्लेच्छ-जाति) लोगों के घरों में, स्वच्छ (क्षीर) सागर में भी अप्राप्य, शूल-सदृश नयनोंवाली स्त्रियों के कुमुद-सम अरुण अधर तथा धवल दंतों के मधुर रस को पीकर मत्त हो उठते थे।

अपने सुन्दर पतियों के अपराध के कारण उनसे रूठकर बिछुड़ी हुई राक्षसियाँ— जिनके स्तनों पर लिप्त चंदन-रस सूख गया था—अपनी खुली हथेली पर अपने वदन को रखे

बैठी थीं, मानों एक कंटकरहित रक्तकमल पर दूसरा कमल खिला हो। वे इस प्रकार निःश्वास भर रही थीं कि मानों उनके प्राण अब-तब हो रहे हों।

अपने आयुधधारी मनोहर पतियों से मान करने के कारण अपने पुष्प-पर्यंक पर प्राणहीन-सी बनकर पड़ी हुई कुछ राक्षस-रमणियाँ अधिक वेदनाजनक कामपीडा से प्रेरित होकर (अपने पतियों के आने के) रास्ते पर टकटकी लगाये पड़ी थीं और (पति से भेजी गई) दूती के मंदहास को देखकर पुनः जीवन पाकर तड़पने लगती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) विविध वाद्य बज रहे हैं और सुवासित केशों एवं रक्त अधर से युक्त अप्सराएँ हाथ से तालियाँ बजाती हुई मंगल गीत गा रही हैं। उन राक्षस-रमणियों के शंख, वलय, नूपुर, पादसर (एक पदाभरण), मेखला आदि शिथिल पड़ गये हैं और वे अपने गृह-देवताओं की पुष्पों से अर्चना कर रही हैं।

(हनुमान् ने देखा—) कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ मंगलोत्सव के समय नगर-परिक्रमा करती आ रही थीं (अर्थात्, जुलूस में आ रही थीं)। उनके आभरणों की तेज कांति-रूपी बाण और खड्ग अंधकार का नाश कर रहे थे। कर्णाभरण को छूनेवाले उनके नयन-रूपी तीखे बरछे युवकों के हृदय को भेद रहे थे। रंध्रवाले शंख तथा नगाड़े मेघों के समान बज रहे थे। और, उन मेघों के पीछे-पीछे चलनेवाली मयूरियों के सदृश राक्षसियाँ चल रही थीं।

(हनुमान् ने देखा—) पर्यंकों पर लेटी हुई कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, काम-समर के लिए उमगती होती हुई अपने पतियों के प्रति किये गये मान को त्यागकर धीरे-धीरे अपनी पलकें खोल, अंजन-रूपी तेल से सिक्त, कपट तथा कांति से पूर्ण, अपने दीर्घ नयन-रूपी कर-वालों को उनके कोशों से निकाल रही थीं।

प्रतिमा-समान स्त्रियाँ जो मान करने लगी थीं और जिनकी प्रज्ञा, मन तथा अन्य इंद्रियाँ उनके पतियों के संग ही चली गई थीं, वे बिजली के सदृश चमकती हुई, सुन्दर पंखोंवाली मराली के समान चलकर, अपने प्राण एवं स्वयं (अर्थात्, एकाकी ही) कक्षाओं में जाकर कपाट बंद कर लेती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) किन्नर-मिथुन गा रहे थे। नागकन्याएँ जयगान कर रही थीं और कुछ राक्षस-स्त्रियाँ (जो नव-विवाहिता थीं) घटा को चीरकर चमकने-वाली विद्युत् के समान, मुक्तालंकृत श्वेत विमानों पर आरूढ होकर, अपनी दासियों के साथ उस स्वर्णपुरी की वीथियों से होकर अपने नये पति के गृह को जा रही थीं।

कहीं बादल नगाड़े बजा रहे थे। देवता अभिनन्दन कर रहे थे। ऋषि प्रशस्तियाँ गा रहे थे। रमणियाँ गान करती हुई घेरकर चल रही थीं। देवांगनाएँ जयगीत गा रही थीं और हार तथा कर्णाभरणों से चमकते हुए कुछ राक्षस नव-विवाहोत्सव मना रहे थे।

(यक्ष-स्त्रियों, राक्षस-स्त्रियों, नागकन्याओं तथा कलंकहीन चन्द्र के समान मुखों-वाली विद्याधर-रमणियों आदि को देखते हुए जानेवाले मारुति ने एक स्थान पर पर्वत के समान लेटे हुए निर्विघ्न निद्रा में मग्न कुंभकर्ण को अपनी आँखों से देखा।)

वह मंडप (जिसमें कुंभकर्ण) सो रहा था, सतयोजन विशाल था। स्वर्गलोक में इन्द्र के मुकुटाभिषेक के लिए निर्मित मंडप-सदृश था। अपने स्वच्छ प्रकाश से अष्ट दिशाओं के अंधकार को निःशेष रूप से मिटा रहा था।

उस प्रकार के मंडप के मध्य, एक पर्यंक पर (वह ऐसा सो रहा था), जैसे सर्पराज हो, समुद्र हो या समस्त घना अंधकार एक स्थान पर आ इकट्ठा हुआ हो या अविचारणीय पाप-समूह ही साकार हो पड़ा हो।

मधुर मलय-मारुत समीप के शब्द-पूर्ण समुद्र में निमग्न होकर, त्रिविध गति से चलकर, परागों से पूर्ण दीर्घ कल्पवन में विश्राम करके, उस (कुंभकर्ण) पर आ लगता था।

देवांगनाएँ उसके पैर सहला रही थीं। उनके चन्द्रमुखों को देखकर उस मंडप के उज्ज्वल स्तंभों की चन्द्रकान्त-शिलाएँ स्वच्छ जलबिंदुओं को उसके मुख पर बरसा रही थीं।

(कुंभकर्ण के) अविच्छिन्न क्रम से चलनेवाले उच्छ्वास-निःश्वास-रूपी तीव्र प्रभंजन ने हनुमान् को मंडप के द्वार पर ही रोक दिया और फिर नासिका तक खींच ले चला। यह देखकर हनुमान् आशंकित हुआ (कि कहीं उसकी नासिका के भीतर न खींच लिया जाऊँ), अतः, हाथों को उछालता हुआ एकदम उछलकर दूर भाग गया।

सोनेवाले (कुंभकर्ण) की साँस इस प्रकार बाहर निकलती कि धूल आकाश तक उठ जाती और फिर, लौटकर उसकी नासिका में घुस जाती थी। वह तीव्र वायु यों चक्कर लगा रही थी, मानों समस्त विश्व को उड़ा देनेवाली अविनश्वर (प्रलयकालिक) प्रचंड वायु, प्रलयकाल की प्रतीक्षा करती हुई वहाँ घूम रही हो।

उसके हास-हीन (कठोर) विशाल मुँह में—जहाँ से लम्बी साँस घोर शब्द करती और धुआँ उठाती हुई उमड़ रही थी—वक्रदंत चमक रहे थे। मानों (उसने) पूर्ण चन्द्र को अपना शत्रु जानकर उसे तोड़कर अपने बेढंगे मुँह के दोनों पार्श्वों में खोंस लिया हो और उन्हें खा रहा हो।

वह इस प्रकार की विघ्नहीन निद्रा में डूबा था, जैसे कोई बड़ा नाग मंत्र से हत होकर पड़ा हो या विशाल समुद्र प्रलयकाल की प्रतीक्षा करता हुआ चारों ओर न उमड़कर शान्त पड़ा हो।

त्रिमूर्त्तियों में से एक कहलाने योग्य (हनुमान्) ने उस राक्षस को देखकर यह सोचा कि राक्षसराज कहलानेवाला वह सद्गुण-रहित (रावण) यही है। और, (शरणागत की) रक्षा में आसक्त अपनी आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ उगलने लगा।

उस (हनुमान्) ने फिर समीप जाकर गौर से देखा, तो दस सिर और अति बलिष्ठ बीस भुजाओं को उस निद्रित राक्षस में न देखकर, भयंकर रूप से मन में उत्पन्न क्रोध नामक वडवाग्नि को अपने विवेक नामक विशाल समुद्र के जल से शांत कर दिया।

कर्णामृत के रूप में राघव की कीर्त्ति को बढ़ानेवाले उस कपिनायक ने, अपने कोप को दबाकर, हाथ उठाकर कहा—यह चाहे कोई भी हो, इसके विनाश के लिए अब कुछ ही दिन शेष हैं। इसके बाद वह उसके पास से हट गया।

रामचन्द्र का यश वर्णन करने योग्य वह (हनुमान्) मंडपों में, प्रासाद-पंक्तियों में, स्त्रियों की नृत्य-शालाओं में, सभा-भवनों में, देवालयों में, संगीत-वेदिकाओं पर, विद्या-शालाओं में तथा अनेक स्थानों में (सीता को) खोजता हुआ घूमता रहा।

हनुमान्, अति सुन्दर गृहद्वारों में, झरोखों की शलाकाओं में, सूक्ष्मता से देखने योग्य पुष्पनालों में, सर्वत्र, हवा बनकर, धुआँ बनकर घुस जाता और खोजता। कहीं वह अति सूक्ष्म रूप धारण करता, कहीं बहुत विशाल रूप धारण करता। (सच पूछिए, तो) उसकी उस स्थिति का वर्णन कोई नहीं कर सकता है। अणु में तथा मेरु में भी जिस प्रकार चक्रधारी (विष्णु) व्याप्त रहता है, वैसे ही वह भी सर्वत्र प्रवेश करता चलता रहा।

इस प्रकार, सब प्रकार के स्थानों में जाकर रक्तकमल-जैसी-उँगलियोंवाली स्त्रियों को देखता हुआ चलनेवाला वह उत्तम (हनुमान्) उस पुण्यवान् (विभीषण) के विस्तीर्ण सौध में पहुँचा, जिसका जन्म राजाओं, ब्राह्मणों, ऊपर के लोकों तथा नीचे के लोकों के निवासियों के लिए मंगलदायक था।

नवमधु की वर्षा करनेवाले कल्पवृक्षों की छाया में, स्फटिक-वेदिकामय प्रवाल-सौध में स्थित उस विभीषण के समीप जा पहुँचा, जो ऐसा था, मानों धर्मदेवता यह सोचकर कि काले रंग के राक्षसों के मध्य धर्मदेवता के रूप में जीवित रहना कठिन है, अतः वह राक्षसों की आकृति अपना कर ही गुप्त रूप में रह रहा हो।

उसके समीप खड़े होकर (हनुमान् ने) उसके स्वभाव को अपने सूक्ष्म ज्ञान के द्वारा पहचाना और यह जाना कि वह (विभीषण) अकलंक और गुणवान् है। अतः, उसके प्रति क्रोधहीन होकर वहाँ से हट चला और पर्वत-सदृश एक करोड़ प्रासादों में खोजता हुआ क्षणमात्र में उन्हें पार कर गया।

वह (हनुमान्) श्रेष्ठ देवांगनाओं, पूर्णचन्द्र के समान वदन और रक्ताधर से शोभायमान रमणियों को देखकर और यह समझकर कि इनमें से कोई (सीता) नहीं है, अनेक प्रासादों को पार करता हुआ, मन से भी अधिक वेग से चलने लगा और वह उस प्रासाद के द्वार पर पहुँचा, जहाँ इन्द्र बंदी था।

अनेक आयुधों को अपने हाथों में धारण करनेवाले, चन्द्रकला-सदृश खड्गदंतों-वाले, पुरानी कहानियों-पहेलियों आदि को परस्पर सुनानेवाले (शत्रुओं का) वध करने-वाले क्रोधोत्साह से भरे, गिनने में सहस्र-सहस्र संख्यावाले, ज्ञानहीन राक्षसों के पहरे को पार करके, वह (हनुमान्) इन्द्रजित् के गृह में गया।

धुआँ भी जहाँ प्रवेश न कर सके, वहाँ भी जानेवाले उस (हनुमान्) ने (इन्द्र-जित् के गृह में) प्रवेश करके अपने योग्य सुन्दरियों के मध्य निद्रा करनेवाले उस इन्द्रजित् को देखा, जो ऐसा था, मानों त्रिनेत्र का कुमार (कार्त्तिकेय) अपने छह मुखों और दिशाओं में फैले (बारह) हाथों में से कुछ को छिपाकर वहाँ सो रहा हो।

हनुमान् ने अनुमान किया कि पर्वत-कंदरा में निवास करनेवाले सिंह-तुल्य यह (इन्द्रजित्) उज्ज्वल वक्रदंतों से युक्त राक्षस है, परशुधारी (शिव) का कुमार (कार्त्तिकेय) है,

या कोई और है ? मैं नहीं जानता। हाँ, मेरे प्रभु (राम) और उनके अनुज (लक्ष्मण) को इसके साथ अनेक दिनों तक श्रम-साध्य युद्ध करना पड़ेगा।

युद्ध-कुशल रावण ने जब इसे युद्ध में अपने साथी के रूप में पाया है, तब उस (रावण) के द्वारा त्रिभुवन का विजय होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। और, इसकी क्या प्रशंसा की जाय ? यह कहना भी विवेक की बात न होगी कि शिव, चतुर्मुख और लक्ष्मीनाथ (विष्णु) को छोड़ अन्य कोई इसकी समता भी कर सकता है।

यों सोचता हुआ, हाथ को सिकोड़कर गाल पर रखे हुए (अर्थात्, आश्चर्य करता हुआ) खड़ा रहा। फिर, यह सोचकर कि यहाँ खड़े रहकर समय व्यतीत करना उचित नहीं है, अन्यत्र जाना ही श्रेयस्कर है, वहाँ से हट चला। उसके बाद सहस्रों प्रासादों की पंक्तियों में सन्देह-रहित रूप से (सीताजी का) अन्वेषण करता हुआ आगे बढ़ा।

उसने अक्षयकुमार के घर को पार किया। फिर, अतिलाप के निवास में गया। अन्य योद्धाओं के गृहों में खोजा। फिर, मंत्रणा करने में चतुर (मंत्रियों) के गृहों में प्रविष्ट हुआ। राघव के चरण[1] के रूप में प्रसिद्ध वह (हनुमान्) फिर वहाँ से भी हट गया।

इस प्रकार, बड़े बड़े सेनापतियों के निवासों में तथा सहस्रकोटि स्वर्ण-प्रासादों में प्रवेश करता हुआ, वह (हनुमान्) उस अनश्वर महानगर के मध्य-स्थित रावण के विशाल गुप्त प्रासाद को देखने के लिए (शिल्प) शास्त्रोक्त तीनों परिखाओं में बीचवाली परिखा के समीप जा पहुँचा।

अनुपम मत्त गज के सदृश, जिसे किसी अन्य साथी की अपेक्षा नहीं थी, प्राची दिशा में समुद्र से उदित होनेवाले सूर्य को जो फल समझकर पकड़ने के लिए चल पड़ा था, वह (हनुमान्) उस परिखा को देखकर सोचने लगा—मेरे द्वारा लाँघे गये शीतल समुद्र-रूपी देवता का (एक वानर से लाँघे जाने के कारण) जो अपमान हुआ, मानों उसका प्रतीकार करने के लिए ही सातों समुद्र इस अलंघ्य परिखा के आकार में एकत्र हो गये हैं।

यदि कोई इसे देखकर कहे कि यह अति विस्तृत तथा दीर्घ परिखा है, तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि, यदि असंख्य जन कल्पांत तक सारी धरती को खोदते रहें, तो भी इतनी बड़ी परिखा निर्मित नहीं कर सकेंगे। अतः समुद्र-सदृश, अति क्रोधी राक्षस (रावण) से डरकर अवश्य ही सातों अगाध समुद्र इस लंका को घेरे पड़े हैं।

उस प्रकार की जलपूर्ण विशाल परिखा के निकट पहुँचकर प्रभु (राम) की कीर्त्ति जहाँ-जहाँ गई, वहाँ सर्वत्र पहुँचनेवाला हनुमान् मन में कहने लगा कि जिस वेग से मैंने समुद्र को लाँघा था, उससे दुगुने वेग के साथ चलने पर भी इसे पार करना कठिन है।

वह परिखा इस प्रकार जल से पूर्ण थी कि उसके जल को पीने के लिए गगन-स्थित चारों प्रकार के मेघ नीचे उतर आते थे और उस परिखा का जल ऊपर उमड़

१. वैष्णव-संप्रदाय में गरुड और हनुमान् विष्णु के चरण कहलाते हैं। तमिल में गरुड को 'स्पेरिय तिरुवडि' = ज्येष्ठ श्रीचरण, और हनुमान् को 'शिरिया तिरुवडि' = कनिष्ठ श्रीचरण, कहा जाता है।—अनु०

उठता था। वह दुःखदायक (रावण) की सेना के सदृश थी। उसका वर्णन करना भी संभव नहीं है।

उस परिखा के जल में, हाथियों का त्रिविध मदजल, अश्वों की लार का जल, देवांगनाओं का कुंकुम-लेप, (अन्य) स्त्रियों के सुवासित केशों की कस्तूरी और अगरु (पुष्पों से प्रवाहित), मधु, चन्दन-रस, अन्य सुगंधित काष्ठों का लेप आदि मिलते थे और उसके जल को सुवासित कर देते थे।

उस परिखा में, ध्यान-निरत सारस, क्रौंच, 'पुदा', हंस, जल-कुक्कुट, चक्रवाक, किन्नर, बक, 'किलुक्कम', 'शिरल', जल-काक, कुणाल आदि विविध जलचर - पक्षी कलरव करते रहते थे।

वहाँ की सुन्दरियों के (शरीर से प्राप्त) अगरु, कस्तूरी, महावर आदि से संयुक्त होने के कारण वह परिखा, अपने जल में स्नान करनेवाले उत्तम लक्षणवाले हाथियों तथा उत्तम जाति की मृदु गतिवाली हथिनियों के मध्य एक विचित्र कलह उत्पन्न कर देती थी। (तात्पर्य यह है कि स्नान करने पर हाथी के शरीर में विविध रंग और गंध लग जाते थे, जिससे उसे कोई दूसरा प्राणी समझकर हथिनी उससे हट जाती थी, इसी प्रकार हथिनी के प्रति हाथी का भी भाव हो जाता था।)

मधु-गंध से युक्त नव-विकसित कमलपुष्प उस परिखा के घाटों में (संध्या के समय) मुकुलित हो गये थे। क्योंकि, बंदिनी बनाई गई (सीता) देवी के वदन से जो बन्धुत्व रखते हैं, वे कमल (सीता के दुःखी होने पर) स्वयं विना म्लान हुए कैसे रह सकते थे ?

स्फटिक-शिलाओं को काटकर निर्मित उज्ज्वल घाट तथा जल, दोनों में ऊपर से कुछ अंतर नहीं दिखाई देता था।[1] जब स्वच्छहृदय पुरुष नीच जनों से मिलते हैं, तब उनकी सरलता के कारण उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं पहचान सकते।

(उस परिखा के घाटों पर) जल से ऊपर के भाग में, और जल के अंतर के भाग में इन्द्रनील आदि विविध रत्न तथा मोती जड़े थे। उनकी कांति बिखेरने से वह परिखा ऐसी लगती थी, मानों क्षीरसागर आदि विविध समुद्र, प्रभंजन के कारण, सम्मिलित हो एकाकार हो गये हों।

उस समय, (हनुमान् ने) उस परिखा को भी समुद्र के सदृश ही पार कर लिया। उसके साथ की प्राचीर को भी पार कर लिया और नगर के उस मध्य भाग में जा पहुँचा, जहाँ उसकी सुरक्षा के कारण कोई उसके पास भी नहीं फटक सकता था।

आगे क्या हुआ ? अब हम कहेंगे।

यमराज भी जिनसे भयभीत होकर भाग जाता था, वैसे राक्षसों के निवास-भूत उस दुर्गम नगर में, अर्धरात्रि के समय, वह (हनुमान्) एकाकी ही, बारह योजन विस्तीर्ण तीन लाख वीथियों में (सीताजी का) अन्वेषण करता रहा।

---

१. स्फटिकमय घाट उत्तम जन का तथा परिखा-जल, जिसके अंतराल में कीचड़ है, नीच जन का उपमान है।—अनु०

(उस नगर के मध्य भाग में) मधुशालाएँ सूनी पड़ी थीं, विशाल जलधि-तुल्य उन राक्षसों का शब्द भी थम गया था। संगीत थम गये थे। दास-दासियाँ भी अपने-अपने कार्य समाप्त करके विश्राम कर रही थीं। त्रिविध वाद्य भी (गीतांग, नृत्तांग और उभयांग के वाद्य) मौन हो गये थे तथा सर्वत्र निद्रा की तैयारी हो रही थी।

उत्तम वर्ण के अश्व आनंद से शिर झुकाकर निद्रा-मग्न थे। प्राचीर के बलिष्ठ पहरेदार रह-रहकर नगाड़े बजाते थे, जिससे सर्वत्र प्रतिध्वनि हो उठती थी। उज्ज्वल पुष्पों से अलंकृत, सुवासित कुंतलोंवाली स्त्रियाँ—जो अपने प्रेमपात्र पतियों से वियुक्त नहीं हुई थीं, या अपने पति के किसी कार्य से मन में ताप पाकर भी जो अपना मान बाहर प्रकट करना नहीं चाहती थीं—निद्रा-मग्न थीं।

हारधारी, उन्नत भुजावाले नवयुवक, काम-समर से श्रांत हो आनन्दमत्त मयूरिणी-सदृश तरुणियों के स्तनों पर बेसुध पड़े थे। सुरत-केलि के ऐसे दृश्य वहाँ दिखाई पड़े।

कुछ लोग मधुर मदिरा के घाटों में बेसुध पड़े थे और कुछ सुगंधित धूम से आवृत भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाले मधु से पूर्ण पुष्पों की सेज पर, कामानुभव-रूपी मदिरा से मत्त हो अचल पड़े थे।

मदिरा-पान से मत्त नर्त्तकों के संगीत की राग-रूपी पलकें बंद थीं। घने अंधकार के कारण आकाश-तट की प्रकाश-रूपी आँखें बंद थीं। वीणाओं के मधुर स्वर-रूपी नेत्र बंद थे। बजनेवाले मृदंग आदि वाद्यों के नाद-रूपी नेत्र भी बंद थे। सर्वत्र कपाट बंद हो गये थे।

सुगंधित कस्तूरी आदि के लेप और श्वेत पुष्पों से सुशोभित अपने वक्ष पर लगनेवाले मलय-मारुत के द्वारा प्राणों पर भी आघात होने से, वियोगिनी रमणियों के काले नेत्र उमड़ते हुए जल-बिंदुओं से पूर्ण थे। उनके मन, जिनकी वहाँ कोई कमी नहीं थी, अब विरह-ताप से जल रहे थे।

(दीपों में) पिघले हुए घी के कम हो जाने से मंद पड़े हुए अगणित दीपों को मंदमारुत—शत्रुओं को दुर्बल पाकर उनका विनाश करके बढ़नेवाले (किसी राजा) के सदृश—बुझाने लगा। (उस समय वहाँ की रमणियों के) शरीर की उज्ज्वल कांति, समुद्रों तथा अपार दिशाओं में दीप बनकर प्रकाश फैलाने लगी।

नित्य-नियमों का यथाविधि पालन करनेवाले पूर्ण ज्ञानी उत्तम व्यक्ति भी निद्रा-ग्रस्त हो गये। योगी लोग भी निद्रित हुए। मद की उष्णता से मत्तगज भी सो गये। विक्षिप्त चित्तवाले भी निद्रा-मग्न हुए। ऐसी स्थिति में अब दूसरों के बारे में क्या कहा जाय?

उस समय, कर्म-रूपी शत्रु को जीतनेवाला (अर्थात्, कर्मसंग-रहित हनुमान्) उस नगर के बीचवाले प्राचीरों के मध्य[1] दो करोड़ उत्तम राज-वीथियों में अन्वेषण करता रहा।

---

१. लंकानगर के मध्यभाग में स्थित एक परिखा और प्राचीर का वर्णन पहले किया गया था। अब इस पद्य में उस नगर के मध्यभाग में स्थित अन्य परिखा और प्राचीर का उल्लेख है, जो रावण के आवास के चारों तरफ बने हुए थे।—अनु०

फिर, दुराचारी (रावण) के निवास के निकट पहुँचा। उसने वहाँ की खाई और प्राचीर को पार कर भीतर प्रवेश किया।

युद्ध करने की प्रकृतिवाले रावण का वह स्वर्णमय प्रासाद चन्द्रवत् था और उसको घेरकर रहनेवाले नारियों के निवास नक्षत्रों के समान थे। उनमें वह (हनुमान्) जा पहुँचा।

वह (हनुमान्) उस वीथी में जा पहुँचा, जहाँ समस्त यक्ष-रमणियाँ एक साथ निवास करती थीं। वे (यक्ष-स्त्रियाँ) दुर्लभ अमृत-समान थीं तथा उनके वदन इस प्रकार कांतिपूर्ण थे कि यदि खरगोश के आकारवाले कलंक से हीन कोई चन्द्रमा उत्पन्न हो, तो वह भी उनके सामने तुच्छ जान पड़ेगा।

आसक्ति-रूपी दृढ कर्म मूल को संपूर्ण रूप से उखाड़ डालनेवाला (हनुमान्) अपने आकार को बारीक सूत और मंद मारुत से भी अधिक सूक्ष्म बनाकर, अति उज्ज्वल कांति को बिखेरनेवाले हीरकमय तालों के छिद्रों में से होकर, भीतर चला जाता और (सीता का) अन्वेषण करता।

कुछ स्त्रियाँ पर्वत-सदृश हाथियों के बल से युक्त रावण पर अत्यधिक अनुरक्ति के कारण (विरह-पीडा से) निःश्वास भरती थीं,[1] और कमल-पत्र के समान अपनी पलकों को स्पन्दित किये बिना चित्र-लिखित-सी बैठी थीं।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) निरन्तर बाण बरसानेवाले मन्मथ से डरकर या मृदुल सुख-स्वप्न का फल प्राप्त करने की इच्छा से, या न जाने किस गुप्त भावना से अपने नेत्र बन्द किये, अन्तर में निद्रा न होने पर भी, बाहर से निद्रित-सी पड़ी थीं।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ), जिनके स्तन, मन्मथ के अभग्न कठोर शरों के द्वारा अनेक बार प्रताडित हो चुके थे और जिनके श्वास फूल रहे थे (अर्थात्, मरण की-सी दशा हो गई थी) वे यह सोचती थीं कि सोने से क्या प्रयोजन है? शासक रावण का चित्र ही क्यों न बनावें? (जिससे उनका दुःख किंचित् कम हो।)

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) आँखों में आँसू भरकर, इस प्रकार बोल उठीं, मानों चित्र-प्रतिमाएँ बोल उठी हों। वे पक्षियों से कहने लगीं कि तुम मेरे प्राणों को (अर्थात्, प्रियतम रावण को) यहाँ नहीं बुला रहे हो, वहाँ जाकर मेरी दशा का वर्णन भी क्यों नहीं करते हो? तुम मुझपर दया करके कोई भी उचित सहायक कार्य तो करो।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) शीतल मलयानिल के लगने से अत्यन्त व्याकुल हो उठती थीं और अपने भारी स्तनों पर दृष्टि डालकर (विरह की) पीडा देनेवाले (रावण) की बलशाली भुजाओं की पुष्टता का स्मरण करके ऐसे तड़प उठती थीं कि उनके प्राण अत्यन्त शिथिल हो जाते थे।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) उन पर्यंकों पर, जिनके दोनों ओर लगे उज्ज्वल तथा लाल रत्नों की, सदा एकरूप रहनेवाली, कांति बिखरती रहती थी, अनेक दिनों से अपनी

१. यहाँ अर्थ ध्वनित है कि रावण सीता के प्रति अपने मोह के कारण अन्य स्त्रियों के प्रति उपेक्षा दिखाने लगा था, जिससे उसपर अनुरक्त स्त्रियाँ विरह-पीडा का अनुभव कर रही थीं।—अनु०

इच्छा के व्यर्थ होते रहने के कारण (अर्थात्, अपने प्रियतम रावण के न आने से) कृश हो पड़ी थीं और लाल आकाश में उदित चन्द्र के समान दिखाई पड़ती थीं।

कांति से प्रज्ज्वलित कल्पलता के समान कुछ यक्ष-स्त्रियाँ (विरह-पीडा से) अपने कंधों के समान ही काँपनेवाले पलंगों पर लेटी थीं और (उन्हें सुलाने की चेष्टा करनेवाले गायकों की) वीणा का नाद उनके कानों में प्रवेश करके बिच्छू के डंक-सदृश पीडा उत्पन्न करता था, जिससे वे बेसुध हो जाती थीं।

जिस (शिव) ने मेरु को (धनुष बनाकर) झुकाया था और कठोरता से अपने लक्ष्य पर लगनेवाले अग्निमुख बाण को (त्रिपुरासुर पर) चलाया था, उसके पर्वत (कैलास) को भी उखाड़कर उठा लेनेवाली (रावण की) भुजाओं पर लिप्त चन्दन-रस को अपने पीन स्तनों पर लगा हुआ देखकर (विरह में भी) कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) आनन्द प्राप्त करती थीं।[1]

चारों दिशाओं के समुद्र जिस समय उमड़ उठते हैं, उस (प्रलय के) समय जिस (रावण) ने, अपनी सुन्दर बाहुओं की नसों[2] को मीड़ते हुए, चारों प्रकार के मधुर रागों[3] में, तांडव नृत्य करनेवाले (शिव) की स्तुतियाँ गाई थीं, उस (रावण) की प्रशंसा के गान कुछ यक्ष-स्त्रियाँ कर रही थीं।

इस प्रकार की यक्ष-रमणियों के निवासभूत प्रासादों को पारकर धर्म-मार्ग पर चलनेवाला वह (हनुमान्), उस (रावण) की जाति की सुन्दरियों के आवास में जा पहुँचा।

उन प्रासादों में, जहाँ अग्नि-सदृश प्रज्ज्वलित कांतिवाले लाल रत्नों के अरुण बालातप ने निर्बाध रूप से फैलनेवाले अंधकार को पी लिया था, जिससे वे (प्रासाद) सर्वदा दीप के बिना भी स्वयं-प्रकाशित रहते थे, कुछ राक्षस-रमणियाँ दासियों के चले जाने पर 'कामना-द्वितीय' होकर (अर्थात्, अकेलेपन में अपनी कामना के साथ रहकर) क्रोध किये बैठी थीं।

उनके लाल केशों पर धूम-सदृश भ्रमर मँडरा रहे थे, जो अग्निज्वाला पर कस्तूरी-निर्मित लेप लगाये जाने का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। वे राक्षसियाँ, नवपुष्पों से आवृत पलंग को अपना शत्रु मानकर, वहाँ से हट गई थीं और विशाल स्फटिकमय शीतल वेदी पर जाकर लेटी हुई थीं। वे उत्तरोत्तर बढ़ती हुई काम-व्याधि से पीडित थीं।

---

१. तात्पर्य यह है कि रावण की भुजाओं से पूर्व-आलिंगित स्त्रियों के स्तनों पर चन्दन के चिह्न लगे थे, जिससे ध्वनित है कि विरह-पीडा में रहनेवाली वे नारियाँ, स्नान, अनुलेपन, अलंकरण आदि नहीं करती थीं।—अनु०

२. उत्तरकांड में यह कहानी वर्णित है कि जब कैलास को रावण ने उठाया था, तब शिव ने उसे पर्वत के नीचे दबा दिया था। उस समय रावण ने अपना एक सिर काटकर एक बाहु में लगा लिया और उस बाँह की नसों को तंत्री बनाकर—वीणा के जैसे बजाकर गाया और शिव को प्रसन्न किया।—अनु०

३. इसमें उल्लिखित चार प्रकार के राग तमिल के अनुसार—(१) पालै, (२) कुरिंजि, (३) मरुदम और (४) शेव्वलि हैं।—अनु०

(कुछ राक्षसियाँ ऐसी थीं कि) उनका अनुपम शरीर ही सूर्य-किरणों से लसित विशाल गगन था। उनके मुक्ताहार, नक्षत्रों की पंक्तियाँ थे। उनकी कटि विद्युत् थी। घने केश लालिमा से भरा आकाश था। काजल से अंजित नयन बादल थे। ललाट प्रकाशमान अर्धचन्द्र था। उनका वह रूप संध्याकालीन आकाश की समता करता था।

(कुछ राक्षसियाँ) दासियों के साथ अत्युन्नत अट्टालिकाओं के चन्द्रिकापूर्ण आँगनों में पहुँच जाती थीं और नभ के नक्षत्रों को अपने हाथों से उठाकर उन्हें गोटी बनाकर खेलने लगती थीं। उस समय उनके नीलोत्पल-सदृश कज्जलांकित नेत्र बार-बार अपना रंग बदलते थे (अर्थात्, उन नक्षत्र-रूपी गोटियों को ऊपर उछालने पर उनकी छाया से नेत्र धवल पड़ जाते थे और वर्षा के समान मधु को बहानेवाले (अर्थात्, मधु-पूर्ण पुष्पों से अलंकृत) उनके घुँघराले केशपाश शिथिल हो जाते थे।

कर्णाभरणों से शोभायमान वदनवाली देवांगनाएँ, जो वहाँ दासियों की तरह सेवा करती थीं, कई स्थानों में फैले हुए आकाश-गंगा के प्रवाह से (स्नान के लिए) जल भरकर ला देतीं, किन्तु (विरहिणी) राक्षस-स्त्रियाँ उस जल को शीतलता-हीन कहकर कुपित होतीं और रत्नों को जड़कर बनाये गये प्रकाशमान सौधों की छतों पर अपनी कटि को लचकाती हुई चढ़ जातीं तथा वहाँ स्थित मेघों में छेद करके उनसे बरसनेवाले जल-धारा में स्नान करती थीं।

कुछ राक्षसियाँ (विरह के कारण) निद्रा न आने से स्वर्ण-फलकों को रखकर जूआ खेल रही थीं और यह सोचकर कि मधुर प्राणनायक (रावण) ने सर्पराज के फनों से बलात् छीनकर जो लाल माणिक्य ला दिये हैं, उन्हें अपने पास ही सुरक्षित रखना चाहिए, वे उन माणिक्यों को अपने पास रख लेती थीं और अपने अन्य आभरण, विद्या-धरों से छीनकर लाये गये किरीट, हार, आदि को दाँव पर रखती थीं।

कल्प-वन में स्थित स्वर्ण-प्रासाद में, मुक्ता-वितान के नीचे सिद्ध-स्त्रियाँ अति मधुरनाद-युक्त मृदंगों को बजाकर गा रही थीं। उधर मधुरभाषिणी नागकन्याएँ 'तण्णुने' (नामक वाद्य) को अपने करों से ध्यान के साथ बजा रही थीं और मनोहर कंधों तथा मधुर हार से युक्त अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, जिन्हें देखकर कुछ राक्षस-स्त्रियाँ आनन्द उठा रही थीं।

कील के समान, दृढता से (मन में) गड़े रहनेवाले प्रेम के कारण, हृदय में उत्तप्त होकर, विरह की पीडा के कारण काजल-लगे नेत्रों से अश्रु-निर्झर बहानेवाली कुछ राक्षसियाँ (उस विरह को दूर करने का) कोई उपाय न जान पाती थीं, तो अमृत-तुल्य मधुरिमा को अधिकाधिक बरसाती हुई अपने करों से ताली बजाकर गाने लगती थीं। उस समय वीणा, मुरली और उनका कंठ—तीनों के नाद किंचित् भी विभिन्नता न रखकर एक हो जाते थे।

कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ, जिनके नेत्र, तीक्ष्ण मदिरा-पान करने के कारण घूम रहे थे, कुरवै नृत्य करती थीं। उस समय उद्यान के कदलीवृक्ष-सदृश उनकी जंघाओं पर पहने हुए सुन्दर वस्त्र तथा कटि पर पहनी हुई मेखला, शिथिल हो खिसकने लगती थी।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, नाग-सर्प के विष के समान (अति मादक) मदिरा को तथा (विविध प्राणियों के) रक्त को पीकर झुंड बांधकर कुचरी (गूर्जरी ?) वाद्य के समान कंठस्वर से गा रही थीं। वे (उस समय) करताल की ध्वनि करती हुई लज्जा त्यागकर इस प्रकार लड़खड़ा रहीं थीं कि कटि-वस्त्र और मेखलाओं के खुल-खुलकर गिरने पर भी कुछ ध्यान नहीं देती थीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जिनका मन दही के रंगवाली मदिरा पीने के कारण अत्यन्त भ्रांत हो गया था और जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, शोर मचाती हुई यह कहती थीं कि 'देखो, मुझपर देवता का आवेश हो गया है।' फिर, वे दोनों हाथों को अपने सिर के ऊपर फैलाये, काँपती हुई मुँह को बाकर चिल्ला उठतीं और फिर, शिथिल पड़कर चुप हो जाती थीं।

हनुमान् इस प्रकार की राक्षस-स्त्रियों के चार करोड़ गृहों से भरी विशाल दिव्य वीथियों को देखकर, फिर सिद्धजाति की स्त्रियों के आवासों को भी पार कर विद्याधर-स्त्रियों की वीथी में जा पहुँचा।

अधिक बढ़े हुए प्रेमवाली कुछ विद्याधर-स्त्रियाँ, मकराकार दीर्घ किरीटधारी (रावण) के न आने से यों उद्विग्न हो उठी थीं कि उनका मन उनकी (नृत्यरत क्षीण) कटि से भी अधिक चंचल हो रहा था। गायक लोग अपने कंठस्वर से अविभिन्न ध्वनि-वाले उत्तम वाद्यों को लेकर शास्त्र-सम्मत रीति से गाने लगते थे, तो उनके गान घोर सर्प बनकर उन विद्याधर-रमणियों के कानों में प्रविष्ट हो जाते थे, जिससे वे अत्यधिक व्याकुल हो उठती थीं।

जिस रावण ने प्रशंसनीय सन्मार्गों पर चलनेवाले मुनियों तथा देवताओं को आश्रयहीन करके सताया था और उनके समस्त बल को अपनी प्रज्वलित कोपाग्नि से जला दिया था, ऐसे भयंकर प्रतापवाले (रावण) पर ये स्त्रियाँ सदा आसक्त रहती हैं, यह सोचकर ही, मानों कठोर वैर के साथ, शीतकिरण (चन्द्रमा) उष्ण किरणों की बौछार करके उन (विद्याधर) स्त्रियों के उमड़े हुए स्तनयुगों को जलाता था और वे पुष्प-लताओं के समान झुलस गई थीं।

विद्याधर-स्त्रियाँ, जो विरह-पीडा से इस प्रकार व्याकुल थीं कि स्वल्प काल भी उनको कल्प के समान लगता था, और जो पहले (रावण के द्वारा) आलिंगन-पाश में बद्ध हुई थीं, अब अपने स्तनों पर (उस आलिगंन-पाश के कारण) घनीभूत चन्दन-लेप को तथा (रावण द्वारा) चित्रित चिह्नों (नख-क्षत, पत्र-लेखा आदि) को प्रेम से निहारतीं, तो उनके प्राण बिंध जाते थे, उनके करवाल-सदृश नेत्र लाल हो जाते थे और वे दुःख से निःश्वास भरने लगती थीं।

इस भाँति की विद्याधर-स्त्रियों के निवासभूत बारह करोड़ गृहों से युक्त दीर्घ वीथी में खोजता हुआ अविनश्वर (हनुमान्) तीनों भुवनों के नायक (रावण) के ऊँचे प्रासाद के निकट जा पहुँचा और वहाँ के उस भवन को देखा, जहाँ पूर्णचन्द्र को परास्त करनेवाले उज्ज्वल वदन से शोभायमान मयपुत्री (मंदोदरी) निवास करती थी।

उस मंदोदरी के भवन को अपनी आँखों से देखकर, मन में तर्क-वितर्क करता हुआ हनुमान् यों सोचने लगा—मेरा उद्देश्य (सीता का अन्वेषण) अब पूर्ण हो गया। यह सौध (लंका के अन्य स्त्रियों के निवासों से) विलक्षण है। कदाचित् यही वह स्थान है, जहाँ प्रभु की प्राणाधिका प्रिया को (रावण ने) चुराकर ला रखा है। रत्न-सदृश अन्य प्रासादों के मध्य यह सौध इसी प्रकार है, जिस प्रकार विष्णु के विशाल वक्ष का (कौस्तुभ) रत्न हो। यह सोचकर वह विस्मय से भर गया।

रंभा, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी आदि अप्सराएँ मंदोदरी के उन मृदुल चरणों को सहला रही थीं, जो मन्मथ के पुष्प-शरों के तूणीर के समान थे। उनमें से कई पंखा झल रही थीं। इक्षुरस को भी फीका कर देनेवाली अतिशय मधुरभाषिणी अप्सराओं के द्वारा बजाई गई वीणा की मृदुल ध्वनि उस (मंदोदरी) के कानों को तृप्त कर रही थी और कल्प-वृक्ष के पुष्पों की सुरभि उसकी नासिका को तृप्त कर रही थी।

(संसार की) आसक्ति से रहित उत्तम प्रकृतिवाले लोग भी, यदि नीच जनों के कोप-भाजन बनते हैं, तो उससे उनकी हानि होती है या कुछ लाभ होता है, न जाने क्या होता है?—इस प्रकार की आशंका से विकल होता हुआ अति उत्तम मंदमारुत भी वहाँ के सेवकों के बुलाने पर पास जाकर पूछता था कि क्या आज्ञा है? फिर (वह आज्ञा पूरी करके) लौट आता था। यों बार-बार आता-जाता हुआ वह (मंदमारुत) झूले के समान झूल रहा था।

इस प्रकार, प्रकाशमान रत्न-दीपों की ज्योति को मंद कर देनेवाली अपनी शरीर-कांति को बिखेरती हुई, निद्रा-मग्न उस सुन्दरी (मंदोदरी) को, निर्निरोध गतिवाले उस (हनुमान्) ने देखा। वह सोचने लगा कि (कदाचित्) यह सीता ही हैं? मन में उमड़नेवाली तीक्ष्ण क्रोधाग्नि से उसका शरीर और अपूर्व प्राण दोनों जल उठे और वह असमान घोर दुःख से व्याकुल हो उठा। फिर, मन में वह कहने लगा—

अस्थि-पंजर के सहारे बढ़नेवाले इस शरीर से जो फल प्राप्त हो सकता है, वह मैं नहीं प्राप्त कर सका (अर्थात्, अपने प्रभु की सेवा नहीं कर सका)। इतना ही नहीं, यदि प्रेमपाश को, कुलीनता को तथा अपने अलौकिक पातिव्रत्य को त्यागकर सीता ही इस रूप में यहाँ पड़ी है, तो काकुत्स्थ का यश, उनका सौंदर्य, मैं, यह लंका, ये राक्षस—अभी-अभी और सभी विनाश को प्राप्त हो जायेंगे।

फिर, हनुमान् ने सोचा—वे (सीता) देवी मनोहर मानवरूपधारिणी हैं। किंतु, यह तो (मानवी से) भिन्न आकारवाली है? इससे सन्देह उत्पन्न होता है कि यह या तो कोई यक्ष-स्त्री है, या असुर-स्त्री? सुरभिपूर्ण उत्तम पुष्प-माला को धारण करनेवाले (श्रीराम) को देखकर जिस रमणी के मन में प्रेम उत्पन्न हुआ था, क्या उसका मन मीनकेतन (मन्मथ) की ओर भी आकृष्ट हो सकता है? (इसको देखकर मैंने सीता की) जो भ्रांति की, वह अपराध है।

आगे हनुमान् ने सोचा—यद्यपि इस (मंदोदरी) के शरीर में कुछ उत्तम लक्षण दृष्टिगत हो रहे हैं, तथापि इसका शरीर यह घोषणा कर रहा है कि इसपर ऐसी एक बड़ी

विपदा आनेवाली है, जिसकी कोई सीमा नहीं होगी। यह (जो निद्रा-मग्न है) जिसके पुष्प-शोभित काले केश बिखरे पड़े हैं, कुछ विपरीत वचनों का प्रलाप कर रही है। अतः, शीघ्र ही इसका पति मरनेवाला है और इस महान् नगरी का भी विनाश होनेवाला है।

ऐसा अनुमान करके और यह विचार कर कि 'यह सीता है'—इस भ्रांति के कारण उत्पन्न मेरी व्याकुलता अब दूर हो गई। वह स्वस्थमन हुआ। फिर, उस भवन को पीछे छोड़कर आगे बढ़ा। और, वह (हनुमान्), जो इस प्रकार के पर्वत-सदृश भुजाओं से विशिष्ट था, जिसे रावण भी उठा नहीं सकता था, एक ऐसे अत्युन्नत प्रासाद के भीतर जा पहुँचा, जिसके सम्मुख ऊँचा मेरु भी छोटा पड़ता था।

(उस समय उस प्रदेश में) धरती काँप उठी। बड़े पर्वत भग्न होकर गिर पड़े। राक्षस-कुल की स्त्रियों के नेत्र, भौंहें और कंधे उनकी डमरु-सदृश कटि के जैसे ही फड़क उठे। दिशाएँ काँप उठीं। चन्द्र से प्रकाशमान गगन में बिजली के न होने पर भी गर्जन के विविध नाद सुनाई पड़े। मंगलसूचक पूर्ण कलश टूट गये।

उस प्रासाद में प्रवेश करके हनुमान्, अपनी आँखों से (उन उत्पातों को) देखकर और अपने अनुपम शुभचिंतक मन के पिघल उठने से इस प्रकार सोच-विचार करने लगा—हाय! इस विशाल नगरी का ऐश्वर्य मिट जानेवाला है। (मनुष्य) किसी भी कुल में उत्पन्न हो, चाहे कोई भी हो, सबके लिए द्विविध कर्म (पुण्य पाप या संचित और प्रारब्ध) समान ही होते हैं। पूर्व कर्मों से अधिक बलवान् और क्या हो सकता है ?

शास्त्र-रूपी महासमुद्र के पारगंत, गंभीर श्रुतिवाले (उस हनुमान्) ने उस विशाल भवन में, जिसके चारों ओर के खुले प्रदेशों में दृढ चरण तथा तीक्ष्ण शूलधारी (सेना-रूपी) समुद्र निरन्तर प्रवाहित होता रहता था, निद्रा में मग्न उस रावण को देखा, जो ऐसा दृष्टिगत होता था, मानों विशाल क्षीरसागर पर, विविध रत्नों को बिखेरनेवाला, बहुत रंगों से भरित तथा विस्तृत वेलाओं से आवृत कोई महान् नीलसमुद्र विश्राम कर रहा हो।

बाल-सूर्य (उदय) गिरि पर आरूढ हो, ऐसा दृश्य उपस्थित करनेवाले, भारी रत्नों से जटित (रावण के) दीर्घ किरीट, अन्य आभरणों के साथ, अरुण प्रकाश बिखेर रहे थे, जिससे रात्रि नामक पदार्थ ही मिट गया था। वह निद्रा-मग्न (रावण) ऐसा लगता था, जैसे प्राचीन काल में हिरण्य को मारनेवाले पराक्रमी सिंह (अर्थात्, नरसिंह) अपनी अनेक भुजाओं और शिरों को फैलाये कन्दराओं से सुशोभित मेरु-पर्वत के मध्य सो रहा हो।

स्वर्ण-नगर की रहनेवाली (अर्थात्, स्वर्गवासी), श्रेष्ठ वलयों को धारण करनेवाली अप्सराएँ, सहस्रों की संख्या में, पंक्ति बाँधकर खड़ी थीं और स्वच्छ स्वर्ण की मूठवाले चामर डुला रही थीं। उनसे जो मंद पवन संचरित होता था, वह कल्प-पुष्प के मधु की बूँदें (उस रावण पर) बिखेरता था। उससे उसका दीर्घ शरीर उत्तप्त हो जाता था और उत्तम कंकणधारिणी सीता का स्मरण करके निःश्वास भरता हुआ वह व्याकुल-प्राण हो जाता था।

बालचन्द्र को अपनी शिखा पर धारण करनेवाले (शिव) के महान् पर्वत (हिमाचल को) जिन भुजाओं ने उखाड़ा था, उनको अनंग के कठोर बाण छेदते थे और उनके मध्य क्षण-भर छिपकर उस पार निकल जाते थे। दिग्गजों के साथ किये गये घोर समर में, उन गजों के दाँतों के लगने से जो घाव हो गये थे, उनमें अब (मन्मथ के बाणों से) कुछ हरे घाव उत्पन्न हो गये थे और उनसे मवाद बहने लगा था—(ऐसे रावण को हनुमान् ने देखा)।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके शरीर पर चन्दन आदि का लेप लगा हुआ था और उस लेप पर मंद-मंद शीतल पवन ऐसा बह रहा था, मानों उस रावण की उमड़ी हुई कामाग्नि को और बढ़ाने के लिए भाथियों से हवा निकल रही हो। उसकी मन आदि इन्द्रियाँ, रक्तकमल-समान मृदुल अंगुलियोंवाली जानकी के निकट चली गई थीं, जिससे उसका द्रवित हृदय उसी प्रकार शून्य हो गया था, जिस प्रकार साँपों के निकल जाने पर बाँबी सूनी पड़ जाती है।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके (दसों मुखों से) धवल खड्ग-दंत (निकलकर) ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानों पूर्वकाल में, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उत्साह के साथ सभी दिशाओं में बलपूर्वक जाकर घोर युद्ध करके देवताओं के जिस यश को अपने युद्ध-निपुण हाथों से भर-भरकर उसने पिया था, उस यश का प्रवाह ही उसके खुले मुँहों से उमड़कर बाहर निकल रहा हो।

उसके (विरह से) तप्त शरीर पर, जिसके स्पर्श-मात्र से रजत-समान धवल पुष्प-पर्यंक झुलस जाता था और उससे चिनगारियाँ निकलने लगती थीं, पसीने की बूँदें श्वेत रंग के बुलबुलों के समान उठ रही थीं। उसकी मधुभरी पुष्प-मालाओं पर जो भ्रमर बैठते थे, वे भी झुलसकर भस्म हो जाते थे। वह निःश्वास भरता था, तो उसके उज्ज्वल पुष्पहार जल जाते थे---ऐसे रावण को हनुमान् ने देखा।

उसका मन साक्षात् लक्ष्मी (स्वरूपिणी) सीता के पास चला गया था और वह पुष्पमय पर्यंक पर उसी प्रकार झूठी नींद सो रहा था, जिस प्रकार दिव्य चक्रायुधधारी विष्णु हो। वह नीलोत्पल के समान नयनोंवाली (सीता) के प्रति उत्पन्न अपने प्रेम-रूपी जल को डालकर, निःश्वास-रूपी लोढ़े से अपने प्राणों को पीस रहा था।

(सीता के विषय में) चिन्तन के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण, (सीता का) रूप उसके सम्मुख प्रकट होने लगा, तो उसे देखकर उसके मुख पर मंदहास खेलने लगा। काम-वासना के कारण उसका शरीर कंपित होने लगा और यह सोचकर कि मधुवर्षिणी बोलीवाली (सीता) किसी प्रकार मुझसे पहले ही इस कक्ष में आकर ठहर गई है, वह सम्पूर्ण शरीर से पुलकित हो उठा।

सूक्ष्म चित्रकला से चित्रित कलापवाले मयूर, कामना की अधिकता होने पर भी, अपने आवास-पर्वत को छोड़कर दूसरे पर्वत पर बड़ी कठिनाई से ही जा पाते हैं। उसी प्रकार कलापी-सदृश रमणियाँ उस रावण की, कार्य करने में चतुर, विजयशील एक भुजा का

आलिंगन करके, दूसरी भुजा पर कठिनाई से ही जा पाती थीं—ऐसी अनुपम भुजाओं की श्रेणी से युक्त रावण को हनुमान् ने देखा।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके वक्ष पर उज्ज्वल हार डोल रहा था। वह हार चारों ओर नील-समुद्र पर अपनी किरणों को बिखेरनेवाले और उदयगिरि पर उठनेवाले सूर्य के सदृश चमक रहा था। उसके उस वक्ष ने त्रिभुवन की रक्षा करनेवाले प्रमुख त्रिदेवों (शिव, विष्णु तथा इन्द्र) के आयुध परशु, चक्र तथा कुलिश की अमोघ शक्ति को भी विफल कर दिया था।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके वक्ष पर कभी दिग्गजों के दंत इस प्रकार आघात करते थे कि उसके हारों के पुष्पों पर लगे भ्रमर तथा दिग्गजों के मद-जल पर लगे भ्रमर—दोनों चक्कर काटते हुए उड़ जाते थे और चारों ओर मँड़राने लगते थे और उस (रावण) के वक्ष का चन्दन-लेप तथा बलिष्ठ दिग्गजों के मुख का सिंदूर-लेप स्थानांतरित हो जाते थे। उस रावण के तीक्ष्ण शूल के प्रताप से त्रस्त होकर जो शत्रु-राजा उसके चरणों पर नतमस्तक होते थे, उनके किरीटों की रगड़ से उसके चरणों में घट्टे पैदा-हो गये थे।

श्रीविष्णु के वामन-रूप से भी अधिक लघु आकार में स्थित वह (हनुमान्), बलिष्ठ दस सिर एवं बीस भुजाएँ देखकर समझ गया (कि यह रावण ही है)। यह समझते ही, उसके मन से पहले ही, उसके नेत्र कालाग्नि उगलने लगे ; जिसकी उग्रता से ऊपर और नीचे के सभी लोक फटने लगे।

इस (रावण) के भुजबल का ही क्या प्रयोजन है? चिरकाल से स्थिर रहनेवाला इसका यश ही किस काम का है? (अर्थात्, ये दोनों व्यर्थ हैं)। शूल-सम नयनोंवाली (सीता) को धोखा देनेवाले इसके रत्न-किरीटों को अपने पैरों से यदि मैं न गिराऊँ और इसके दसों सिरों को चूर-चूर करके यदि मैं अपना पौरुष न दिखाऊँ, तो मेरा रामदासत्व अपूर्ण ही रह जायगा।

सेवक की वृत्ति क्या केवल दिखावे से ही पूर्ण हो सकती है? (अर्थात्, सेवा करने का अभिनय करने-मात्र से सेवक का कार्य पूरा नहीं होता)। मनोहर ललाटवाली (सीता) को धोखे से लानेवाला यह कठोर राक्षस मेरे पहचानने के पश्चात् भी क्या जीवित रह सकता है? मैं उसकी सारी दीर्घ भुजाओं को तोड़ दूँगा, दसों सिरों को पदाघात से गिरा दूँगा। यों इसे मारकर इस नगरी का भी विध्वंस करूँगा। उसके पश्चात् चाहे जो भी घटित हो।

इस भाँति विचार करके वह हनुमान् उत्साह से भर गया। वह दाँतों को पीसता हुआ, हाथों को मलता हुआ उठा और कुछ क्षण मौन खड़ा रहा। फिर, ध्यान से सोचता हुआ मन-ही-मन कह उठा कि (रावण का) वध करने के लिए राम की आज्ञा नहीं मिली है और एक कार्य करने जाकर दूसरा कार्य करना बुद्धिमानी है। और भी विचार करने पर यह कार्य (रावण का वध) अत्यन्त त्रुटिपूर्ण हो सकता है। यों (विचारकर) वह रावण का वध न करके वहाँ से पीछे हट गया।

जान-बूझकर विष का पान करनेवाले (शिवजी) के समान शक्तिशाली होने पर भी, अपने शील की रक्षा करनेवाले महान् लोग, क्या बिना सोचे-समझे कोई काम करते हैं ? (अर्थात्, नहीं)। हनुमान्, उस समय, उस समुद्र के समान ही रहा, जो तीनों लोकों को डुबोने की अपनी शक्ति को पहचानता हुआ भी, (कल्पांत के) समय की प्रतीक्षा करता हुआ, अपने किनारे को थोड़ा भी नहीं लाँघता हुआ पड़ा रहता है।

अब युद्ध करने के लिए जो क्रोध मेरे मन में उमड़ा है, वह मेरे मन में ही दब जाये (किसी दूसरे पर वह प्रकट न हो)। पुष्पालंकृत कुंतलोंवाली देवी को बंदिनी बनानेवाले कंटक को एक वानर ने युद्ध करके मार दिया। यदि ऐसी बात प्रचलित हो जाय, तो (दुष्टों के विनाश के लिए) सन्नद्ध वीर (राम) के, युद्ध में विजय प्रदान करनेवाले धनुष की सारी कुशलता के लिए कलंक उत्पन्न होगा—यह विचार कर हनुमान् ने अपने को दबा लिया।

इस प्रकार, अपनी प्रकृतिस्थ दशा को प्राप्त हुआ (हनुमान् फिर अपने मन में) कहने लगा—श्रेष्ठ कंकण और अन्य आभरणों से भूषित कोई रमणी (रावण) के साथ नहीं सो रही है और यह अति जघन्य काम-ताप से पीडित हो रहा है। इसकी ऐसी दशा ही यह शुभ सूचना दे रही है कि (सीता) देवी अभी अच्छी दशा में हैं।

यह सोचकर कि अब यहाँ रहने से कोई प्रयोजन नहीं है, पर्वतसम कंधोंवाले उस (रावण) के सौध को पीछे छोड़ता हुआ हनुमान् आगे बढ़ गया और खड़ा होकर दुःख के साथ सोचने लगा—हाय! क्या इस विशाल नगर में रत्नजटित स्वर्णाभरण धारण करनेवाली (सीता) देवी नहीं हैं ?

पातिव्रत्य से च्युत न होनेवाली, कुलीन देवी की इसने कहीं हत्या तो नहीं कर दी है ? या कदाचित् अपने कठोर कृत्य के अनुसार उन्हें खा ही तो नहीं डाला है ? नहीं तो क्या (लंका से) अन्यत्र कहीं बंदिनी बनाकर रखा है ? मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ। किसी भी उपाय से सफल न होनेवाला मैं अब लौटकर (राम से) क्या कहूँगा ? यदि मैं जीवित रहूँगा, तो मुझे (असफलता का) कठोर दुःख भी कभी नहीं छोड़ेगा।

काकुत्स्थ यह सोचते हुए प्रतीक्षा करते होंगे कि मैं (सीता देवी को) देखकर आऊँगा। कपिकुल के प्रभु (सुग्रीव) यह सोचते होंगे कि मैं (सीता को) अपने साथ ही ले आऊँगा। किंतु, मेरा कार्य तो इस प्रकार (विफल) हो गया है। अब मैं क्या पुंडरीकाक्ष (राम) के पास जा सकता हूँ ? मेरे प्यारे वानर-वीर (अंगद, आदि) जब प्राण त्यागने के लिए उद्यत हुए थे, तब उनके साथ मैं मरने को तैयार नहीं हुआ। किंतु, अब क्या विफलप्रयत्न होकर मुझे मरना ही होगा ?

(सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव के द्वारा) निश्चित अवधि बीत गई है। मैंने घने केशपाशवाली (देवी) को देखा तक नहीं। (प्राण त्याग कर) स्वर्ग को जायँगे—यों कहनेवाले वानर-वीरों को वहाँ छोड़कर आया हुआ मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका हूँ। क्या मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर सकने पर भी जीवित रह सकता हूँ ? हाय! पुण्य नामक वस्तु ही मेरे पास से दूर चली गई है।

सात सौ योजन दीर्घ प्राकार से आवृत इस लंकापुरी में निवास करनेवाले श्रेष्ठ प्राणियों में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे मैंने देखा नहीं है। एकमात्र सर्वलोक के प्रभु (राम) की महामहिम देवी को ही मैं नहीं देख सका। एक समुद्र को तो मैं लाँघ सका हूँ। पर, क्या अब दुःख-समुद्र (को पार न कर सकने से) उसके मध्य डूबकर मुझे मर जाना ही पड़ेगा ?

क्या इस निष्ठुर राक्षस (रावण) को मैं पहाड़ को भी तोड़ देनेवाले अपने हाथों से इस प्रकार दबाऊँ कि उसके मुँहों से खून बह निकले और उससे यह पूछूँ कि (सीता देवी को) दिखाओ। (सीता देवी को) देखूँ, या सूर्य के प्रकाश को मंदकर देनेवाले शूल को धारण करनेवाले इस रावण को तथा इस नगरी को उग्र अग्नि-ज्वाला से जलाकर लाख के समान पिघला दूँ ?

यदि मैं देव आदि सहृदयहृदयों से (सीता के रहने के स्थान के संबंध में) पूछूँ, तो भी वे निष्ठुर राक्षस के कारण, कुछ कहने का साहस नहीं रखने से, नहीं बतायेंगे। अन्य व्यक्ति भी कैसे कहेंगे ? यह मैं, जो कृशगात्र होकर उड़ न जानेवाले अपने प्राणों को ढोने की अज्ञानता कर रहा हूँ, कैसे जान सकता हूँ (कि सीता देवी कहाँ रहती हैं) ?

गृद्धों के सरदार (संपाति) ने कहा था कि मैं लंकापुरी में उस देवी को देख रहा हूँ। उसका कथन भी असत्य ही सिद्ध हुआ। (सीता को) अपने भीतर छिपा रखनेवाली इस बड़ी नगरी को समुद्र में डुबो न देकर अपने शरीर को लिए कबतक दुःख भोगता रहूँ ?

'धरती और आकाश के जानते हुए, यह कठोर राक्षस, उत्तम पुष्पों से भूषित कुंतलोंवाली (देवी) को उठा ले गया'—यह प्रसिद्ध प्रवाद झूठा नहीं हो सकता। अतः, समुद्र से घिरी लंका को उखाड़कर इस बड़े सागर में ही मिला दूँगा और इस (रावण) को भी समाप्त कर दूँगा। उसके पश्चात् ही मेरा मरना निश्चित रूप से उचित हो सकेगा—इस प्रकार हनुमान् मन में सोचता रहा।

वह हनुमान्, जो तिल-भर स्थान को भी (खाली) न छोड़कर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा उसके मन में भी स्थित रहनेवाले सुन्दर (विष्णु) के समान ही (उस लंका में) सर्वत्र व्याप्त हो रहा था, (सीता को) खोजता रहा। उपर्युक्त विकलता के साथ सोचता हुआ वह भ्रमरों से युक्त उद्यान में खोजने की इच्छा से उसके निकट जा पहुँचा और (उसने वहाँ) मधुपूर्ण पुष्पों से युक्त एक फुलवारी को देखा। (१–२३४)

अध्याय ३

सीता-दर्शन पटल

(हनुमान् ने मन में सोचा—) समीपस्थ उस अति सुन्दर फुलवारी में पहुँचकर वहाँ भी खोज लूँगा, तो मेरी हीनता दूर हो जायगी। उस उद्यान में भी यदि (देवी को) नहीं देखूँगा, तो फिर मेरा कर्त्तव्य और कुछ नहीं रह जायगा। (केवल यही कार्य बाकी रहेगा कि) लंका को उखाड़कर इस त्रिकूट पर्वत पर पटककर ध्वस्त कर दूँ और अपने प्राण त्याग दूँ।

यह विचार करके राघव दूत (हनुमान्) उस (अशोक) वन के भीतर जा पहुँचा। तब देवता एकत्र होकर उसपर पुष्प-वर्षा करके आनंदित हुए।

अब हम यह वर्णन करने का साहस करेंगे कि उस उद्यान में आयुधधारी राक्षस (रावण) के द्वारा बंदिनी बनाकर रखी गई, घने अंधकार-सदृश केशपाश से युक्त देवी (सीता) की क्या दशा थी।

प्रस्तर के मध्य उत्पन्न होकर कभी एक बूँद पानी भी न पाने कारण कुम्हलाई हुई संजीवनी लता के सदृश कांतिहीन, वह देवी, शरीर के अन्य अंगों से भी अपनी कृश कटि के समान ही कृश हो गई थी। (उस सीता को) भीम कटिवाली, करवालधारिणी, राक्षसियाँ उस स्थान पर रहकर धमकियाँ दे रही थीं।

मयूर-सम रूप तथा कोकिल-सम बोली से युक्त उस देवी ने आँखें खोलना और मींचना तथा निद्रा करना भी छोड़ दिया था। उनका शरीर धूप में रखे दीप के समान प्रकाशहीन हो गया था। वह, तीक्ष्ण दंतों से युक्त भयंकर व्याघ्र-समूह के मध्य फँसी हुई बाल-हरिणी जैसी थी।

श्रीरामचन्द्र का ध्यान करके धरती पर (मूर्च्छित हो) गिरना, खुलकर रोना, शरीर का अत्यन्त उत्तप्त होना, भयग्रस्त होना, उठना, अकुलाना, दीन होना, (राम के प्रति) नमस्कार करना, शिथिल होना, कंपित होना, दुःख से पीडित होकर निःश्वास भरना, अश्रु बहाना—इन व्यापारों को छोड़कर वे अन्य कोई कार्य ही नहीं जानती थीं।

धागे से भी अधिक सूक्ष्म कटिवाली वह देवी यह सूचित करती थीं कि उनके परस्पर अनुरूप नयनों को मेघ की संज्ञा देना सकारण ही है। क्योंकि उन नयनों से निरन्तर बहनेवाली अश्रुजल की धारा, नालों में बहते हुए जल-प्रवाह के समान निरन्तर झरती रहती थी और उमड़कर सुनहले चिह्नों से युक्त उनके स्तनों पर बह चलती थीं।

विरह की व्याधि से पीडित वह (देवी) ऐसी लगती थीं, मानों संसार में तुल्य अनुराग-युक्त पति-पत्नी के परस्पर वियोग का दुःख ही साकार होकर आ गया हो। अपूर्व मेघ, अंजन आदि अत्यन्त काले रंग की वस्तुओं को देखने-मात्र से (रामचन्द्र के शरीर की कांति का स्मरण होने से) इस प्रकार रो पड़ती थीं कि अश्रुजल की धारा समुद्र में जा गिरती थी।

प्रवाल-निर्मित करों एवं चरणों से युक्त वह देवी, वर्षाकालिक मेघ की समता करनेवाले (श्रीराम) का ज्यों-ज्यों ध्यान करतीं, त्यों-त्यों उनके विशाल नयनों से अश्रुधारा बह चलती और उनके झीने वस्त्र भींग जाते, किन्तु तुरन्त ही (वे वस्त्र) अत्यन्त वेदना-पूर्ण निःश्वास की उष्णता से सूख भी जाते। वे वस्त्र एक ही बार नहीं, बार-बार इस प्रकार की दशा को प्राप्त करते थे।

यह सोचकर कि यदि मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँ, तो भी विधि के प्रभाव से मुक्त होना दुष्कर ही है, वे ऐसा कार्य करने से सहम जातीं। फिर, यह निश्चय करके कि श्रुतियों के प्रभु (राम) सूर्यवंश (की महत्ता) को, एवं अब उस कुल के लिए उत्पन्न हीनता का विचार कर ही सही, अवश्य आयेंगे उन (देवी) के नेत्र सब दिशाओं को निहारने लगते।

उस क्षमामयी (सीता देवी) के केशभार, सघन जटा बनकर उनके सुन्दर वदन के पार्श्वों में कपोलों को दृढता से पकड़े हुए थे और इस प्रकार दृष्टिगत होते थे, मानों कोई तीक्ष्ण दंतोंवाला सर्प धरती पर स्थित एक निष्कलंक चंद्रमा को पूर्णरूप से निगलकर फिर उसे उगल रहा हो।

पूर्व धारण किये हुए, धुएँ के समान झीने, एक वस्त्र को छोड़कर दूसरे वस्त्र को उन्होंने जाना भी नहीं (अर्थात्, उस वस्त्र के अतिरिक्त अन्य नये वस्त्रों को धारण नहीं किया)। उनकी देह पंख-शोभित हंसों के निवासभूत स्वच्छ जल में कभी निमग्न नहीं हुई। उनका रूप ऐसा था, मानों स्वच्छ (क्षीर) सागर से उत्पन्न दिव्य अमृत को लेकर मन्मथ ने कोई सुन्दर चित्र निर्मित किया हो और अब वह धुएँ के लगने से कांतिहीन हो गया हो।

कदाचित् लक्ष्मण ने (माया-हरिण के पीछे-पीछे जाते रामचन्द्र को) देखा नहीं। (यदि देखा भी हो, तो) कदाचित् यह समाचार उन (लक्ष्मण और राम) को विदित नहीं हुआ कि लोक-कंटक (रावण) मुझे हरकर ले गया है। (यदि जाना भी हो, तो) कदाचित् यह जाना नहीं कि शब्दायमान समुद्र के मध्य लंका नामक नगर स्थित है। इस प्रकार के विचार करती हुई दुःखित होकर वे यों पीडित हो रही थीं, जैसे घाव के छिद्र में अग्निकण रख दिया गया हो।

कदाचित् वह गृद्धराज (जटायु) मर गया। उन (जटायु) को छोड़, (रावण के द्वारा मेरे हरे जाने का) समाचार (राम को) बतानेवाला और कौन है? अब इस जन्म में (राम का) दर्शन दुर्लभ ही है। यों विविध प्रकार विचार करती हुई वह रो पड़ती, व्याकुल होती और बार-बार यों पीडित होती, जैसे (घाव में) आग लग गई हो।

मुझ पापिन ने अपने देवर का थोड़ा भी आदर किये बिना, जो कठोर वचन कहे थे, उन्हें सुनकर प्रभु (राम) ने बुद्धिहीन समझकर कदाचित् मुझे त्याग दिया है। या पिछले जन्म में मेरे पाप का ही यह परिणाम हुआ है?—यों विविध प्रकार से एक के पश्चात् एक वचन कहते रहने से उनकी जिह्वा प्यास से सूख गई। प्रज्ञा शिथिल पड़ गई और प्राण तड़प उठे।

(कभी) यह सोचकर कि खाने योग्य कोमल फल-मूल आदि पदार्थों को किसके परोसने पर (रामचन्द्र) खायेंगे, वे रो पड़तीं। (कभी) यह सोचकर कि अतिथियों के आगमन पर (सत्कार करनेवाली गृहिणी के न रहने से) न जाने, वे कितना दुःख करते होंगे, सिसकने लगतीं। उनके बैठने के स्थान पर दीमक आदि के उपद्रव होने पर भी वे वहाँ से उठती नहीं थीं और यह सोचती हुई कि क्या मेरी व्याधि का औषध भी कुछ है, मूर्च्छित हो जाती थीं।

वे देवी, दिन और रात्रि का भेद भूलकर, सर्वदा इसी चिन्ता में पड़ी रहती थीं कि कदाचित् राम ने यह सोचकर कि निष्ठुर और वंचक राक्षसों ने इतने दिनों तक (सीता को) जीवित नहीं छोड़ा होगा, अब करना क्या है (अर्थात्, अब ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है), कदाचित् मुझे खोजना ही छोड़ दिया है, या इस विचार से कि अपने कुल के सहज गुण क्षमा को स्वयं भी अपनाना चाहिए, कोप को शांतकर रह गये हैं।—मैं क्या समझूँ ?

कदाचित् (कौसल्या आदि) माताएँ और भाई (भरत) दुबारा आकर (राम को) विजयी महानगरी (अयोध्या) को वापस ले गये हैं। (नहीं, ऐसा नहीं हुआ होगा)। चौदह वर्ष की निश्चित अवधि तक (वन में) निवास किये विना (राम) नगर को वापस नहीं लौटेंगे, अतः अभी वे वन में ही रहते होंगे। इस प्रकार विचार करती हुई, दुःख से संतप्त होकर, पूर्व में कभी किसी के द्वारा अननुभूत पीडा को प्राप्त होतीं।

मुर नामक असुर के समान भुजबल-विशिष्ट, पहले (जनस्थान में) युद्ध करने के लिए आये हुए राक्षसों के ही सदृश, असीम वरों, माया और वंचना से युक्त अन्य राक्षसों ने कदाचित् एक भयंकर युद्ध छेड़ दिया होगा—यह सोचकर सीता दुःखित होतीं और यों विकल होतीं, जैसे आँखों के सामने ही खर को (राम का) सामना करते हुए देख रही हों।

जब कैकेयी ने यह कहा था कि 'शत्रु-रहित यह विशाल राज्य तुम्हारे भाई का है' (तुम्हारा नहीं है), तब सिंह-सदृश श्रीराम का मुख तिगुनी कांति से शोभायमान हो गया था। उस रूप का स्मरण करके (सीता देवी) व्याकुल हो उठतीं।

यह कहने पर कि 'सत्य ही तुम समस्त विश्व का राज्य प्राप्त करो' या यह कहने पर कि 'इस राज्य की संपत्ति को छोड़कर तुम चले जाओ'—दोनों अवस्थाओं में (राम का) जो वदन चित्रलिखित, प्रफुल्ल रक्तकमल के समान (शान्त) रहा था, (सीता देवी) सदा उसी (वदन) का स्मरण करती रहतीं।

जब लोग संशय-ग्रस्त हो खड़े थे (कि राम शिव-धनुष को चढ़ा सकेंगे या नहीं), तब गंगा के विश्रामभूत जटा एवं अग्निमय नेत्रों से युक्त (शिव) के चढ़ाये हुए, मेरु के अंशभूत, सुन्दर धनुष को जिस भुजा ने दो टुकड़े कर दिये थे, उस भुजा का स्मरण कर (सीता) व्याकुल होतीं।

(कभी वे) देवेन्द्र के लिए अनेक उपद्रव उत्पन्न करनेवाले, बल-पौरुष से युक्त

(खरदूषण आदि) चतुर्दश सहस्र संख्यावाली सेना को तीन ही घड़ियों में विनष्ट करते हुए, दोनों सिरों में झुक जानेवाले धनुष का गुण-गान करती हुई व्याकुल होतीं।

(कभी) गंभीर जल-युक्त गंगा नदी में नाव चलानेवाले गरीब केवट के प्रति (राम के) कहे हुए शब्दों को कि 'मेरा भाई तुम्हारा भी भाई है। तुम (मेरे) मित्र हो। मेरी स्त्री तुम्हारी भाभी है'—कहनेवाले (राम) के मित्र-धर्म का स्मरण कर मुग्ध होतीं।

सच्चरित्र जनक ने जब प्रेम से (सीता के) कर को (राम के) कर में थमाया था (पाणिग्रहण कराया था), तब (राम ने) अपने हाथ में सीता के हाथ को लेते हुए जनक के हाथ को छुड़ाया था, और अन्य वैवाहिक विधानों को करते हुए कुश-सदृश (पवित्र) सीता के पद को पत्थर (शिला) पर उठाकर रखा था। इस प्रकार, विवाह-वेदी पर घटित उन सब बातों का (कभी) स्मरण करता।

अपने भाई (भरत) को, मधुपूर्ण पुष्पों के योग्य अपने सिर पर उत्तम स्वर्ण-मुकुट को न पहनकर लाल जटा धारण किये हुए देखकर, रामचन्द्र अपने मन में पिघल उठे थे और दुःखी हुए थे। उस बात का स्मरण करके (सीता देवी) व्याकुल होतीं।

अपने योग्य राज्य-संपत्ति को खोकर जब वनवास के लिए चल पड़े थे, तब (राम ने) एक लालची ब्राह्मण[1] को गो-समूह दान किया और फिर भी उस ब्राह्मण की इच्छा का अन्त न देखकर प्रभु (राम) मुस्करा उठे थे। (सीता) उनका वह हँसना स्मरण कर अब रो पड़ीं।

जिस (परशुराम) ने अपने परशु आयुध से इक्कीस बार क्षत्रिय-कुल (के राजाओं) का वध करके मांसगंध से युक्त रक्त में स्नान किया (पितृ-तर्पण किया) था, उसके तपोबलपूर्ण धनुष को चढ़ा देनेवाले (राम) के प्रभाव का स्मरण करके पीडित हो उठतीं।

इन्द्र के पुत्र (काक-रूप में आकर सीता को पीडा देनेवाले जयंत) पर एक अनुपम अस्त्र का प्रयोग करके जबसे उस काक के एक नयन को (राम ने) नष्ट कर दिया,[2] तबसे सब काकों को एक नयन बनानेवाले (राम) की विजय को (सीता देवी) अपने सिर पर धारण करतीं (अर्थात्, राम की विजय की प्रशंसा करतीं)।

भयंकर विराध के अधिकाधिक बढ़ते हुए अपराधों को रोककर, उसके अनिवार्य शाप को भी मिटानेवाले (राम) के स्वभाव का स्मरण करके सीता देवी अपने प्राणों में अत्यन्त विकल होतीं और प्रज्ञा-हीन होकर अत्यन्त कृशगात्र हो जातीं।

मधुर भाषण में निपुण तथा सीता के प्रति सहानुभूति रखनेवाली राक्षसी त्रिजटा के अतिरिक्त, रखवाली करनेवाली अन्य सभी असीम बलवती राक्षसियाँ, अर्धनिशा के होते ही, निद्रारूपी मधु का पान करके मस्त हो पड़ रहीं।

---

१. यह 'त्रिजट' नामक ब्राह्मण का वृत्तांत है, जिसका वर्णन अयोध्याकांड में वन-प्रस्थान के प्रसंग में आया है।—अनु०

२. यह ध्वनित है कि राम ने, सीता को पीडा देने के अपराध में समस्त काक-कुल को ही एकाक्ष बना दिया था। अब अपनी पत्नी का हरण करनेवाले रावण का विनाश करने को क्यों उद्यत नहीं हैं?—अनु०

उस समय माता से भी अधिक हितकारिणी तथा स्नेहपूर्ण त्रिजटा को देखकर, सीता देवी यह कहकर कि 'तुम पवित्र स्वभाववाली हो, मेरी सखी हो, अतः, सुनो' सुन्दर वचन कहने लगीं—

हे मनोहर डमरु-सदृश कटिवाली! भलाई ही (मेरे पास आने के लिए) तड़प रही है अथवा मेरे पूर्वकृत पाप की कठोरता ही अभी बढ़कर मुझे दुःख देने को तड़प रही है। न जाने क्या कारण है कि मेरे दक्षिण भाग की भौं, नयन आदि अंग नहीं फड़क रहे हैं (अर्थात्, बाम भाग के मेरे ये अवयव ही स्पंदित हो रहे हैं। मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूँ कि अब मुझे क्या प्राप्त होने वाला है) ?

जब प्रभु (राम) मुनिवर (विश्वामित्र) के साथ मिथिला आये थे, तब मेरे स्वच्छ भ्रू, कंधा और नयन आनन्दप्रद हो स्पंदित हुए थे। आज भी अब उसी ढंग से (ये अवयव) फड़क रहे हैं। तुम विचारकर कहो (कि इसका क्या फल होनेवाला है)।

(पहले ही) कहना भूल गई। उसे भी सुन लो—धर्म-चिन्तनशील मेरे प्राण-नायक, राम (राज्य) उनके अनुज (भरत) को प्राप्त हो, इस विचार से जब सारी धरती का त्याग कर, वन को चलने लगे, तब मेरे दक्षिण अंग फड़क उठे थे।

जिस दिन विष-सदृश (रावण) दंडकारण्य में छल करके आया था, उस दिन भी मेरे दक्षिण अंग फड़क उठे थे। यदि ये अवयव सत्य से हीन नहीं हैं (अर्थात्, परिणाम की सच्ची सूचना देनेवाले ही हैं), तो न जाने वाम अंगों के फड़कने से अब कौन-सा कृपापूर्ण कार्य मुझे भय से मुक्त करने के हेतु घटित होनेवाला है ?

(सीता के इस प्रकार कहते ही) त्रिजटा यह सोचकर कि 'ठीक ! ठीक ! यह मंगलप्राप्ति की सूचना है', प्रेमपूर्ण हो (सीता से) कहने लगी—'तुम अपने पति से मिलेगी, यह निश्चय है। और भी सुनो।' वह आगे बोली—

हे विद्युत्-समान कटिवाली! एक सुनहली तितली, तुम्हारी शरीर-कांति को पीला करती हुई और तुम्हारे प्राणों को संजीवित करती हुई, मंद मधुर गति से निकट आई और कान में सुवर्ण-मधु के समान मधुर गान करके अभी उड़ गई।

इसके संबंध में विचार करने पर विदित होता है कि तुम्हारे प्राणनाथ के द्वारा प्रेषित दूत का आना निश्चित है और पापकर्मियों का विनाश भी निश्चित है। मेरे साथ जो घटित हुआ, उसे भी सुनो—यों कहकर त्रिजटा आगे बोली—

'हे शूलसम नयनोंवाली, (तुम्हें) निद्रा न आने से स्वप्न नहीं होते, (किन्तु) मैंने एक स्वप्न देखा है। अपराधों से पूर्ण इस नगर में भी जो (स्वप्न आदि) घटनाएँ दिखाई पड़ती हैं, वे व्यर्थ नहीं होतीं।—यों कहकर सूर्य से भी (अधिक) सत्य होने-वाले (अर्थात्, सूर्य का उदय और अस्त जैसे नित्य सत्य हैं, वैसे ही सत्य बने हुए) वचन कहने लगी—

हे निष्कलंक पातिव्रत्य से शोभित होनेवाली ! (मैंने स्वप्न में देखा) महिमा से पूर्ण वह रावण लाल रंग का वस्त्र पहने हुए अपने दसों सुन्दर सिरों में तेल लगाये,
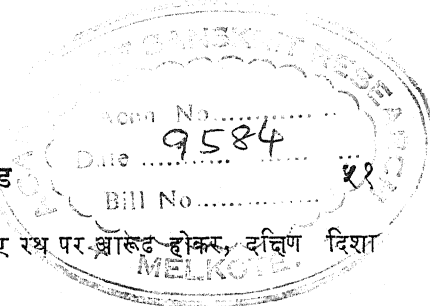
असंख्य बड़े-बड़े बलवान् गर्दभों और प्रेतों से जुते हुए रथ पर आरूढ़ होकर, दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है।

उसके पुत्र, बंधुजन और अन्य राक्षस भी उसी दिशा में जा रहे हैं। किसी को लौटते हुए (मैंने) नहीं देखा। मैंने देखने में कोई त्रुटि नहीं की। दूसरे भयंकर उत्पातों को भी सुनो—यों कहकर वह आगे बोली :

पराक्रमी रावण के द्वारा आहुत होमाग्नियाँ एक साथ बुझ गईं। पुंजीभूत रक्तज्वाला से युक्त और स्वयं प्रकाशमान रत्नदीपों से प्रकाशित (रावण का) पुरातन सौध प्रभातकाल में, नभ से वज्र के गिरने से हिल उठा है।

हथिनियाँ मद-जल बहा उठीं। बहुत-से भेरीवाद्य विना बजाये ही वज्र के समान गरज उठे। निष्कलंक आकाश, बिजली से युक्त बादलों के विना ही, इस प्रकार गरजा कि सारा ब्रह्माण्ड टूट-सा गया और नक्षत्र झर पड़े।

प्रकाशमान दिन के न होने पर भी, रात्रि के अंधकार को दूर करता हुआ सूर्य अपने अर्धभाग में जलता हुआ दृष्टिगत हुआ। बलिष्ठ कंधोंवाले वीरों के द्वारा धारण की हुई कल्प-पुष्प की मालाएँ मांसगंध-सी महँकने लगी (दुर्गन्ध करने लगीं)।

यह लंकापुरी तथा उसके प्राचीर घूमने लगे। सब दिशाएँ जल उठीं। सर्वत्र गंधर्व दिखाई पड़े। मंगलकलश अपना मुँह खोले टूट-फूट गये और अंधकार दीप को आवृत कर निगलने लगा।

तोरण टूटकर गिर पड़े। मुखपट्ट से शोभित महान् गजों के बलिष्ठ और प्रकाश-पूर्ण दंत टूट गये और वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा अभिमंत्रित कर रखे गये पूर्ण-कुंभों के पवित्र जल मद्य बनकर उफन उठे।

आकाशगामी चंद्र को भेदकर नक्षत्र निकल पड़े। उमड़नेवाले बादल, क्षतों से प्रवहमाण रक्त की वर्षा कर उठे। गदा, चक्र, करवाल, धनुष आदि आयुध, समुद्र को भी अपने घोष से परास्त करते हुए, स्वयं ही घोर संघर्ष करने लगे।

स्त्रियों की ताली[1] (नामक मंगलसूत्र) किसी के हाथों से तोड़े न जाकर भी टूटकर (उनके) स्तनों पर गिर पड़े। इसी प्रकार के और भी आश्चर्यजनक उत्पात सुनो :

लंकाधिपति की देवी मयपुत्री के केश स्वयं ही बंधन (-मुक्त) हो गिर पड़े और दीप की ज्वाला की लपेट में पड़कर झट जल गये। (राक्षसों की) विपद् उत्पन्न होने का यह भी संकेत है।

इस प्रकार वह (त्रिजटा) फिर आगे कहने लगी—हे देवी! सुनो। आज और अभी इसी स्थान में एक स्वप्न दिखाई पड़ा। परस्पर समान बलवाले दो सिंह एक अनुपम पर्वत से (अपने साथ) मनोहर व्याघ्र-दल को साथ लेकर आये और—

---

१. दक्षिण भारत में यह प्रथा है कि विवाह के समय वर अपनी वधू के गले में ताली (मंगलसूत्र) बाँधता है। वही सौभाग्य का चिह्न होता है, जिसे सधवा स्त्रियाँ सदा अपने गले में धारण किये रहती हैं। उसका टूट जाना अमांगल्य का चिह्न समझा जाता है।—अनु०

(उन्होंने) असंख्य मत्तगजों से पूर्ण एक अरण्य को चारों ओर से घेर लिया और (उन गजों के साथ) युद्ध करके अगणित शवों को गिरा दिया। उस बन में आया हुआ एक मयूर (उन सिंहों के) आवास की ओर चला गया।

हे मृदुभाषिणी, अरुण वर्णवाली एक स्त्री सहस्र दीपशिखाओं से युक्त एक महान् रक्तवर्ण दीप को लेकर नायक (रावण) के प्रासाद से निकलकर विभीषण के सौध में चली गई।

जब वह स्त्री (विभीषण के) स्वर्ण-प्रासाद में पहुँची, तब तुमने मुझे जगा दिया। अतः, (वह स्वप्न) पूरा नहीं हुआ।[1]—त्रिजटा ने इस प्रकार कहा, तो उत्तम आभरणधारिणी देवी ने यह कहकर कि 'हे माता, उस शेष स्वप्न को भी देखो।' त्रिजटा से फिर सो जाने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी।

उसी समय, महाभाग (श्रीराम) के द्वारा भेजा गया महान् वृषभ-समान, युद्ध में निपुण वीर, दूत (हनुमान्), सावधानी से (सीता का) अन्वेषण करता हुआ, उस स्थान पर आ पहुँचा और क्षीण कटिवाली (सीता) देवी के रहने के स्थान को देखा।

उस समय राक्षसियाँ निद्रा से जग पड़ीं और यह कहती हुई कि अहा! यह बुरी निद्रा भी कैसे हमारी नींद को बिगाड़ने के लिए आई है, कर्कश शूल, परशु, वक्रदंड, बरछा आदि को अपने घोर हाथों में लिये हुई चारों ओर से दौड़ पड़ीं।

उनमें से कुछ के पेट में ही मुँह थे। कुछ के टेढ़े माथों पर आँखें थीं। उनकी दृष्टि अत्यंत भयंकर थी। उन राक्षसियों के दाँतों के मध्य हाथी, शरभ (एक मृग), भूत आदि सोये पड़े थे और उनके मुँह भयावनी पर्वत-गुहा के सदृश गहरे थे।

(उनमें से कुछ) दो हाथोंवाली थीं, तो कुछ दस हाथोंवाली। कुछ एक सिर-वाली थीं तो कुछ बीस सिरोंवाली। सब भयोत्पादक रूपवाली थीं और विकट वेषों से युक्त थीं। उनके पर्वत-जैसे पीन स्तन भी नीचे लटक रहे थे।

(वे) त्रिशूल, खड्ग, चक्र, अंकुश, तोमर, यमतुल्य भाले, कप्पण (छोटे बरछे) आदि का प्रयोग करने के अभ्यस्त हाथोंवाली थीं। उनका रूप ऐसा (काला) था, मानों विष ही उनके आकार में आ गया हो। वे इतनी बलिष्ठ थीं कि श्वेत गंगाजलधारी रुद्र भी (उन्हें देखकर) भयभीत हो जाते थे।

(वे) हाथी, घोड़े, बाघ, भालू, शरभ, भूत, सिंह, शृगाल, श्वान—इनके जैसे मुखों से युक्त थीं। कुछ की पीठ पर मुँह थे और कुछ तीन नयनोंवाली थीं। उनके मुँह से धुँआ निकलता था और उनके काम भयंकर होते थे।

(वे) अवर्णनीय बल से युक्त थीं। अपने नेत्रों से भयंकर आकारवाली थीं (नेत्र बहुत छोटे थे)। स्त्री नाम से संचरमाण पौरुष से युक्त थीं। इस प्रकार की वे (राक्षसियाँ) झट नींद से जगकर सीता को घेरती हुई दौड़ आईं।

उस समय, सुन्दर (राम) की देवी, अवाक् रहकर, अग्नि-सदृश उन राक्षसियों

---

१. ऊपर के १४ पदों में त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन है।—अनु०

के मुख की ओर देखती हुई (भय से) मलिन हो गई। नायक का दूत (हनुमान्) भी शीघ्र वहाँ पहुँचकर, अनन्त रूप से बढ़े हुए एक वृक्ष की शाखा पर आ बैठा।

वह (हनुमान्) यह सोचने लगा कि अनेक राक्षसियाँ, यहाँ भाला आदि आयुध हाथों में रखे, घनी भीड़ लगाये, जागती बैठी हैं। इसका क्या कारण है ? उसने उस स्थान की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई।

काले रंगवाली राक्षसियों के झुंड में, फैले हुए वर्षाकालिक बादलों को चीरकर चमकनेवाली बिजली के समान स्थित, शरीर-कांति से अपूर्व, सजल मेघ-सदृश, अविनश्वर भगवान् (विष्णु) के विशाल वक्ष पर रहनेवाली—मेरे (लेखक के) लिए परमपूज्य सुन्दरी (लक्ष्मी के अवतारभूत सीता) को उस हनुमान् ने देखा।

स्पर्श करने में भी घृणित राक्षसियों की रखवाली में रहनेवाली कोमल पुष्पलता तुल्य यह देवी, समुद्र-सम विशाल नयनों के जलप्रवाह के मध्य-स्थित हंसिनी के सदृश रहती हैं, अतः, यह सीता देवी ही हैं।

अभी धर्म विनष्ट नहीं हुआ है। मैं भी नहीं मरूँगा। (क्योंकि) देवी की खोज में आये हुए मैंने (उन्हें) देख लिया है। यह वही देवी हैं—यह सोचकर आनंद-मधु का पान करके वह (हनुमान्) नाच उठा, गाने लगा और इधर-उधर उछल-उछलकर दौड़ने लगा।

(इन देवी के) अनिंद्य रूप के सब सुलक्षण वरद (राम) के कथित वचनों से भिन्न नहीं हैं। आह ! वंचक, करवाल-सदृश भयंकर रावण ने, मनोहर कमल-सम नयनवाले (राम) की शरीर के अंतर्गत प्राण-सदृश (रहनेवाली) देवी को किस प्रकार छिपाकर रखा है ?

तीनों लोकों को सन्मार्ग से हटानेवाले पापी रावण ने अपने प्राणों के विनाश के लिए ही ऐसा कर्म किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है। वह (रामचन्द्र) आदिशेष के शयन से हटे हुए (विष्णु) देव ही हैं और यह देवी, कमल पर आसीन रहनेवाली (लक्ष्मी) ही हैं।

धूलि-धूसर रत्न-सदृश यह देवी, प्रकाशमान उष्णकिरण (सूर्य) की प्रभा के सम्मुख चंद्रमा की तरह कांतिहीन हो गई हैं। इनके केश मलिन हो गये हैं। (तो भी) इनका पातिव्रत्य तथा इनकी अपनी रक्षा करने की शक्ति दोषहीन ही है। अतः, धर्म का अंत कैसे हो सकता है ?

वीर-वलयधारी राघव की भुजाओं की प्रशंसा करूँ या स्तुत्य वनिताओं के तिलकभूत इन देवी (सीता) के मन की प्रशंसा करूँ ? अथवा वीर-कंकणधारी, क्षत्रियोचित उदारगुण से विशिष्ट जनक महाराज के वंश की प्रशंसा करूँ ?—मैं किसकी महिमा का गान करूँ ?

अब देवों के भी कोई अपराध नहीं रह गये। भूसुरों के भी कोई अपराध नहीं रह गये। धर्म भी अविनश्वर हो गया। अब हमारे प्रभु (राम) के लिए इस संसार में कौन-सा कार्य दुस्साध्य है ? सब कार्य अनायास ही संपन्न हो जायेंगे। मेरा दासत्व भी तो दोषरहित ही है।

मैंने आशंका की थी कि अनुपम देवी (सीता) का पातिव्रत्य यदि थोड़ा भी गलित हुआ, तो चक्रधारी (राम) का कोप नामक समुद्र उमड़ उठेगा और प्रलयकाल निकट आ जायगा। अब सब लोग अनंतकाल तक स्थित रह सकेंगे।

गृहस्थ-धर्म के अनुकूल गुणों एवं आचरणों से युक्त, कुलीन स्त्रियों की मन की धृति नामक तपस्या का वर्णन कैसे हो सकता है? (नहीं हो सकता)। इन साध्वियों के सम्मुख, पंचाग्नि के मध्य रहकर, पंचेन्द्रियों का दमन कर तथा अन्न-जल का त्याग कर भी जो तपस्या करते रहते हैं, वे लोग भी किस गिनती के हैं? (अर्थात्, साध्वी स्त्री की तुलना में महान् तपस्वी भी कुछ नहीं हैं।)

इन देवी के अवतीर्ण होने से, सबकी प्रशंसा के योग्य पुण्यवान् उच्च कुल, स्त्रीजाति, एवं (महिलोचित) लज्जा आदि सद्‌गुण भी धन्य हो गये। किंतु, यहाँ अलौकिक तपस्या में निरत, इस प्रकार रहती हुई इन देवी को अपने कमल-नयनों से देखने का भाग्य (राम को) नहीं मिला।

राक्षसियाँ क्रोध करती हुई नीतिभ्रष्ट हो गई हैं। अपने को छोड़कर अन्य कोई सद्‌गुणवती (स्त्री) भी यहाँ इनकी संगिनी नहीं है। ओह! एकांतवास, स्त्रीत्व और (पातिव्रत्य की) तपस्या इसी प्रकार की तो होती है। सद्धर्म के सब फल स्त्रियों को प्राप्त हों।

धर्म ने इन (सीता) की रक्षा की, या पापी (रावण) के कर्म ने ही इन्हें बचाया, अथवा पातिव्रत्य ने ही इनकी रक्षा की? ऐसी अपूर्व रक्षा कौन कर सकता है? मुझ जैसा व्यक्ति कैसे इसका बखान कर सकता है?

रावण का ऐश्वर्य तो ऐसा है कि देवता दिन-रात उसकी सेवा में लगे रहते हैं, और उससे प्रेरित राक्षसियों द्वारा दी जानेवाली यातनाएँ भयंकर कठोर हैं! इस स्थान में, इस प्रकार पातिव्रत्य की रक्षा करते हुए रहना क्या दूसरों के लिए संभव है? इससे बढ़कर अब और क्या विपदा हो सकती है? (पर) पाप क्या सचमुच धर्म को परास्त कर सकता है?

इस प्रकार विविध रीति से विचार करता हुआ हनुमान् एक सुन्दर गगनोन्नत घने सुनहले वृक्ष की सघन शाखा पर छिपकर बैठा रहा। उसी समय पुष्प-पुंज से युक्त उस उद्यान में रावण भी आ पहुँचा। (१—७७)

●

अध्याय ४

निन्दन पटल

वह (रावण उस अशोक-वन में) आया। उसके दोनों ओर अति पुष्ट कंधे (बीस कंधे) शोभायमान थे, जो ऐसे लगते थे, मानों ऊँचे शिखरों से युक्त अनेक पर्वत एकत्र हों और जिनपर हीरक-जटित मकर-कुंडल डोल रहे थे। उसके प्रत्येक सिर पर प्रकाशमान

अनेक किरीट थे, जो सागर के जल को आलिंगित करनेवाले बाल-सूर्य के सदृश थे और जो अपने प्रकाश से अर्धरात्रि को भी दिन बना रहे थे।

उर्वशी (अप्सरा) कटि में बाँधने योग्य करवाल को लिये उसके साथ चली आ रही थी। मेनका तांबूल लिये आ रही थी। तिलोत्तमा जूते उठाये आ रही थी और अन्य अप्सराएँ उसे चारों ओर से घेरे आ रही थीं। (उसके शरीर के) कर्पूर-चन्दन-मिश्रित लेप तथा पुष्प-मालाओं की सुगंध (मिलकर), दंतों से शोभायमान पर्वत-सदृश महान् दिग्गजों की बिंदियों से युक्त सूँडों के रंध्रों को भर रही थी।

आठ सहस्र रमणियाँ पुनुगु[1] तेल के दीपों को अपने सुन्दर करों में उठाये आ रही थीं। उन (रमणियों) के शरीर पर उज्ज्वल दिखाई देनेवाले रत्नाभरणों से छिटकनेवाली कांति (वहाँ के) सारे अंधकार को मिटा रही थी। उनके चरणों में पहने हुए नूपुरों, पायलों तथा (कटि पर स्थित) मेखलाओं की ध्वनि के कारण ऐसा लगता था, मानों दुग्धसम हंसों की श्रेणियाँ चल रही हों और अपने मधुर शब्दों से दिशाओं को भर रही हों।

वह (रावण) यह विचार कर कि उसकी इच्छा (-पूर्ति) में बाधा उपस्थित हुई है, क्रुद्ध हो मधुर निद्रा से रहित हो गया। (यह देखकर) इंद्रादि देवता सोचने लगे कि क्या इसका यह क्रोध उस शीतल सुरभित उद्यान तक ही रुका रहेगा, जहाँ वह चंद्र-वदना अरुन्धती (पतिव्रता सीता बंदिनी बनकर) रहती है? अथवा न जाने वह (क्रोध) और कहाँतक फैलेगा? इस (रावण) का ठिकाना ही क्या है? — यह विचार करते हुए (देवता) निर्निमेष हो, श्वास को भी रोककर (भयभीत) खड़े रहे।

(रावण आ रहा था, मानों) नील पर्वत से जैसे कोई धवल दीर्घ जलधारा वह रही हो, उसी प्रकार उसका शुभ्र दुग्ध-समान क्षौम (रेशमी) उत्तरीय माला के रूप में सुशोभित हो रहा था, उसके पीत स्वर्णहारों की स्वच्छ छटा भूमि के लिए वस्त्र-समान समुद्र पर व्याप्त होनेवाली सहस्रकिरण (सूर्य) की कांति की समानता कर रही थी और उसके वक्ष पर स्थित यज्ञोपवीत सजल नील मेघ को भेदकर चमकनेवाली विद्युत् के समान चमक रहा था।

उसकी भुजाओं पर क्रम से शोभायमान हीरकमय और कमल के आकारवाले बाहु-वलयों की उज्ज्वल किरणें शब्दों के आश्रयीभूत गगनांगन में प्रतिदिन चमकनेवाले नक्षत्रों तथा ग्रहों का उपहास कर रही थीं। उसके दोनों पैरों में धारण किये गये शब्दायमान स्वर्ण-वलयों की महान् छटा, विशाल धरती को छूती हुई जा रही थी तथा उसके बंधुजनों के समीप फैलते रहनेवाले मंदहास नामक उज्ज्वल ज्योत्स्ना से उसके मुख-कमल, रात्रिकाल में भी विकसित थे।

उसके शरीर की कांति से विलक्षण दीखनेवाली तथा गाँठ एवं चुनन डालकर धारण की गई सुनहली धोती इस प्रकार दीखती थी, जैसे काले रंग के पर्वत के मध्य भाग पर बालातप छाया हुआ हो। उसकी अँगुलियों पर (पहनी हुई) विद्युत् के जैसे

---

१. पुनुगु—एक वन्य मृग के शरीर से निकलनेवाला सुगंधित तेल। —अनु०

प्रकाश देनेवाली, पीत-स्वर्ण की बनी, वर्त्तुलाकार मुद्रिकाओं में खचित उज्ज्वल रत्नों की कांति अत्यंत प्रकाशमान पुष्पों से भरे विशाल कल्पवन के समान शोभायमान थी।

उसके स्वर्णमय विजयहार के धवल मोती, युगांत में अकेले खड़े रहनेवाले दीर्घ स्वर्ण-पर्वत (मेरु) पर दिखाई पड़नेवाले ग्रह-नक्षत्रों की समता करते थे। (उसके) चमकनेवाले दस किरीट ऐसा प्रकाश फैलाते थे, मानों उन्नत बारह उष्णकिरण (सूर्य) में से, दो को छोड़कर शेष (दस) सूर्य उदयगिरि पर एक साथ उदित हुए हों।

दिशाओं की रक्षा करनेवाले महान् गज, जो अपने दृढ दंत-युगों के (रावण के साथ संघर्ष में) टूट जाने से धरती पर अपमान वहन करते हुए रहते थे और जिनका मदजल मयूर-चरण के आकार में (अव्यवस्थित क्रम से) बहता था, (अब उस रावण को आते हुए देखकर) उसी प्रकार भय से व्याकुल हो उठे, जिस प्रकार कैलास (पर्वत)-सदृश पुष्ट कंधोंवाले हिरण्यकशिपु के उत्तम वरों को निस्सार बना देनेवाले कराल दंतविशिष्ट सिंह (नरसिंह) के, पद-चिह्नों को अपनी सूँड़ से छूनेवाला कोई बड़ा गज हो।[1]

मनोहर मीन-सदृश नयनोंवाली यक्ष-स्त्रियाँ, आलस्यहीन अप्सराएँ, विद्याधरों की रमणियाँ, नाग-जाति की सुंदरियाँ, सिद्ध-स्त्रियाँ, राक्षसियाँ आदि एवं कुंकुमांचित मुकुलित स्तनों, बिंब-सदृश अधरों तथा कोकिल को लज्जित करनेवाली मधुर वाणी से युक्त युवतियों का समाज, उन्नत पर्वत को घेरे रहनेवाले मयूरों के समान, रावण को घेरकर चला आ रहा था।

युवतियों का कंठनाद छिद्रोंवाली वंशी की ध्वनि के साथ एकरस होकर ध्वनित हो रहा था। किन्नरियों के द्वारा यथाविधि बजाये जानेवाली 'किंगरी' (वाद्यों) की ध्वनि, खँजरी और झाल की ध्वनि तथा मार्जना-युक्त मर्दल (वाद्य) की ध्वनि—सब एक होकर नभ और धरती पर इस प्रकार व्याप्त हुई कि बाँबियों में रहनेवाले सर्प भी (उस संगीत का श्रवण करके) अमृत उगलने लगे।

(रावण के मार्ग के) चतुष्पथों पर, कल्पनातीत स्वर्ण और रत्न-निर्मित आभरणों को धारण किये हुए हरिणों के झुंड की समता करनेवाली, विद्युत्-कटि, रक्ताधरों, पीनस्तनों, पुष्ट बाँस-सदृश कंधों तथा रथ के मध्य-सदृश नितंबों से सुशोभित सुन्दरियाँ, चाँवर, पताका आदि गौरव-चिह्नों को उठाये हुए इस प्रकार चलीं, जिस प्रकार वर्षाकालीन अति श्याम मेघों को देखकर नर्त्तनशील मयूर आनंदित हो उठते हैं।

स्वर्ग-लोक की रमणियाँ, शास्त्रोक्त विधि से बजनेवाली वीणा से सप्त स्वरों का मधुर शब्द उत्पन्न करती हुई, मींड़ती हुई और इक्षुरस के समान (मधुर) गीतों को, छोटी लकड़ी से बजानेवाली डुग्गी, खँजरी, ताल के अनुकूल, मधुर रागों के साथ गाती हुई, विविध भंगिमाओं के साथ निर्दुष्ट रूप में उस (रावण) के समीप नृत्य करती हुई चली आ रही थीं।

उस समय, धवल चंद्र की किरणें छिटक पड़ीं, मानों अनंग के द्वारा प्रयुक्त अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण बाणों ने (रावण के मन में) जो घाव उत्पन्न कर दिये थे, उनमें

---

१. सिंह से भयभीत होकर गज उसके चरण-चिह्नों को छूता हुआ चलता है।—अनु०

बरछे घुस रहे हों, मंदमारुत के द्वारा पुष्पों से बटोरकर लाये गये द्रवित मधु के बिन्दु इस प्रकार झर पड़े, मानों पिघले ताँबे की बूँदें झर रही हों।

(रावण के साथ चलनेवाली) उन रमणियों के बड़े-बड़े मनोहर स्तन उत्तरोत्तर इस प्रकार बढ़ते नजर आ रहे थे कि (दर्शकों को) लगता था, इनकी सूत्र-सम कटि अब टूटी, अब टूटी। उनपर उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे वे दो लोटों को ढके हुए हों। वे मृदु मंदगति से चलती हुई, ताटंक तक फैली हुई अपनी कमल-सदृश आँखों से वंकिम दृष्टि फेंक रही थीं। रक्तकुमुद-सदृश उनके अधरों पर मंदहास खेल रहा था। उन रमणियों के मेघ-सदृश, विशाल और रक्त रेखाओं से युक्त नयन-कोरों (अपांगों) का पुंज (रावण के) वक्ष तथा भुजाओं पर फैलता रहता था।

सघन कल्पवृक्ष और नौ निधियाँ (अपने हाथों में) पुष्पमालाएँ, चंदन-रस, आभरण, उज्ज्वल सूक्ष्म वस्त्र, रत्न आदि लिये पीछे-पीछे आ रही थीं। धवल चामर इस भाँति डुल रहे थे, मानों श्वेत क्षीरसागर की तरंगें किसी काले पर्वत पर डोल रही हों। इसके सिर पर श्वेतच्छत्र शोभित हो रहा था, जो समुद्र से उठनेवाले कलंक-रहित पूर्ण चन्द्र के सदृश था।

जब-जब वह (रावण) अपने चरणों को बारी-बारी से उठाकर रखता था, तब-तब जलनिधि की परिधि से घिरे हुए (त्रिकूट) पर्वत पर स्थित लंका धँस जाती थी और चारों ओर के समुद्र की लहरें चारों दिशाओं में उमड़कर बह चलती थीं। विषदंतों से युक्त आदिशेष का सिर उसके पदभार से जब दब उठता था, तब वे अपने मुँहों को खोलते हुए पीडित हो उठते थे और समुद्रवसना भूमिदेवी भी अपनी पीठ के दबने से कराह उठती थी।

ताटका से भी दुगुने बलवाली, बडे पर्वत को भी उठा सकनेवाली, वलयों से भूषित विशाल बाहुवाली और क्रोध उमड़ने पर विध्वंसक युद्ध करनेवाली राक्षसियाँ, खेटक, परसा, लौह-मुसल, त्रिशूल, अंकुश, लौह-कंटक, 'किडुडु' (आयुध-विशेष) स्वर्णमय करवाल, बरछे, धनुष, कुलिश इत्यादि आयुध सिरों पर उठाये चली आ रही थीं।

उस (रावण) का निःश्वास अग्नि-ज्वाला को फैलाता हुआ आगे-आगे बढ़ता आ रहा था, जिससे विकसित पल्लव, अंकुर, पुष्प, पत्र, टहनियाँ आदि से मनोहर तथा स्वर्णसम ऊँचे वृक्षों से शोभित वह उद्यान, चारों ओर से झुलस जाता था। लक्ष्मी (सीता) के स्थान को जानते हुए भी, वह रावण भ्रांतचित्त होकर, अनुपम माणिक्य को खोये हुए दीर्घ-दंत और अनेक सिरोंवाले सर्प के समान, स्थान-स्थान पर भटक रहा था।

उस अत्यंत बलवान् राक्षसराज को इस प्रकार आते हुए, उस अंजनि-पुत्र ने देखा, जो वहाँ के दृश्यों को देखता हुआ बैठा था और अपने कर्त्तव्य का ठीक विचार करके, यह सोचता हुआ कि अभी इस (रावण) का कपट-कार्य और उसके बाद का परिणाम सब स्पष्ट हो जायगा, वीर-वलय से भूषित श्रीराम के महिमामय नाम का स्मरण करता हुआ वहाँ से उठा और छिपकर खड़ा हो गया।

उस समय अप्सराओं का समाज तथा अन्य स्त्रियाँ दूर हटकर खड़ी हो गईं।

रावण वहाँ आ पहुँचा, जहाँ स्त्रीकुल-दीप-सदृश वह (सीता) थीं। तब वह देवी भयभीत हो, काँपती हुई गलित-प्राण-सी हो गई और उस हरिणी के समान सिकुड़ गई, जिसे खाने के लिए अतिबलिष्ठ, तीक्ष्ण कोपयुक्त तथा धूम उगलते हुए नयनोंवाला व्याघ्र आ गया हो।

(भय से) थरथराकर विकल प्राण होनेवाली देवी को और काम-मोह से शिथिलप्राण होनेवाले रावण को अपने निर्दोष नयनों के सम्मुख (हनुमान् ने) देखा और दुःख से पीडित और चिन्तित हुआ।

जानकी देवी की जय हो! राघव की जय हो! चारों वेदों की जय हो। वेदज्ञों की जय हो! सद्धर्मों की जय हो! प्रतियुग में नव-नव यश से युक्त होनेवाले उस (हनुमान्) ने हृदय से जय की कामना की।

भयंकर विष को अमृत मानकर उसे चाहनेवाले रावण ने उस स्थान पर पहुँचकर (सीता) देवी के प्रति कहा—हे दुखती कटिवाली कोयल! कहो, कब तुम मुझपर दया करनेवाली हो?

वह रावण, जिसने (इसके पूर्व) अपने इष्टदेव शिव से पराजित होकर भी, अपना गर्व थोड़ा भी कम न किया था (अर्थात्, अपने को परास्त करनेवाले देवता के सम्मुख भी नहीं झुका था), अब काम-वासना और लज्जा (सीता के सामने शिर झुकाकर प्रार्थना करने के कारण उत्पन्न) दोनों से व्याकुल होता हुआ मन में बड़े संकोच को छिपाकर यह वचन कहने लगा—

हे ताटंक तक फैलकर क्रूरता करनेवाले अरुण नयनोंवाली! अबतक कितने ही दिन एक-एक करके व्यतीत हो गये। कल भी इसी प्रकार व्यतीत हो जायगा। मेरे प्रति तुम जो (व्यवहार) करती हो, वह इस प्रकार का है। क्या तुम मेरे प्राणों को हरने के पश्चात् ही (मुझसे) मिलनेवाली हो?

हे तिलक[1] (समान)! मैं तीनों लोकों पर एक समान शासन करनेवाला हूँ। अनन्त विभूतियों से युक्त इस राज्य में मेरा जो शासनचक्र चलता है, उसमें तुम्हारे प्रेम के कारण, अनंग के द्वारा उत्पन्न किये गये कलह के अतिरिक्त क्या अन्य कोई ऐसा कार्य भी है, जो मुझे इस प्रकार अपमानित करता है? (अर्थात्, मेरा अन्य कोई कार्य इस प्रकार मुझे नीचा नहीं दिखाता, जितना कि तुम्हारे प्रेम के कारण उत्पन्न अपमान।)

हे पुष्पालंकृत दीर्घ केशों से युक्त, स्वर्णमय पल्लव-सदृश (रमणी)! कीर्त्ति-युक्त (मेरे) ऐश्वर्य की तुमने उपेक्षा की है। यदि तुम्हारा वह प्रिय प्राणनाथ मर न जाये (जीवित ही रहे) और वनवास (की अवधि) को भी पूरा कर दे, तो भी उसके पश्चात् का जो जीवन होगा, वह मनुष्य-जीवन ही तो होगा? (अर्थात्, मनुष्यों का जीवन अत्यंत अधम होता है)।

हे कंचुक में न समानेवाले स्तनों से युक्त (सुन्दरी)! बड़ी तपस्या करनेवाले ऋषि और शास्त्रीय सूक्ष्म विषयों का गंभीर अध्ययन करनेवाले महान् पुरुष जिस फल को प्राप्त करते हैं, यदि उस (फल) के बारे में विचार करके देखोगी, तो जानोगी कि वह

१. दक्षिण में सुन्दरी स्त्रियों को 'तिलक' कहकर संबोधन करने की प्रथा है। —अनु०

(फल) उन देवों के साथ निवास करना ही तो है, जो मेरी आज्ञा को सिर पर धारण करनेवाले हैं।

धरती की समस्त संपत्तियों में सबसे श्रेष्ठ संपत्ति—शिशु की तोतली वाणी, वीणा का नाद, धैवत स्वर, पत्ती के कलरव आदि को भी परास्त करनेवाली मधुर बोली से संपन्न (हे सुन्दरी) ! ज्ञानी चतुमुख ने तुम्हारी यह जो अनुपम मूर्त्ति निर्मित की है, उसमें मन की दयालुता और बिजली के समान कटि का अभाव ही रह गया है।

जीवन के दिन और यौवन (व्यतीत होने पर) फिर लौटकर नहीं आते। ये धीरे-धीरे विनष्ट हो जानेवाले हैं। अगर (भोग का) अनुभव करने के ये दिन व्यर्थ ही बीत जायेंगे, तो सुख का जीवन कब मिलेगा ? क्या तुम बड़े दुःख में ही पड़कर डूब जाना चाहती हो ?

तुम (दुःख से) म्लान नयनोंवाली का मन यदि प्रतिकूल ही रहनेवाला है (अर्थात्, मेरे अनुकूल नहीं होनेवाला है), तो उससे मेरे प्राणों का भी विनाश हो जाय, तो वह भी ठीक ही है। (मेरे अतिरिक्त) और कौन ऐसा पुरुष रह जायगा, जो तुम्हारे सौंदर्य के अनुरूप, तुम्हारे साथ सहवास करने योग्य, अच्छे गुणों तथा प्रेम से युक्त हो ?

स्त्रीत्व, (तथा उसके) अनुरूप सौंदर्य, अविचल धृति आदि सद्गुणों से पूर्ण रहने पर भी क्या जनक महाराज के वंश में उदारता, कृपायुक्त दानशीलता—(ये गुण) विनष्ट हो गये हैं ?

हे शुकी ! क्या मरते समय उसने जो कंठ-ध्वनि (हा सीते ! हा लक्ष्मण ! आदि) की थी, उस सच्ची कंठ-ध्वनि को सुनकर भी उस (राम) को फिर सजीव देखने की इच्छा करती हो ? सत्य बात यह है कि, जब अत्यधिक पुण्य प्राप्त होता हो, तब हमें उसका तिरस्कार करना उचित नहीं है।

यदि मेरे प्राण (तुम्हारे विरह से) मिट जायेंगे, तो अविलंब ही मेरी सारी संपत्ति भी विनष्ट हो जायगी। तुम अनुपम सुन्दरी के आ जाने से (रावण की संपत्ति की) अभिवृद्धि हुई—इस प्रकार की अपनी कीर्त्ति को मिटाकर उसके विरुद्ध (सीता के आगमन से रावण की संपत्ति मिट गई—इस) अपयश को क्यों पाना चाहती हो ?

हे उज्ज्वल आभूषणवती ! देव और अप्सराएँ सब तुम्हारे रक्त-चरणों की सेवा में निरत हो जायेंगे। त्रिभुवनों का अविनश्वर अधिकार तुम्हारे पास आ पहुँचा है, जिसका तिरस्कार तुम कर रही हो। तुम्हारे सदृश मूढ और कौन होगा ?

(अपने) अपयश का थोड़ा भी विचार न करनेवाले उस (रावण) ने, यह कहकर कि—'मैं, तीनों लोकों को अपना दास बना लेने की शक्ति से युक्त हूँ। तुम मुझे अपना दास स्वीकार करो'—अपने सिर पर हाथों को जोड़े हुए धरती पर गिरकर नमस्कार किया।

तप्त शलाकाओं के जैसे इन वचनों के कानों में प्रवेश करने के पूर्व ही सीता देवी के कान जल गये। मन विचलित हो गया। दोनों नयनों से लाल रक्त बहने लगा। तब उन्होंने अपने प्राणों का भी भय किये विना, स्त्री के लिए उपयुक्त न होनेवाले, अति कर्कश वचन (रावण के प्रति) कहे—

(सीता ने रावण को तृण मानकर कहा —) हे तृण ! तुम्हारे कहे हुए कठोर वचन, गृहस्थी में जीवन बितानेवाली स्त्रियों के योग्य नहीं हैं। संसार में मन को शिला-तुल्य बनानेवाला पातिव्रत्य के अतिरिक्त और कोई गुण क्या तुमने देखा है ? मैं जो कहती हूँ, उसे ठीक से समझ लो— मल्लयुद्ध में शत्रु को मार सकनेवाली पुष्ट भुजाओं से युक्त, छली (रावण) के मन को बदल देने के लिए (सीता) कोप से भरे कठोर वचन कहने लगी।

हे बुद्धिहीन ! मेरु-पर्वत को छेदना हो, नभ को चीरकर उस पार जाना हो, चतुर्दश लोकों को विध्वस्त करना हो, तो भी (यह सब करने के लिए) आर्य (राम) के बाण समर्थ हैं, यह जानकर भी तू अनुचित वचन कह रहा है, क्या तू अपने दसों सिर गिरवाना चाहता है ?

तू (राम से) भयभीत था, इसीलिए उस समय, एक माया-मृग को भेजकर, राम को अनुपस्थित पाकर, अपनी माया से छिपकर आया। अब जीवित रहने की इच्छा करता है, तो मुझे मुक्त कर दे, तेरे वंश के लिए विष बने हुऐ (उन राम) के सम्मुख आ जाने पर क्या तेरी आँखें (उनको) देख भी सकेंगी ? (अर्थात् , तू उनको आँख उठाकर देख भी नहीं सकेगा, तू इतना डरपोक है।)

मेरे हरण के समय जटायु से भूमि पर गिराये गये (हे तृण) ! तेरे दसों सिर और बीसों भुजाएँ उन धनुर्विद्या में निपुण (राम) के लिए, उनके बाणों का प्रयोग करने की क्रीडा के लिए उचित तथा विचित्र प्रकार की लक्ष्य-वस्तु बनेंगी, बस इतना ही है। इसके अतिरिक्त क्या तू युद्ध में उनके सम्मुख खड़े रहने की भी शक्ति रखता है ?

उस दिन, एक पक्षी (जटायु) से तू हार गया था, तब उमड़ती गंगा को सिर पर धारण करनेवाले (शिव) के दिये हुए खड्ग की सहायता से तूने उस पक्षी पर विजय पाई। यदि उस खड्ग का बल नहीं होता, तो उसी दिन तू मर गया होता। तप के फलस्वरूप प्राप्त जीवन, वर इत्यादि तेरे कथित सब गुण यम से बचने के लिए ही तो तूने प्राप्त किये हैं, क्या ये सब गुण वीर (राम) के शरों से बचने के लिए भी कुछ उपयोगी हो सकते हैं ? (अर्थात् , तेरे सब वर भी तुझे राम से नहीं बचा सकते)।

तेरे प्राप्त किये हुए वर, तेरा जीवन, तेरी शक्ति, तेरी अन्य विद्याएँ तथा कमलासन (ब्रह्मा) आदि देवों की (वरदान) वाणी—ये सब, ज्यों ही राम धनुष पर शर चढ़ाकर संधान करेंगे, त्योंही टूटकर विनष्ट हो जायेंगे, यह सत्य है। दीप के सम्मुख क्या अंधकार टिक सकता है ?

कैलास को जब तूने उठाया था, तब तुझे अपने अरुण-चरण की उँगली से (दबाकर) परास्त करनेवाले उन शिव ने जिस मेरु को त्रिपुरदाह के समय अपना शरासन बनाया था, वह मेरे प्राणनायक के बल का वहन करने की शक्ति न रखने से उस दिन (वह धनुष) टूटकर गिर पड़ा था, तब उससे उत्पन्न होकर सर्वत्र फैली हुई भयंकर ध्वनि को तूने कदाचित् सुना नहीं।

तू जो यह वीर-वचन कहता हुआ यहाँ फिर रहा है कि मैंने कैलास को

उखाड़कर अष्टदिग्गजों को उनके स्थानों से विचलित कर दिया था,[1] किन्तु जब मेरे छोटे देवर धनुष लिये खड़े थे, तब उनके निकट नहीं आया ! इतने पर भी तू क्या अपना सिर उठाने योग्य है और फिर स्त्रियों के चरणों पर भी तो गिरनेवाला तू ही है न ?

हे मूर्ख ! जब मेरे प्रभु यह जानकर कि तेरे छिपने का स्थान यही है, यहाँ आयेंगे, तब क्या इस समुद्र और इस लंका नगर के विध्वस्त होने से ही उनका क्रोध शांत होगा ? या प्रलयकालीन अग्नि को भी दग्ध कर देनेवाले तेरे प्राणों के साथ ही वह क्रोध शांत होगा ? (अर्थात् , तेरे प्राणों को जलाने के बाद भी वह क्रोध शांत नहीं होगा)।

या (वह क्रोध) निष्ठुर क्रोधवाले राक्षसों को मिटाकर ही शांत होगा। तेरे इस वंचक कृत्य के परिणामस्वरूप, उन उदार (राम) के क्रोध से समस्त लोक ही विध्वस्त हो जायगा। —यही मेरा भय है, धर्मदेव ही इसके साक्षी हैं।

इस सुन्दर धरती के निवासियों को त्रस्त करते हुए जीनेवाले, हे निष्ठुर। हे मूर्ख ! क्या तूने ऐसे नीच कृत्यों को छोड़कर अच्छे कार्य किये ही नहीं ? क्या तूने मेरे प्रभु को भी अरुणनयन (विष्णु), चतुर्मुख (ब्रह्मा) और शिव के समान ही समझ रखा है ?[2]

यदि (अनन्त राजा) एक मनुष्य (अर्थात् , परशुराम) से परास्त हो गये और यदि वह मनुष्य (परशुराम) भी (मेरे प्रभु के समीप) शक्ति-हीन हो गया, तो तू सोच सकता है कि मधुपूर्ण पुष्पधारी मेरे प्रभु के गुण कैसे हैं ?

(अपने कृत) अन्याय के कारण अनुपम ऐश्वर्य को खोकर (निकट भविष्य में) मिट जानेवाले हे तृण ! ये दो ही तो हैं—यदि ऐसी उपेक्षा तू करता है, तो यह सोच कि युगांत में लोकों का विनाश करनेवाला एक ही तो होता है।[3] जब युद्ध होगा, तब तू समझेगा कि मेरा वचन सत्य ही है।

हिरण्याक्ष और उसका अनुज (हिरण्यकशिपु) इन दोनों राक्षसों ने, जिनकी भुजाओं पर युद्ध करते रहने से, धनुष की डोरी के निशान पड़ गये थे तथा उनके जैसे अन्य राक्षस भी, यद्यपि वे धर्म के सन्मार्ग से भटक गये थे, तब भी, पर-नारी के विषय में सीमा का अतिक्रमण नहीं किया था, फिर भी वे मृत्यु को प्राप्त हुए। (तू तो उनसे भी बड़ा दुष्ट है, अतः अवश्य ही दारुण मृत्यु को प्राप्त होगा)।

(तू ही विचार कर देख—) पापों से मुक्त होकर रहनेवाले कमलासन प्रभृति देवता, जो इन्द्रियों के मार्ग में नहीं जाते, स्थिर (अमर) हैं। हे राक्षस ! (जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर चलते हैं।) यदि तेरे पास इतना ऐश्वर्य एकत्र हुआ है, जिससे सब लोक-

---

१. ऐसी कथा है कि त्रिपुर-दाह के समय शिव ने मेरु को धनुष बनाकर और विष्णु को शर बनाकर उसपर चढ़ाया था। किन्तु, विष्णु का बोझ न वहन करने के कारण वह धनुष टूट गया था।—अनु०

२. यह कथा है कि रावण ने त्रिमूर्त्तियों को पराजित कर दिया था। महाकवि कंबन राम को त्रिमूर्त्तियों से भी श्रेष्ठ समझता है; क्योंकि राम ने रावण को पराजित किया था।—अनु०

३. ध्वनि यह है कि राम और लक्ष्मण दो ही हैं। ये क्या कर सकते हैं ?—ऐसा तुम्हारा सोचना ठीक नहीं; क्योंकि प्रलयकाल में समस्त लोकों का नाश करनेवाला तो एक ही होता है।—अनु०

वासी तेरी आज्ञा को मानते हैं, तो सोचकर देख , यह क्या तेरे पापों का फल है, या तेरे पूर्व-कृत धर्म का ही परिणाम है ?

इस विशाल ऐश्वर्य को तुझे देनेवाले (शिव) यदि वैसी संपत्ति के स्वामी बने हैं, तो उसका कारण, उनका निरंतर तथा महान् तप करते रहना ही तो है। हे मूर्ख! तेरी अनुपम संपत्ति मिट जायेगी। तू अपने बंधुजन-सहित विनष्ट हो जायगा। इसके लिए ही तू धर्म के मार्ग पर न चलकर, उसके विरुद्ध चल रहा है।

वीरता से च्युत न होनेवाले, दुर्विजय बलवान् भी धर्म-भ्रष्ट तथा प्राणियों के प्रति निष्करुण होने पर विनष्ट हो जाते हैं। अनासक्त रहकर, अपने महान् शत्रुत्रय (काम, क्रोध और मोह) को जो मिटा देते हैं, वे ही तो जन्म-मरण के पाश से मुक्त होते हैं ? नहीं तो और कौन मुक्त होते हैं ?—तू ही कह।

जब (रामचन्द्र ने) अरण्य में प्रवेश किया था, तब मधुर तमिल-भाषा की वृद्धि करनेवाले मुनि (अगस्त्य) ने तथा दोषरहित अन्य मुनियों ने (राम से) यह प्रार्थना की थी कि हे प्रभु! नीचकर्म करनेवाले राक्षसों के उपद्रव सहने में हम समर्थ नहीं हैं। उनका निग्रह करने की कृपा कीजिए। तुम्हारे द्वारा अब राक्षसों का नाश होना निश्चित है।—यह मैंने स्वयं सुना था। तू ने भी इस प्रार्थना (की पूर्त्ति) के उपयुक्त पापकृत्य ही किया है।

ऋषियों ने तेरे संबंध में उसे और इस राक्षस-सेना के प्रभाव के संबंध में जो कुछ कहा था, उन सबको सुनने के पश्चात् भी (राम ने) तेरी बहन की नाक आदि अंगों को काटा था तथा तेरे भाई खरदूषण आदि की भुजाओं और चरणों को छिन्न-भिन्न कर दिया था—यह बात तू क्यों नहीं सोचता ?

सन्मार्ग को नहीं जाननेवाले, हे नीच! तेरी बीसों बाहुओं को पकड़कर, तुझे, यों आहत करके, जिससे तेरे मुखों से रक्त बहने लगा था, बड़े कारागार में बंदी बनानेवाले, सहस्र विशाल बाहुओंवाले वीर (कार्त्तवीर्य) को वज्र-सम भुजाओं को जिस (परशुराम) ने काटकर फेंका था, उसके (राम के) सम्मुख शक्तिहीन हो जाने की बात तू क्या नहीं जानता है ?

काटकर मारनेवाला सर्प भी मंत्र को सुनकर दब जाता है, किन्तु, तू (मंत्र का उच्चारण करनेवाले के अबतक न आने से धृष्ट बना हुआ है) आनंदित हो मनमाना करता चला जा रहा है। यह कार्य उचित है, यह उचित नहीं है—यों युक्तिपूर्ण कारणों के साथ तुझे सीख देनेवाले और तुझे धिक्कार देकर कहनेवाले कोई नहीं हैं। तेरे पास जो रहते हैं, वे तेरे विचारों के अनुकूल स्वयं भी चलकर तुझे मिटा देनेवाले हैं। तो अब तेरे विनाश को छोड़कर और क्या परिणाम निकलेगा ?

इस प्रकार, धर्म-मार्ग को (सीता देवी के मुँह से) सुनते ही उस (रावण) के बीसों नयन बिजली के समान चमक उठे। क्रोध को सूचित करनेवाले अपने दसों खुले मुखों से इस भाँति धमकी देता हुआ चिल्ला उठा कि पर्वत भी हिल उठे। अब क्या कहना है ? उसका क्रोधी स्वभाव, उसके काम की उग्रता को भी लाँघ गया (अर्थात्, उसका क्रोध उसके काम को दबाकर अत्युग्र हो उठा)।

उसके मन में लज्जा का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। (क्रोध के कारण फूल उठने से) उसकी भुजाएँ सब दिशाओं को आच्छादित कर फैल गईं। उसकी आँखों से अग्नि-ज्वाला निकलने लगी। क्रोध से वह चिल्ला उठा कि इसको चीरकर खा जाऊँगा। (उसके मन में) कोप और काम—दोनों भाव, बारी-बारी से उमड़ने लगे। अतः, वह (सीता के पास तक) जाऊँ या न जाऊँ, यों आगा-पीछा करता हुआ खड़ा रहा।

उस समय, हनुमान् ने मन में यह निश्चय कर लिया कि अरुंधती-समान पति-व्रता, मेरे स्वामी की देवी के प्रति मेरे सम्मुख ही, इस प्रकार के दुर्वचन कहनेवाले इस नीच को, इसके अपने हाथों से (सीता देवी को) छूने के पूर्व ही, मैं अपने पैरों से कुचलकर फिर आगे का कार्य करूँगा।

फिर, यह भी सोचा कि अकेले खड़े रहनेवाले इस (रावण) के दसों सिरों को तीव्र गति से आहत करके गिरा दूँगा। शीतल समुद्र में लंका को धँसा दूँगा। और फिर, इन पवित्र महातपस्विनी (सीता देवी) को लेकर आनंद के साथ लौट जाऊँगा—यों सोचता और हाथ मलता हुआ वह खड़ा रहा।

उस समय, करवाल-सदृश उस राक्षस का, ब्रह्मांड को मिटा देने के लिए उमड़ी हुई प्रलयाग्नि के समान उठा हुआ क्रोध, अति तीव्र काम-रूपी जल-प्रवाह से शांत हुआ, जिससे वह पूर्व-दशा में पहुँचकर इस प्रकार के वचन कह उठा—

तुम्हें मारने के लिए मेरे मन में क्रोध उमड़ पड़ा है। किंतु, मैं तुम्हें अब मार नहीं सकता हूँ। मेरे संबंध में तुमने जो वचन कहे, वे यथार्थ ही हैं। उन सब (घटनाओं) के कारण तुम्हें बताता हूँ, अब इस संसार में मेरे लिए 'यह कार्य संभव है, यह संभव नहीं है'—ऐसा कुछ नहीं ? पूर्वकाल में मेरी जय और हार—दोनों तमाशा ही तो थे।

मेरी एक बात सुनो—तुम्हारे प्राण जैसे नायक को यदि मारकर मैं तुम्हें ले आता, तो तुम अपने प्राण छोड़ देती, जिससे काल मेरे प्राणों को भी हर ले जाता (अर्थात्, मैं भी जीवित नहीं रहता।) इसी विचार से मैं तुम्हें छल से हर लाया। युद्ध में मेरे सामने खड़ा रह सकनेवाला कौन है ?

मधु-समान मधुर वाणीवाली ! (मायामृग को) यथार्थ हरिण समझकर उसके पीछे गये हुए वे मनुष्य (राम-लक्ष्मण) लौटकर जब यह जानेंगे कि (तुम्हारा हरण करने-वाला) मैं रावण ही हूँ, तो वे तुम्हें छुड़ाने के लिए आयेंगे ही नहीं। यह सोचते हुए कि वे तुम्हें मुक्त करने के लिए आयेंगे (उनकी) प्रतीक्षा करना अज्ञता है। देवों में ही कौन ऐसा है, जो यह जानकर कि (तुम्हें हरण करनेवाला) उनका प्रभु मैं ही हूँ, पीछे न हटकर उसके विपरीत (आगे बढ़ने का) काम कर सके।

हे कोमल कंधोंवाली ! तुम्हारे कथनानुसार मुझे पारजित करनेवाले भले ही हों। वे अविनश्वर, सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्त्ति भी हों। फिर भी, त्रिलोकों के निवासी यह भली भाँति जानते हैं कि चिरकाल से ही इन्द्र मेरी सेवा करता रहा है, अतएव असमान पराक्रमी मैं ही तो हूँ। मेरी इस महिमा का और कोई प्रमाण देने की आवश्यकता ही क्या है ?

हे मधुरभाषिणी ! हे प्रतिमा-समान सुन्दरी ! त्रिभूतियों तथा देवों को पराभूत करनेवाली जो प्रभूत विजय मुझे प्राप्त है, उसको भी मैं तुम्हारे लिए कलंकित होने दे रहा हूँ। व्यर्थ तपस्यावाले उन बलहीन मनुष्यों को (अर्थात्, राम-लक्ष्मण को) मैं नहीं मारूँगा। तुम देखो, मैं उन दोनों को यहाँ ले आऊँगा और उनसे अपनी सेवा कराऊँगा।

हे दोषहीन ! क्षुद्रबल, नीच कर्म तथा अधमता से युक्त उन छोटे वीरों (राम-लक्ष्मण) के प्रति, परिपक्व महाबल से संपन्न मुझमें वीरोचित कोप यद्यपि उत्पन्न नहीं हो रहा है। फिर भी तुम देखो, मैं आज ही जाकर उन दोनों को कैसे एक ही हाथ से पकड़कर ले आता हूँ।

हे पीले (स्वर्ण के) कंकणों को धारण करनेवाली ! वे (राम-लक्ष्मण) यद्यपि (मेरे भोजन के योग्य) मनुष्य ही हैं, तो भी उन्होंने तुम्हें यहाँ लाकर मुझे देने का जो उपकार किया है, उसका विचार करने पर वे वध के योग्य नहीं हैं। यदि तुम उनका विनाश ही चाहती हो, (या) मेरे आगे के कार्यों का विचार करके यदि तुम्हें वही उचित लगता हो, तो मैं वैसा ही करूँगा (अर्थात्, राम-लक्ष्मण को मार दूँगा)। और देखो—

हे तीक्ष्ण आयुवाली ! तुमने मेरे पराक्रम को ठीक-ठीक नहीं आँका है। युगांत-कालीन अग्नि के समान, गहरे जल से समृद्ध अयोध्या पहुँचकर, वहाँ भरत आदि के प्राणों का हरण करूँगा। प्रवहमाण जलधाराओं से युक्त मिथिला के निवासियों का भी निर्मूलन करूँगा और अनायास ही लौटकर तुम्हारे प्राणों को भी हरूँगा।

इस प्रकार के वचन कहकर उसने अति क्रुद्ध हो, अपने उज्ज्वल कांतियुक्त करवाल की ओर देखा। फिर (सीता के प्रति) कहा—'तुम्हारे प्राणों की हानि करने का दिन भी अभी दो मासों में आ जायेगा। अतः, तुम पर घटनेवाली जो (विपदा) है, उसके विषय में सोचो।' और, आगे फिर कहा—'बुद्धिमानों की भाँति ही (अपने कर्त्तव्य के संबंध में) विचार कर लो।'—यों कहता हुआ वह (रावण) कमल-समान अरुण रेखाओं से अंकित नयनोंवाली उन (देवी सीता) को अपने अन्तर में बिठाकर, उनको डरा-धमकाकर वहाँ से चला गया।

फिर, वह (वहाँ स्थित) हास-रहित, फटे हुए मुँहवाली एवं उग्र क्रोध से युक्त राक्षस-स्त्रियों से यह कहकर चला गया कि डराकर या समझा-बुझाकर, किसी भी उपाय से, उस लता-समान रमणी (सीता) को राजी करो और मेरे पास (वह समाचार लेकर) आओ। अन्यथा मैं तुम लोगों के लिए विष बन जाऊँगा।

राक्षस (रावण) चला गया। फिर, फुफकारनेवाले राहु के द्वारा ग्रस्त होकर उगले गये विशुद्ध, धवल, पूर्णचन्द्रमा के समान उन (सीता) देवी को, असंख्य, अति-निष्ठुर राक्षस-स्त्रियों ने एक साथ घेर लिया और अति क्रोध से भरकर बड़े कर्कश स्वरों में धमकाने लगीं। फिर, अपने मनमाने वचन कहने लगीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, परस्पर एक को पीछे हटाकर आगे बढ़ती हुई, अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालती हुई, उतावली हो उठीं और चमकनेवाले त्रिशूल, भाला आदि को ऊँचा उठाये, कड़ककर कहने लगीं—'इसे मारो-मारो, टुकड़े-टुकड़े करके पेट भर खाओ-खाओ।'

कुछ राक्षसियाँ कहने लगीं—विश्व के स्रष्टा चतुर्मुख के पुत्र (पुलस्त्य मुनि) के जो पुत्र (विश्रवा) हुए थे, उनका पुत्र (यह रावण) त्रिलोकप्रभु है। सहस्र शाखामय वेदों का ज्ञाता है। महान् ज्ञानी है। (इसने अपनी तपस्या से) कर्मों को जीत लिया है। यह तुम पर सच्चा प्रेम रखता है। इसके अतिरिक्त उसने कौन-सा क्षुद्र कार्य किया है? (अर्थात्, तुमपर अनुरक्त होना उसकी उदारता का ही सूचक है और उसने कोई नीच कार्य नहीं किया है।)

कुछ राक्षसियाँ कहने लगीं—हे स्त्रियों में कठोरहृदय! जैसे (किसी ने) घाव में लकड़ी घुसेड़ दी हो, उसी प्रकार तुमने (रावण के प्रति) कठोर वचन कहकर ऐसी हानि उत्पन्न कर दी है कि इस संसार के सब मनुष्य अपने-अपने वंश-सहित मिट जायेंगे और तुम्हारा शरीर भी विनष्ट हो जायगा। (तुम) निष्पक्ष दृष्टि से सत्य को नहीं देख रही हो।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ कहने लगीं—हे विवेकहीन! तुम ऐसी जनमी हो, जो अपने पतिगृह तथा अपने पितृगृह—दोनों में एक साथ ही धुआँधार आग को उछालकर फेंकनेवाली हो। (यदि हमारा कथन नहीं मानोगी, तो) अभी तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अब तुम जीवित नहीं रह सकती हो। पहले से ही हम सब बातों को ठीक-ठीक (तुम्हें) जतला देते हैं।

मारने की धमकी देनेवाली उन राक्षसियों की निष्ठुरता से तनिक भी विचलित न होती हुई वह साध्वी, उनके—जो अपने नायक (रावण) की विजय को निश्चित मानती थीं और उन साध्वी (सीता) को खाने के लिए उतावली हो रही थीं—(भयानक) आकार को और अति निष्ठुर रावण की आज्ञा को अपने मन में सोचती हुई अपने सुन्दर नयनों से अश्रु बहाती हुई हँस पड़ी।

जब इस प्रकार की घटनाएँ हो रही थीं तब वहाँ खड़ी रहनेवाली (त्रिजटा) ने यह कहा—'हे माता! अपने स्वप्न के फल को पहले ही मैंने सुना दिया है। उसपर भी यदि आप व्यर्थ ही उतावली या व्याकुल होंगी, तो यह अनुचित ही है'[१] (यह कहकर सांत्वना देने लगी)। त्रिजटा के वचन को समझकर सब राक्षसियों ने (त्रिजटा से)कहा कि हे माँ! आपका कथन ठीक ही है।

अपने प्रभु (रावण) से त्रस्त होकर, कोई दूसरा विचार न रखनेवाली, निकट-स्थित पाप-समान वे राक्षसियाँ, उस त्रिजटा के कथन से शान्त होकर धमकी देना बंद करके (चुप) रह गईं। घने कुंतलोंवाली देवी भी किंचित् स्वस्थ-प्राण हुइ। (१—८२)

●

---

१. त्रिजटा की उक्ति ऐसी है कि एक ओर वह सीता के प्रति सांत्वना प्रकट करती है और दूसरी ओर राक्षसियों के प्रति सावधानता। विशेष करके, त्रिजटा का दूसरा वाक्य सुनकर राक्षसियाँ शांत हो जाती हैं। मूल में यह पद्य कंबन की वचन-चातुरी का एक सुन्दर उदाहरण है।—अनु०

अध्याय ५

स्वरूप-प्रकटन पटल

हनुमान् सोचने लगा—(सीता देवी के) दर्शन करने का यही उपयुक्त समय है, लेकिन अति कठोर और रखवाली करने में सतर्क चित्तवाली (राक्षसियाँ) अभी सोई नहीं हैं। मेरे केवल चाहने से ही ये सोनेवाली भी नहीं हैं। यह सोचकर हनुमान् ने ऐसी माया फैलाई की सब राक्षसियाँ मूर्च्छित होकर मृतवत् हो गईं।

अनेक दिनों से दुःखित देवी, एक दिन भी न सोनेवाली राक्षसियों को भी अब निद्रित देखकर, और भी असह्य वेदना से पीडित हो उठीं। वे उस कष्ट से मुक्त होने का कोई उपाय न सोच पाती थीं। उनका मन टूट गया और भय-विकंपित हो उठा। उस समय (श्रीराम के प्रति) उत्तरोत्तर उमड़ते हुए प्रेम के कारण ये वचन कहती हुई शोक से उद्विग्न हुईं—

हे बलवान् भाग्य! कालमेघ, विशाल समुद्र और गाढ अंधकार (के रंग) की समता करनेवाले प्रभु (रामचंद्र), एकाकी होकर मुझ कष्ट भोगनेवाली के प्राणों को क्या पुनर्जीवन प्रदान करेंगे (अर्थात्, क्या मेरे प्राणों की रक्षा करेंगे)? क्या वज्रध्वनि-सदृश (उनके) भयंकर धनुष की प्रत्यंचा-ध्वनि यहाँ सुनाई पड़ेगी? तू कह!

हे मूढ चन्द्र! हे उज्ज्वल चन्द्रिके! हे व्यतीत न होनेवाली रात्रि! हे बढ़ते रहनेवाले अक्षीण अंधकार! तुम सब क्रुद्ध होकर मुझको ही सता रहे हो। (मेरी) चिंता न करनेवाले उस धनुर्धारी (राम) को क्या तुम किंचित् भी नहीं सताते?

हे लताओ! अग्नि बिखेरते हुए चलनेवाले उत्तर पवन को साथ लेकर तुम मुझे सता रही हो। क्या तुम्हें मेरे प्राणों की दशा विदित नहीं है? अपनी देह-कांति से समुद्र की समता करनेवाले उन (राम) के साथ, वन में चिरकाल से रहनेवाली तुम, क्या उन्हें (मेरी दशा को) नहीं जताओगी?

हे अक्षीण पराक्रमी महावीर नारायण! हे अनुपम प्रभु! एक सहस्र करोड़ कष्टों का अनुभव करती हुई भी मैं, उनकी उदारता का स्मरण करके, यही सोचती हुई कि वे बिना आये नहीं रहेंगे, अबतक जीवित हूँ।

(सीता देवी राम का संबोधन कर कहती हैं वन के लिए प्रस्थान करते समय) तुमने (मुझसे) कहा था कि 'वृक्षों से भरे अरण्य में मेरे साथ चलने की बात तुम कह रही हो—यह विचार तुम छोड़ दो। मैं कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा। इसी महान् (अयोध्या) नगरी में तुम रहो।' तुम्हारी करुणा-पूर्ण आज्ञा इस प्रकार की थी, तो अब एकाकी होकर रहनेवाली मुझ अबला के अनाथ प्राणों को क्या तुम कष्ट भोगने दोगे?

यत्न से रक्षित हे मेरे विवेक! मेरे प्राण! चिरकाल से तुम निर्लज्ज होकर मुझे छोड़े बिना मेरे साथ ही भटक रहे हो। अपने अनुपम स्वामी को जबतक न देखूँ, तबतक

तुम कदाचित् मुझे छोड़कर नहीं जाओगे। किन्तु, क्या इस प्रकार (स्वामी से बिछुड़कर भी सजीव रहने के कारण) प्राप्त होनेवाले अपयश का भागी बनकर रहना मेरे लिए उचित है ?

किसी भी प्रकार से न मरनेवाले किरीटधारी चक्रवर्त्ती (दशरथ) मर गये। सप्त लोकों में विकट विपदाएँ छा गईं। ऐसे विपत्तियों को उत्पन्न करते हुए, अन्त-रहित मार्ग पर चलकर वन में प्रविष्ट होनेवाले वे निष्ठुर (राम) आयेंगे (और मेरी रक्षा करेंगे)—यह सोचकर संतुष्ट रहना क्या (मेरे लिए) उचित है ?

विद्युत्-सम कटि एवं उज्ज्वल आभरणों से युक्त वे (देवी) इस प्रकार कहकर निःश्वास भरती हुई वहीं जड़वत् रह गईं और शोक से व्याकुल हो उठीं। फिर सोचने लगीं—मेरे प्राण जबतक रहेंगे, तबतक विपदा भी (मेरे साथ) रहेगी। मेरे मरने पर ही (मेरे कष्ट निवृत्त होंगे और) मुझे यश मिलेगा।

शब्दायमान महान् वीर-वलयधारी (राम) को देखने की आशा से ही (सब कष्टों को) सहती हुई अपने प्राणों को रोककर मैं जीवित हूँ। तो भी) अनेक दिन राक्षसों के बड़े नगर में, बंदी बनकर रहने के कारण पवित्र गुणवाले वे राम क्या मेरा स्पर्श भी करेंगे ? (अर्थात्, मुझे कदाचित् वे नहीं अपनायेंगे।)

यह जानकर भी कि मैं पर-पुरुष की कामना का पात्र बन गई हूँ, मैं मरी नहीं। उन राक्षसों के बहुत प्रकार से कहे गये दुर्वचनों को सुनते हुए भी स्थिर रहनेवाले प्राणों को रखकर चिरकाल से जीवित हूँ। (अतः) मुझसे भी अधिक (कठोर) राक्षसी और कौन हो सकती है ?

निरन्तर लोगों में प्रचारित निन्दा का वहन करती हुई, (निश्चिंत हो) मैं सो रही हूँ। मेरी कुलीनता और लज्जाशीलता भी कैसी है ? उन नारियों में जिनका पातिव्रत्य कहानियों में प्रसिद्ध है, मेरे अतिरिक्त और कौन ऐसी है, जो गृहस्थ-जीवन के योग्य पति से वियुक्त होकर जीवित रही हो ?

'परगृह में गई हुई नारी को स्वीकार करना उचित नहीं है'—यह सोचकर मेरे प्राणनायक ने मुझे छोड़ दिया है। उधर वे दूसरों की निंदा का पात्र बने हैं, इधर मैं धर्म-रहित कार्य करती, व्यर्थ समय व्यतीत करती, कौन-सी भलाई की प्रतीक्षा करती हुई जीवित रह रही हूँ ?

जिस समय मैं इस घोर निंदा का पात्र बनी, उसी समय प्राण छोड़ देना मेरे लिए उचित था। (किन्तु) संसार के लोगों के उपमा-सहित बड़े अपयश-पूर्ण वचन कहने पर भी, अपनी महिमा खोकर, मेरा जीवित रहना क्या स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है ?

(मेरे प्रति) प्रेम-रहित वे पुरुष (अर्थात्, राम और लक्ष्मण) भले ही अपनिंदा का वहन करें, (किन्तु) गगन-समान उन्नत, विपदा से अपरिचित, महान् यशस्वी बंश में उत्पन्न हुई मैं जिस निंदा का पात्र बनी हूँ, उसे मिटानेवाला मेरे अतिरिक्त और कौन है (अर्थात्, अपनी अपनिंदा को मुझे स्वयं ही दूर करना है) ?

मायामृग के पीछे (मैंने) अपने स्वामी को भेज दिया। फिर, अपने देवर

को भी कठोर वचन कहकर उनके पीछे भेजा। ऐसा करके मैं विष-समान (रावण) के गृह में आ पहुँची हूँ। अब संसार के लोग मेरा जीवित रहना भी क्या पसन्द करेंगे?

वे बलवान् वीर (राम-लक्ष्मण) अपना अपयश मिटाने के लिए भले ही (राक्षसों के साथ युद्ध करके) उन्हें युद्ध में जीत लें या युद्ध में मृत्यु प्राप्त करें। मैं गृहस्थ-धर्म से भ्रष्ट होकर इस प्रकार जब जीवित हूँ, तब मुझे प्राप्त होनेवाला अपवाद क्या उन्हें न लगेगा?

अपने सम्मान पर आघात लगने पर उत्तम तपस्या-संपन्न नारियाँ कबरी-मृग के समान अपने प्राण छोड़ देती हैं। वैसी नारियों के सम्मुख मैं किस प्रकार मूढ बनकर, यह अपवाद धारण करती हुई, जीवित रहूँ कि वह (सीता) अनुपम कालमेघ-सदृश (राम) से बिछुड़कर मायावी राक्षसों के गृह में (जीवित) रही।

वे अद्भुतगुणविशिष्ट (रामचन्द्र) अपने धनुष से राक्षसों को निमूल करके जब मुझे इस कठिन कारागार से मुक्त करेंगे, तब यदि वे कह दें कि तुम मेरे गृह में आने योग्य नहीं हो, तो मैं अपने इस दृढ पातिव्रत्य को किस प्रकार से प्रमाणित कर सकूँगी?

अतः, प्राणत्याग करना ही मेरा धर्म है। मुझे मरने से रोकनेवाली राक्षसियाँ भी मेरे तप के प्रभाव से, (अब) सोई पड़ी हैं। इससे अधिक उपयुक्त समय (मरने के लिए) नहीं मिलेगा—यों सोचकर पुष्पों के भार से हिलनेवाले माधवी-वृक्ष के निकट (सीता) जा पहुँचीं।

हनुमान् ने यह देखा। उन (सीता) के विचार को भी ताड़ लिया। उन देवी की देह का स्पर्श करने से संकोच करता रहा। फिर, यह कहता हुआ कि 'मैं देवी के प्रभु (श्रीराम) के द्वारा भेजा हुआ दूत हूँ', उन बिंबसम अधरों और मयूर-सदृश आकार-वाली (सीता) देवी को प्रणाम करता हुआ उनके सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

हे देवी! यह दास राम की आज्ञा से (यहाँ) आया है, असंख्य वानर समस्त लोकों को छानकर तुम्हारा अन्वेषण करने के उद्देश्य से (यत्र-तत्र) गये हैं। उनमें से मैं ही अपनी तपस्या के प्रभाव से, यहाँ आकर तुम्हारे अरुण चरणों के दर्शन प्राप्त कर सका हूँ।

तुम्हारे वियोग में दुःखी वे वीर यह नहीं जानते कि तुम यहाँ हो। इसके लिए प्रमाण देने की क्या आवश्यकता है? इसके लिए यही प्रमाण है कि राक्षस लोग अभी तक समूल विध्वस्त नहीं हुए हैं।

हे तैल से समृद्ध दीप-समान (कांति-विशिष्ट) देवी! (मेरे बारे में) संदेह न करो। (मेरे पास, तुम्हारे संदेह को दूर करनेवाला) अभिज्ञान भी है। इसके अतिरि आर्य (राम) के कहे हुए सत्य के परिचायक कुछ वचन भी हैं। तुम हथेली पर रखे आँवले के समान ही (मेरी सचाई को) पहचान सकती हो। अन्यथा न सोचो—इस प्रकार (हनुमान्) ने कहा।

यों कहकर वह (हनुमान्) प्रणत हो खड़ा रहा। सीता देवी उसे देखकर, करुणा तथा कोप—दोनों भावों से भर गईं और सोचने लगीं—यह (मेरे सम्मुख) उपस्थित व्यक्ति

राक्षस नहीं है। सन्मार्ग पर स्थिर रहकर पंचेंद्रियों को जीतनेवाला है। मुनि न हो, तो कोई देवता है। (क्योंकि) इसके वचन अच्छे ज्ञान का परिचय देते हैं। यह कोई पवित्र स्वभाववाला और पापरहित क्रियावाला है।

यह भले ही कोई राक्षस हो, या कोई देवता ही हो, या नहीं तो वानरों का नायक ही हो, स्वयं पाप ही हो, अथवा करुणा ही हो, (चाहे कोई भी हो), यहाँ आकर इसने मेरे स्वामी का नाम लेकर मेरी बुद्धि को द्रवित कर दिया है और मेरे प्राणों की रक्षा की है। इससे बढ़कर और क्या उपकार हो सकता है?

यों सोचकर, (सीता ने) हनुमान् की ओर निहारा और सोचा—मेरे मन में (इसके प्रति) करुणा का भाव उत्पन्न हो रहा है। इसके वचन मन में कपट रखनेवाले छली राक्षसों के जैसे नहीं हैं। भाव-पूर्ण वचनों को कहकर आँखों से अश्रुधारा को धरती पर गिराता हुआ रो रहा है। (अतः) यह पूछने के योग्य ही है। यों विचारकर सीता देवी ने हनुमान् से पूछा—हे वीर! तुम कौन हो?

(हनुमान् ने) उन देवी के मधुर वचनों को सिर नवाकर ग्रहण किया और निवेदन किया—हे माता, तुमसे वियुक्त होने के पश्चात् उन पवित्र गुणवाले (राम) ने अनादि उष्णकिरणों के धनी (सूर्य) के पुत्र, वानरों के स्वामी तथा दोष-रहित सुग्रीव नामक वानर को अपना मित्र बनाया।

उसका ज्येष्ठ भ्राता (वाली) ऐसा बलवान् था कि वह रावण के समस्त बल को विनष्ट करके, अपनी पूँछ से उसे बाँधकर, आठों दिशाओं में उड़ा था। वह ऐसे भुजबल से युक्त था कि उसने देवों की प्रार्थना सुनकर क्षीरसागर को मंदर-पर्वत से मथ डाला था[1], जिससे उस पर्वत में लपेटे गये वासुकि की देह घिस गई थी।

उस (पराक्रमी) वाली को तुम्हारे प्रभु (राम) ने एक ही शर से मार डाला और उसके अनुज (सुग्रीव) को राज्य देकर उसके साथ मित्रता कर ली। श्वान के समान उनकी दासता करनेवाला मैं राजा सुग्रीव का मंत्री हूँ। गगन में संचरण करनेवाले महान् वायु का पुत्र हूँ। (मेरा) नाम हनुमान् है।

५६० पद्म संख्यावाले वानर, जो समस्त लोकों को एक साथ ही अपने हाथ से उठा सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक समुद्र को लाँघ सकता है और गगन से भी ऊँचा है, तुम्हारे नायक (रामचन्द्र) के विचार को इंगित से ही समझकर, उन्हें सुचारु रूप से पूरा करने के लिए सन्नद्ध होकर एकत्र हैं।

(वे सब वानर) प्रवाल-लताओं से पूर्ण सप्त समुद्रों में, उनसे आवृत सप्त द्वीपों में, इस धरती में, इसके नीचे स्थित नागलोक में, ऊपर के (स्वर्ग) लोक में—समस्त ब्रह्मांड में तुम्हारा अन्वेषण करके और यदि तुम्हें यहाँ कहीं नहीं देख पायें, तो इस ब्रह्मांड से परे भी जाकर खोजने के उद्देश्य से, (लौट आने की) एक अवधि निश्चित करके गये हैं।

---

१. कंबन ने किसी पुराण से यह वृत्तांत लिया है कि क्षीरसागर को देव और असुर मथ नहीं सके। उनकी प्रार्थना सुनकर वाली ने अकेले ही उसे मथ डाला।—अनु०

नीच कुलवाले राक्षस जब तुम्हें ले गया था, तब तुमने जिन आभरणों को वस्त्र में बाँधकर पर्वत पर बैठे हुए हम वानरों के निकट डाला था, उन्हें मैंने उन विजयी (राम) को दिया। तो, मुझ दास को एकांत में बुलाकर, उन्होंने कुछ वचन कहे और मुझे दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। क्या उनकी करुणा व्यर्थ जायगी ?

हे माता ! विजयी (राम) को उस दिन, जब मैंने तुम्हारे आभरणों को दिखलाया था, तब उनकी जो दशा हुई, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? उनके प्राण यदि अभी तक रुके हुए हैं, तो उसका कारण (तुम्हारे आभरणों के दर्शन के अतिरिक्त) और क्या हो सकता है ? उस दिन तुमने जिन आभरणों को उतारकर फेंक दिया था, उन्होंने ही तुम्हारे मंगलसूत्र को (सौभाग्य को) आजतक बचा रखा है।

उन राम का यह वृत्तांत है, (अब अपना वृत्तांत सुनाता हूँ)—वाली-पुत्र अंगद (सुग्रीव) की आज्ञा से सोलह समुद्र[1] संख्यावाली वानर-सेना को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला। समुद्र के किनारे उमड़कर आनेवाली वह सेना रुकी, तो अंगद ने मुझे समुद्र से आवृत इस पुरातन लंका को भेजा—यों निंदनीय गुणों से रहित हनुमान् ने कहा।

(दूत के रूप में) आये हुए उस (हनुमान्) के यों कहने पर सीता उमंग से भर गईं। विरह से तप्त तथा कृश उनका शरीर (आनन्द से) फूल उठा। 'मेरे पुण्यजीवन का समय आ गया है', यह कहकर नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हुई (हनुमान् से) यह प्रश्न किया—'हे महान् ! कहो, श्रीरामचन्द्र के अंग-लक्षण (पहचान) क्या हैं ?'

डमरु-सदृश कटिवाली हे देवी ! (उन राम के) रूप का, उपमानों के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। (क्योंकि अपने स्वाभाविक धर्म से) परिपूर्ण सब उपमान उनके सामने अपने उपमानत्व को खो देते हैं। अतः, मैं जो पहचान कहनेवाला हूँ, उसी से तुम अनुमान कर लो—यों कहकर हनुमान् ने चरण से सिर तक (राम के शरीर का) वर्णन किया :

महान् विद्वानों ने चरणों के उपमान अरुण-दलवाले कमल कहे हैं। यदि स्वामी के चरणों से उस कमल की उपमा करने लगें, तो उन चरणों के सामने उन कमलों से बढ़कर क्षुद्र वस्तु और कुछ नहीं होगा। तरंग-पूर्ण समुद्र में उत्पन्न होनेवाला प्रवाल भी उन चरणों की कांति के सम्मुख नीलोत्पल के जैसे (काले) पड़ जाते हैं।

हे आभरणों से भूषित देवी ! दलों से शोभित कल्पक सुमनों तथा शीतल समुद्र-जल में उत्पन्न होनेवाली प्रवाल-लताओं को रहने दो। उनसे क्या प्रयोजन है ? उदित होनेवाले सूर्य की किरणें, कदाचित् उज्ज्वल कांतियुक्त (राम के चरणों की) अंगुलियों के उपमान बनें, तो बन सकती हैं।

छोटे और बड़े विविध आकारोंवाले कलंकहीन दस चंद्रमंडल (कहीं भी) नहीं हैं। छिटकती किरणोंवाला हीरा वर्त्तुलाकार नहीं होता। अतः, (रामचन्द्र के) नखों के उपमान बनने योग्य वस्तुओं को मैं नहीं जानता।

(वन-गमन के पूर्व) धरती का कभी स्पर्श न करनेवाले उनके चरण वन में

---

१. समुद्र—चार की संख्या। सोलह समुद्र—१६ × ४ = ६४।

जाकर पीड़ित होने पर भी (मृदुलता में) पुस्तक (ताल-पत्र) की समता करते हैं। समस्त भुवनों पर एक साथ (त्रिविक्रमावतार में) जा लगनेवाले उन चरणों का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ?

हे माता! उनके सुन्दर जानुओं के उपमान, समुद्र-तीर पर मिलनेवाले शंख एवं चक्र धारण करनेवाले और आदिशेष की फूली हुई शय्या पर लेटे हुए विष्णु (के जानु) ही बतावें, तो भी वह उपमान यथार्थ नहीं होगा। क्या युद्ध के बाणों को रखने के कोश (तूणीर) उनके जानुओं का उपमान हो सकता है ?

पक्षियों का राजा धर्मरूप जो (गरुड) है, सौंदर्य से पूर्ण उसके उज्ज्वल कंठ की समता करती हैं उनकी जंघाएँ(अर्थात्, वे जंघाएँ सुनहले वर्ण से शोभित हैं)। अति प्रसिद्ध बलवान् मत्त गजों की सूँड़ें भी (उन जंघाओं से) लज्जित होती हैं। ऐसी उन जंघाओं के, इस संसार में, कौन-से उपमान मिल सकते हैं ?

उनकी उस सुन्दर नाभि का, जिससे कमलपुष्प-सहित समस्त विश्व उत्पन्न हुआ था—गंगा की धारा में दक्षिण की ओर घूमनेवाला भौंर उपमान हो सकता है—यह कथन भी असत्य होगा। तो क्या वकुल-पुष्प को उसका उपमान बतावें ? (यह भी ठीक नहीं है) दूसरे उपमान अब क्या हो सकते हैं ?

मेरी कुलदेवी-समान! अनुपम छटा से युक्त कोई मरकत-पर्वत भी जिससे भीत हो जाये, इस प्रकार के विशाल तथा पुष्ट उनके वक्ष को निरंतर अभिन्न रूप से आलिंगन करने का सौभाग्य लक्ष्मी ने पाया, तो अब उस लक्ष्मी से भी अधिक भाग्यशाली और कौन है ?

उनके आजानुलंबी बाहुओं के, जिन्हें मुकुलित दलवाले कमल समझकर भ्रमर उन पर सदा मँड़राते रहते हैं, संबंध में कदाचित् इतना कहा जा सकता है कि वे पूर्वदिशा के दिग्गज के दाँतों से शोभित तथा दीर्घ सूँड़ के समान हैं।[1] और कौन उपमान उपयुक्त हो सकता है ?

उनके हाथों के नख हरे पत्तोंवाले और सूर्य के दर्शन से प्रफुल्ल रक्तकमल के कोरक के सदृश सुशोभित हैं। वे नख इस संदेह को दूर करनेवाले हैं कि इस राम ने (नर-सिंहावतार में) हिरण्यकशिपु के शरीर को अपने नखों से चीरा था या नहीं। (अर्थात्, राम के नख ऐसे लाल हैं कि मानों हिरण्यकशिपु को चीरने के कारण उनमें रक्त लगा हुआ हो)।

जो सम्यक् रूप से भरे हुए नहीं हैं, कांतिमय नहीं हैं, (जय) लक्ष्मी से युक्त नहीं हैं और जिनपर दृढ मेरु के धनुष को तोड़ने से उसकी डोरी लिपटकर नहीं पड़ी है, ऐसे पर्वतों को उनकी भुजाओं के उपमान कहना क्या उचित है ? (अर्थात्, नहीं)।

अनंत नाग पर सोये हुए (विष्णु) भगवान् के वाम कर में जब शंख है, तब (उसको छोड़कर) अन्य समुद्र-जन्य शंखों को अथवा सुपारी के नये पौधे को उनके कंठ का उपमान कहना अज्ञों का कार्य है। हम इसे कदापि नहीं मान सकते।

---

१. भुजाओं पर के अंगद (आभरण-विशेष) गज के दाँतों के समान हैं।

उन महाभाग का वदन यदि कमल बने, तो मैं (उनके) नेत्रों का क्या उपमान दूँ? धवल चंद्रमा कभी बढ़ता, कभी घटता रहता है। अतः, उनके वदन को शीतल चंद्र कहना भी उचित नहीं है।

चंदन और अगरु से लिप्त विशाल भुजाओंवाले अकलंक (राम) का मुख, जल से सिंचित, प्रफुल्ल रक्तवर्ण कमल के समान है—ऐसा कहने से स्वयं कमल लज्जित हो जाता है (क्योंकि वह राम के मुख की समता करने में असमर्थ है)। अब क्या वह प्रवाल भी यहाँ उपमान के रूप में वर्णित होने योग्य है, जो शीतल तथा अमृत बरसानेवाली मधुर वाणी भले ही न बोल सकता हो, लेकिन जिसके पास दाँतों का उज्ज्वल मंदहास भी नहीं है?

उनके दाँतों के उपमान क्या मोती हो सकते हैं? वे दाँत पूर्ण-चंद्र के टुकड़ों की पंक्तियाँ हैं या धवल अमृत की बूँदों को श्रेणी-बद्ध करके रखा गया है अथवा बहु प्रकार के धर्म के बीजों से फूटे हुए अंकुर हैं या सत्य-रूपी वृक्ष पर उत्पन्न कलियाँ हैं वा अन्य (कुंद आदि) वस्तुएँ हैं? (उपमा के लिए) मैं क्या बताऊँ?

उनकी नासिका क्या ऐसी (कम सुन्दर) है कि उत्कृष्ट स्थान पर रखे हुए इन्द्र-नील से छिटकते हुए किरण-पुंज और मरकत से निरन्तर फूटनेवाले पुंजीभूत प्रकाश—ये दोनों चाहने पर भी शायद ही उसके उपमान बन सकें? (अर्थात्, वे उपमान नहीं हैं)। वीरबहूटी को पकड़ने के लिए उसके समीप आया हुआ गिरगिट भी उनकी नासिका के उपमान नहीं हो सकता। फिर, क्या अन्य कोई उपमान मिल सकता है?

उनकी भौंहें इस प्रकार कुंचित थीं कि उन्हें देखकर दंडकारण्य में खर आदि राक्षस थरथरा उठे थे। उन राक्षसों के कबंध तथा अनेक भूतों के साथ ही राम के कर का धनुष भी नाच उठा था और यह सोचकर कि अब राक्षस-कुल मिट गया मुनि, देव, अद्वितीय धर्मदेव और चतुर्वेद आनंद से नाच उठे थे।

अष्टमी के दिन प्रकाशमान अर्धचंद्र, यदि अपने उदयकाल से ही दीखनेवाले अपने कलंक को कभी बढ़ने और कभी घटने की अपनी प्रकृति को, करवाल-सम कठोर सर्प (राहु) से ग्रस्त होने की विपदा को तथा अस्त और उदय होने के अपने गुण को छोड़ सके तथा चंचल अंधकार के सौंदर्य की छाया में चिरकाल तक स्थिर रह सके, तो वह उनके ललाट के सौंदर्य को प्राप्त कर सकेगा।

दीर्घ सघन, चमकते हुए, अंधकार-सदृश, स्वभाव से ही अत्यन्त काले सँवारे हुए, घुँघराले, (पीछे की ओर) गिरे हुए तथा अगरु, पुष्प आदि के विना ही अलौकिक सुरभि से युक्त, उनके मनोहर केश अब घनी जटा बन गये हैं, अतः अब मेघ को उनका उपमान कहना अनुचित ही है।

उनकी गति ऐसी है कि वह, जब लक्ष्मी तथा भूमि उनको अपना आश्रय बनाना चाहती थीं और सप्त द्वीपों की संपत्ति स्वयं प्राप्त होने को थी एवं जब उस संपत्ति से रहित होकर दुःखप्रद वन में आकर रहना पड़ा था—दोनों अवस्थाओं में अपने सहज गुण को न छोड़नेवाली है। यदि यह कहें कि वह गति क्षुद्र बलिष्ठ वृषभ में है, तो मत्त गज दुःखी होगा

(हनुमान् के) इस प्रकार के वचन सुनकर, अग्नि में डाले गये मोम के सदृश सीता देवी द्रवित हो गईं। तब, ज्ञानी हनुमान् ने धरती पर झुककर दंडवत किया और यह कहकर कि मेरे स्वामी के बताये गये कुछ अभिज्ञान भी हैं और वैसे कुछ पहचान के वृत्तान्त भी हैं—हे मयूर तथा हंस-समान देवी ! उन्हें सुनो। वह आगे कहने लगा—

राम ने मुझसे कहा—अरण्य का मार्ग दुर्गम है। मैं कुछ ही दिनों के लिए वन को जा रहा हूँ। माताओं की योग्य सेवा करती हुई तुम यहीं रहो। यों जब मैंने (राम ने) तुमसे कहा था, उसपर तुम अपने पहने हुए वस्त्रमात्र के साथ, निष्प्राण-सी बनी देह के साथ तथा क्रोध-सहित मेरे समीप आ खड़ी हुई थी—यह वृत्तान्त तुम सीता से कहना।

दीर्घ मुकुटधारी चक्रवर्त्ती की आज्ञा मानकर समस्त संपत्ति को पहले स्वीकार करके (फिर) उसे त्यागकर जब (मैं वन जाने के लिए) निकल पड़ा था, तब नगर के प्राचीर के द्वार को पार करने के पहले ही उस (सीता) ने मुझसे प्रश्न किया था—(कहो) नगर[1] कहाँ है ?—यह विषय भी तुम उस (सीता) से कहना।

वन-गमन के समय भोले स्वभाववाली सीता ने सुमंत्र को जो संदेश दिये थे, सीता को उसकी याद दिलाकर कहना—'हे सारथि सुमंत्र ! दोष-रहित (उर्मिला आदि से) कहना कि रामचन्द्र के प्रिय वचनों से मैं अपने मन की वेदनाओं को भूल गई हूँ। यह कहकर मेरे प्यारे शुक-सारिकाओं को पालने का ठीक ढंग भी उन्हें बताना।

अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। 'यह (मुंदरी) सीता को देना, जिसपर मेरा नाम अंकित है'—यों कहकर (रामचन्द्र ने) इसे दिया। यह वचन कहकर हनुमान् ने अपने दीर्घ करों में एक अनुपम मुद्रिका को दिखाया। उसे उज्ज्वल ललाटवाली (सीता) ने देखा।

(उस अँगूठी को देखकर) मनोहर ललाटवाली (सीता देवी) को जो आनन्द हुआ, उसका मैं कैसे बखान करूँ ? (बिना कोई सत्कर्म किये ही) कोई व्यक्ति मरकर जन्म-फल (मोक्ष-पुरुषार्थ) को प्राप्त कर ले, (अलभ्य ज्ञान को) खोकर, पुनः कोई इसे प्राप्त कर ले या शरीर से निकले हुए प्राण फिर उसी शरीर में लौट आयें —क्या इनसे उत्पन्न आनन्द के साथ सीता के उस आनन्द की तुलना करें ? उस देवी के आनन्द के स्वरूप को हम कैसे पहचान सकते हैं ?

खोये हुए अपने माणिक्य को पुनः प्राप्त करनेवाले बाँबी में रहनेवाले सर्प के समान, खोई हुई प्राचीन संपत्ति को पुनः पानेवाले व्यक्ति के समान, चिरकाल से वंध्या रहकर संतान प्राप्त करनेवाली किसी नारी के समान तथा नेत्रहीनता के कारण दुःखी रहकर फिर नेत्र पानेवाले के समान, सीता आनन्द से अभिभूत हो गई।

(देवी ने) उस मुद्रिका को (अपने हाथ में) लिया, हृदय पर रखा, अपने पंकज-नेत्रों पर रखा, उनकी भुजाएँ (आनन्द से) फूल उठीं। उनका मन शीतल हुआ।

---

१. सीता के प्रश्न का यह भाव है कि राम के साथ रहने पर सीता के लिए अरण्य भी नगर ही है।—अनु०

वे फिर (रामचन्द्र को न देखने से) दुबली हुईं। चिंता-ग्रस्त हो मलिन हुइ। ठंडी साँस भरने लगीं। उस समय सीता देवी की जो दशा हुई, मैं उसके संबंध में क्या कह सकता हूँ ?

वह देवी उस अँगूठी को सूँघतीं, अपने स्तन पर रखकर उसका आलिंगन करतीं, दोनों नेत्रों में उमड़नेवाले अश्रु-प्रवाह को भली भाँति पोंछकर दीर्घकाल तक उस अँगूठी को देखतीं, जिससे पुनः-पुनः उनकी आँखों में आँसू छलक उठते। (उस अँगूठी से) कुछ कहने की चेष्टा करतीं। (किन्तु) कुछ भी कह नहीं सकती थीं। जब उनका कंठ रुँध जाता, तो (कंठ से निकलनेवाले बाष्प को) निगलने लगतीं।

दीर्घ नयनों एवं सुनिर्मित आभरणों से सुशोभित उन देवी का विद्युत्-सदृश सारा शरीर (उस अँगूठी की कांति से) स्वर्ण के रंग से चमक उठा। क्या सचमुच, पौरुषवान् रामचन्द्र की अँगूठी कोई पारस-मणि है, जो अपने स्पर्शमात्र से सब वस्तुओं को बदल देने की अलौकिक शक्ति रखती है ?

वह मनोहर मुद्रिका, भूख से पीडित व्यक्ति को प्राप्त सुभोज्य वस्तु की समता करती थी। गृहस्थ-धर्म का ठीक-ठीक पालन करनेवाले के यहाँ आगत अतिथि की भी समता करती थी। मरणासन्न प्राणों को जीवित रखनेवाली किसी ओषधि की भी समता करती थी। उस दिव्य मुद्रिका की जय हो !

इस प्रकार की दशा को प्राप्त होकर, आनंदितप्राण होकर, मुक्तासम दाँतोंवाली सीता (कुछ) कहने लगीं, तो उनके नयनों से अश्रुबिंदु स्तनों पर गिरकर बह चले। उनका कंठ गद्गद हो गया। फिर, उन्होंने कहा—हे उत्तम ! (मुझे) तुमने प्राण ला दिये।

सीता ने (हनुमान् से) कहा—तीनों लोकों की सृष्टि करनेवाले, आदि ब्रह्मा के भी कारणभूत जो भगवान् हैं (अर्थात्, उस परमात्मा के अवतारभूत रामचन्द्र हैं), उनके दूत बनकर तुमने मेरे प्राणों को ही प्रदान किया है। मैं इसके बदले में तुम्हें कौन-सी वस्तु दे सकती हूँ ? तुम, मेरी माता हो, पिता हो तथा देवता हो। करुणा के आगार हो। तुमने मुझे इहलोक का आनन्द, परलोक का फल तथा यश प्रदान किये हैं।

बलिष्ठ और पुष्ट कंधोंवाले ! तुम वदान्य (दाता तथा उपकारी) हो। मुझ निस्सहाय विपद्ग्रस्त का विपदा से उद्धार हुआ। तुम जीते रहो ! यदि मेरा मन कलंक-रहित है, तो तुम ब्रह्मदेव की आयु-पर्यंत—जिसमें अनेक युगों का एक दिन होता है—प्रलयों के काल में चतुर्दश लोकों के विध्वस्त हो जाने पर भी, आज जैसे हो, वैसे ही बने रहोगे।

पुनः सीता देवी ने पूछा—हे सद्गुणों से पूर्ण ! वह वीर (राम) अपने अनुज के साथ कहाँ रहते हैं ? तुम्हारा उनके साथ कहाँ परिचय हुआ ? पराक्रमी (रामचन्द्र) को मेरा समाचार किससे मिला ? प्रश्न सुनकर स्तंभ-सदृश भुजावाला हनुमान् सारा वृत्तान्त कहने लगा।

राक्षस (रावण) के कहने से, मेघ जैसे काले मायावी मारीच नामक राक्षस

अपनी भयानक माया के प्रभाव से, एक सुन्दर हरिण का रूप धरकर (पंचवटी में) आया। (यज्ञोपवीत के) सूत्र से शोभित वक्षवाले देव (राम) ने जब उसपर तीर मारा, तब गिरते हुए उस (मारीच ने ऐसा शब्द किया कि उसे सुनकर तुम भ्रम में पड़ गई।

(मारीच की) वह ध्वनि सुनकर, अनुज (लक्ष्मण) भ्रांति में न पड़ जाय, यह सोचकर प्रभु (राम) ने तुरन्त ही अपने धनुष का टंकार किया। फिर भी, विधि का विधान ही सत्य प्रमाणित हुआ। (मारीच की) झूठी ध्वनि कहीं सत्य न प्रतीत हो जाय और उससे कहीं कुछ दुष्परिणाम न निकले—यह सोचकर शीघ्रगति से लौटनेवाले दृढ कोदंडधारी (राम) ने अपने अनुज को (सामने) आते हुए देखा।

(लक्ष्मण को) देखते ही (रामचन्द्र ने) उसकी मुखाकृति से ही उसके भाव को समझ लिया। फिर, उस पुंडरीकाक्ष (राम) ने सारा वृत्तांत सुना। वे भ्रमरों से गुंजित पर्णशाला में शीघ्रता से आये। वे वहाँ तुम्हारे भव्य रूप को न देखकर क्लान्त होकर मूर्च्छित हो गये, जिससे यह सन्देह होने लगा कि उनके शरीर में प्राण हैं या नहीं। ऐसी दारुण व्यथा का अनुभव करने के लिए क्या दूसरा कोई कारण हो सकता था?

(तुम्हें) खोजता हुआ मैं आया और तुम्हारा साक्षात् कर सका हूँ। तुम्हारी जय हो। मेरे प्रभु (राम) विना किसी अमंगल के (अर्थात्, सकुशल) हैं। उनके यथार्थ प्राण तुम्हीं हो। अब तुम्हारे बिछुड़ जाने से वे झूठे प्राणों के साथ जीवित-से रहते हैं। उन प्रतापी (राम) के मन से तुम कभी पृथक् नहीं होती हो। फिर, उन (राम) का अंत कैसे हो सकता है? तुम (जो उनके प्राण-स्वरूप हो) यहाँ हो और श्रीरामचन्द्र वहाँ हैं। (अतः) वे प्राण छोड़ें भी, तो किन प्राणों को?

हे माता! प्रभु इस दशा में उस (पंचवटी की) पर्णशाला से निकलकर घने वनों, नदियों और पर्वतों में प्राणों के विना ही चलनेवाली यंत्रमय मूर्त्ति के सदृश तुम्हारी खोज में चलते रहे और उस जटायु के निकट पहुँचे, जिसने यश के लिए अपने प्राण भी त्याग दिये थे।

हे सुन्दरी! (रामचन्द्र) वहाँ आये और (रावण से आहत) जटायु को देखकर बहुत दुःखित होकर पूछा—'हे पिता! तुम्हारी यह दशा क्यों हुई?' उत्तर में जटायु ने यह समाचार दिया कि लंका के अधिपति ने किस प्रकार धोखा दिया। यह वृत्तांत सुनते समय ही रामचन्द्र की क्रोधाग्नि इस प्रकार भड़क उठी कि ऐसी आशंका होने लगी कि कहीं सब लोक ही न झुलस जायें।

(रामचन्द्र ने) क्षुब्ध होकर यह कहते हुए कि, 'तीनों लोकों को तीक्ष्ण अनी से युक्त इस शर से जलाकर भस्म कर दूँगा', अपने कर में स्थित कोदंड की ओर दृष्टि डाली, तब उस पितृसदृश जटायु ने उन्हें देखकर कहा—'किसी अधम ने तुम्हें दुःख दिया है, तो क्या तुम उसके लिए तीनों लोकों का विनाश करोगे? (यह उचित नहीं है, अतः) तुम अपना मन बदलो।' यों कहकर (राम के) क्रोध को शांत किया।

तब राम ने प्रश्न किया—'हे सद्गुण-पूर्ण! (वह रावण) किस दिशा में गया? वह किस लोक में है? उसका निवास कहाँ है? बताओ।' इसके उत्तर में

जटायु कुछ कहने ही वाला था कि निष्ठुर विधि के प्रभाव से वह (जटायु) निष्प्राण हो गिरा। दृढ धनुर्धारी दोनों वीर (राम-लक्ष्मण) तब दुःख में डूब गये।

दुःखित होकर, फिर उस दुःख से किंचित् उपशांति पाकर, उन्होंने पौरुषवान् तथा पितृ-समान उस (जटायु) की अन्तिम क्रिया इस प्रकार की कि देव भी विस्मय में पड़ गये। फिर, यह विचार कर कि नीच कृत्यवाले राक्षस (रावण) को हम खोजकर उसे पहचानेंगे, मेघ को छूनेवाले पर्वतों तथा अरण्यों को पारकर आगे चले।

उन सभी स्थानों में तुम्हें न पाने से वे दोनों वीर दुःखी हुए। तब रामचन्द्र के लालिमायुक्त नयनों ने विशाल मार्ग को (अपने अश्रु-प्रवाह से) पंकिल बना दिया। उनका शरीर आग में गिरे मोम के समान गलने लगा। वे भ्रांतचित्त होकर इस प्रकार के वचन कहकर विलाप करने लगे।

इस संसार के निवासियों में कौन ऐसा है, जो कर्म (फल) को टाल सकता है? लक्ष्मी के निवासभूत कंधोंवाले (श्रीरामचन्द्र) बुद्धिभ्रांत हुए। उनकी सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। अपनी सुध खोकर धतूरे के फूल को (अपनी जटा के) सर्पों के बीच धारण करने-वाले शिव के जैसे उन्मत्त हो गये।''[1]

कालमेघ-सदृश (राम) गोदावरी को देख क्षुब्ध हुए और उससे यों कहने लगे—'प्रतिदिन सूर्योदय के समय, प्रवाल-लता के समान वह (सीता) तुम्हारे शीतल जल में स्नान करती थी—यह बात भी क्या झूठ है? उस (सीता) को तुम्हीं खोजकर ला दो। नहीं तो, (मेरे शर से) तुम आग बनकर सूख जाओगी।

(राम) पर्वत से कहने लगे—हे पर्वत! तुम शीघ्र ही दौड़कर आओ और सुन्दर पुष्पलता के समान मेरी देवी को दिखाओ। यदि नहीं दिखाओगे तो, तुम्हारे कुल के सभी पर्वतों को इसी समय तोड़ने, जलाने तथा भस्म करने के लिए मेरा यह एक बाण पर्याप्त है।

यह सोचकर कि स्वर्ण-हरिण के रूप में माया करने के कारण ही तो मेरी हरिणी (सीता) अब मुझसे बिछुड़ गई है, इसलिए मनोहर हरिणों को देखकर क्रोध से यह कहने लगे—धनुष से निकलकर मारने में समर्थ अपने इस शर से तुम्हारे नाम को भी मिटा दूँगा।

जब वे (राम) विश्रांतमन हो ऐसी दशा में थे, तब उनके अनुज के शांत चित्त से कहे हुए सद्वचन-रूपी दोषहीन औषध से उनका मन कुछ शांत हुआ। उसके पश्चात् का वृत्तांत हनुमान् ने इस प्रकार सुनाया—

उसके पश्चात् अपने अनुज के साथ वे चंदन-वृक्षों से भरे उस बड़े पर्वत पर आ पहुँचे, जहाँ मेरे कुल के नायक (सुग्रीव) रहते हैं, जो आकाश में श्रेष्ठ रथ पर चलने-वाले अमन्ददीप (सूर्य) से उत्पन्न हुए हैं। रक्तकमल-सदृश नेत्रोंवाले (राम) और उनके प्राण-समान प्रिय (सुग्रीव)—दोनों मित्र बन गये, जिससे देवता निस्तार पायें।

---

१. यह पद्य, दक्ष के यज्ञ में भवानी के भस्म होने का समाचार पाकर शिव की जो दशा हुई थी, उस ओर संकेत करता है।—अनु०

उत्तम वेदों से तथा ज्ञान से भी अज्ञेय वे (राम); अपने कष्टों तथा विपदाओं को सुनाकर मन में आहत-से होकर पीडित हुए। तब हमने तुम्हारे आभरणों को लाकर उन्हें दिखाया। उन्हें देखकर वे मूर्च्छित हो गिर पड़े।

उनके मन को स्वस्थ करने के लिए हमने जो वचन कहे वे उनके कानों में पहुँचे। तब अपनी चेतना पाकर उज्ज्वल शूलवान् उन (राम) ने तुम पवित्र स्वरूपवाली के आभरणों को देखा। तब उनके शरीर में ऐसी पीडा उत्पन्न हुई, जो अमृत छिड़कने पर भी शांत नहीं हो सकती थी, उनकी वह चिरकालिक पीडा अनिवार्य है।

यों व्याकुल हो, फिर किसी-न-किसी प्रकार स्वस्थ होकर, उन (राम) ने, उसके प्राणों को, जो वाली के नाम से उस ऋष्यमूक पर्वत के परे एक ऊँचे स्वर्ण-पर्वत पर रहता था, जो पर्वतसदृश आकारवाला था, जिसने प्राचीन काल में कभी रावण को अपनी पूँछ में बाँधकर भयंकर उन्नत पर्वतों और विशाल समुद्रों को लाँघ गया था, एक शर से हरण कर लिया। उसके बाद प्रीतिपूर्ण परिशुद्ध गुणवाले सुग्रीव को (किष्किंधा का) राज्य सौंपा। फिर, सुग्रीव से यह कहकर कि 'तुम अपनी विशाल सेना के साथ (वर्षाकाल के उपरान्त) आओ'—भेज दिया। फिर उसके लौटने तक चार मास वहीं व्यतीत किये।

हे धनुष-समान ललाटवाली, लक्ष्मी! उसके पश्चात्, आई हुई सेनाओं को (तुम्हारे अन्वेषण के लिए) इस प्रकार भेजा कि विशाल दिशाएँ भी (उन वानर-सेनाओं की गति से) पीछे रह गईं। मुझे (उन्होंने) दक्षिण की ओर भेजा। यही मेरे यहाँ आने का वृत्तांत है।—इस प्रकार पूर्व-घटनाओं को त्रिकालज्ञ (हनुमान्) ने कह सुनाया।

प्यारे (हनुमान्) के ये वचन कहने पर, अत्यन्त दृढ चित्तवाले आर्य (राम) की पीडा के विषय में सोचकर सीता का मन दुःख तथा आनन्द से भर गया। उनकी अस्थियाँ पिघल उठीं। उनका मन पिघल उठा और वे दीनता का अनुभव करने लगीं।

सीताजी का शरीर अश्रु-प्रवाह से उत्पन्न भयंकर आवर्त्त में पड़कर चक्कर खाने लगा। द्रवित मन के साथ उन्होंने हनुमान् से प्रश्न किया—तुम अपार सागर को पार करके किस प्रकार यहाँ आये?

उस हनुमान् ने उत्तर दिया—हे सूक्ष्म कटिवाली देवि! तुम्हारे नायक के पवित्र चरणों का ध्यान करनेवाले ज्ञानी पुरुष, जिस प्रकार अविनाशी माया-समुद्र को लाँघ जाते हैं, उसी प्रकार मैं इस काले समुद्र को लाँघकर आया हूँ।

मुक्ता और चंद्रिका से भी जिन (दाँतों) की कांति अधिक उज्ज्वल है, ऐसे दाँतोंवाली देवी ने फिर प्रश्न किया—तुम्हारा यह शरीर अति विस्मयजनक रूप में छोटा है। ऐसे तुम समुद्र पारकर आये हो, तो क्या यह तपोबल से हुआ है? या किसी मंत्र की सिद्धि के प्रभाव से?

हनुमान् अपने उसी विराट् रूप को लेकर देवी के सम्मुख खड़ा हो गया, जिस (रूप) से उसने समुद्र पार किया था। वह कर जोड़े, कंधों को बाहर की ओर फैलाये और ऊँचा किये, दूसरों के लिए अस्पृश्य आकाश की ऊँचाई को छूते हुए तथा अपने

शरीर को मानों इस डर से झुकाये हुए कि उसे सीधा करने से कहीं वह आकाश से टकरा न जाये, खड़ा रहा।

उसका वह रूप इतना विशाल था कि (उसे देखकर) ऐसा संदेह उत्पन्न होता था कि महत्त्व (या विभुत्व) नामक गुण, उन पंचमहाभूतों में वर्त्तमान है, जो अति निष्ठुर होते हैं। अथवा यदि उनमें वह गुण नहीं हैं, तो क्या वह हनुमान् में ही विद्यमान है? वह विभुत्व किसमें है?[1]

अपना उपमान स्वयं ही बनकर ऊँचा उठा हुआ जो स्वर्ण-पर्वत (मेरु) है, उस पर के घने वृक्षों में मानों जुगनुओं के समूह, मँड़रा रहे हों, ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए नक्षत्र, उस (हनुमान्) के आगे और पीछे रोंगटों में लटक गये।

दृष्टि और ज्ञान के पथ से भी परे पहुँचे हुए रूपवाले उस (हनुमान्) के दोनों ओर चमकते हुए कुंडल, नवग्रहों में श्रेष्ठ दोनों ज्योतिष्पिंडों (सूर्य और चन्द्रमा) की स्पर्धा करने लगे।

उस हनुमान् को, जो इतना दृढ और विराट् रूप लिये खड़ा था कि कोई यह नहीं सोच सकता था कि यह एक दुर्बल मर्कट है, भली भाँति देखने पर समस्त लोकों को नापनेवाले भगवान् त्रिविक्रम भी यह विचार कर लज्जित हो जायगा कि विभुत्व और गुरुत्व सारा एक ही में नहीं रहते। (अर्थात्, विष्णु यह सोंचेंगे कि विभुत्व और गुरुत्व केवल मुझमें ही नहीं हैं। मेरे अतिरिक्त इस हनुमान् में भी वे गुण वर्त्तमान हैं।)

आठों दिशाओं में तथा समस्त लोकों में रहनेवाले सब प्राणी उस (हनुमान्) को देख रहे थे और वह (हनुमान्) अपने कमल-समान नयनों से ऊपर लोकों में रहनेवाले सब देवों को देख रहा था।

ऊँचे बढ़े हुए अति विराट् रूप हनुमान् ने अपने दोनों पैरों को धरती पर दबाया तो लंका में समुद्र उमड़ आया। सफेद तरंगें वहाँ फैल गईं, मीन-समूह लोटने लगे।

लता-सदृश कटि और अकलंक पातिव्रत्यवाली सीता, (हनुमान् के) रक्तकमल-सदृश चरणों को भी नहीं देख पाती थी। वह यह सोचकर आनंदित हुई कि अब सब राक्षस मिट गये। उसने हनुमान् से यह प्रार्थना की कि (तुम्हारे) इस रूप को देख मुझे भय हो रहा है। अतः, तुम अपने रूप को छोटा कर लो।

सीता को ऐसा आनंद हुआ, मानों वह स्तंभ से भी अधिक पुष्ट रामचन्द्र की भुजाओं का ही आलिंगन कर रही हो। उसने हनुमान् से कहा—संसार में ऐसे प्राणी नहीं हैं, जो तुम्हारे इस आकार को पूर्णतः देख सकें। अतः, अब तुम अपने इस विराट् रूप को छोटा कर लो।

गगन-पथ को भी पारकर ऊपर उठनेवाले पौरुषवान् (हनुमान्) ने यह कहकर कि 'देवी की जो आज्ञा', अपने विराट् रूप को छोटा कर लिया और ऐसा रूप धारण कर खड़ा हो गया, जो दृष्टि में आ सकता था। तब सीता देवी, जो ऐसे दीप के समान थी, जिसकी (बत्ती) को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती (अर्थात्, सदा एकरस प्रकाश देनेवाले दीप के सदृश थी) ये वचन कहने लगीं—

---

१. भाव यह है कि पंचभूतों में रहनेवाला विभुत्व गुण अब हनुमान् में आ गया है।—अनु०

हे वायुसदृश वेगवान् ! इस धरती को सब पर्वतों-सहित उखाड़ना हो, स्वर्ग-लोक को उठा लेना हो अथवा इन सब लोकों का वहन करनेवाले आदिशेष को भी एक ही हाथ से पकड़कर खींच लेना हो—कोई भी कार्य (तुम्हारे बल के लिए) पर्याप्त नहीं होगा। यदि तुम यह भी कहो कि इस समुद्र पर पैदल ही चले आये, तो यह सुनकर भी लज्जा ही होगी। अतः, शीतल समुद्र को जो तुम पार कर आये हो, यह तुम्हारे लिए कौन-सा कठिन कार्य है ?

हे बलिष्ठ तथा दीर्घ भुजाओंवाले वीर ! तुम अकेले ही चक्रधारी दीर्घ बाहुवाले प्रतापी (राम) की करुणा और कीर्त्ति को अनेक कल्पों तक अविनश्वर बनाये रखने में समर्थ हो। शत्रुओं की यह लंका सप्त समुद्रों के भी पार होती, तो वह तुम्हारे बल के अनुकूल ही होता। यह इस समुद्र के बीच में ही है, यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात है। (भाव यह है कि यदि लंका सप्त समुद्रों के पार होती, तो उसे पार करने में हनुमान् के बल-विक्रम का प्रभाव भली भाँति प्रकट होता। अब क्योंकि वह निकट ही है, लंका में आने से हनुमान् का यथार्थ बल-विक्रम प्रकट नहीं हो पाया है।)

तुम्हारा ज्ञान भी इसी प्रकार का (विराट् रूप) है। आकार भी ऐसा ही है। बल ऐसा है। पंचेंद्रियों का दमन भी ऐसा ही है। क्रियमाण कार्य ऐसे ही हैं। मन की निष्कलुषता भी ऐसी ही है। उस निष्कलुषता का फल भी ऐसा ही है। विचार भी ऐसा ही है। नीति भी ऐसी ही है—अब तुम्हारे समक्ष, ब्रह्मादि उत्तम व्यक्ति गुणहीन ही तो लगते हैं।

जब मैं यह सोचती थी कि बिजली-जैसे दाँतोंवाले राक्षस अपार रूप में बढ़े हुए हैं, उधर रामचन्द्र के, अपने अनुज (लक्ष्मण) के अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं है, तब मेरा हृदय भग्न हो जाता था। अब (तुम्हें पहचान कर) मेरी आशंका दूर हो गई। मेरे प्राण स्वस्थ हो गये। जब तुम मेरे प्रभु के सहायक बने हो, तब अब राक्षस क्या करेंगे ?

अब मैं मर भी जाऊँगी, तो कोई बात नहीं। मुझे सतानेवाले राक्षसों के कुल का समूल ध्वंस होगा। मैं इस मायामय बंधन से मुक्त भी हो गई हूँ। अपने पति के सुन्दर चरणों को भी प्राप्त हो गई हूँ। अब मेरा यश ही फैलेगा, अपयश नहीं होगा—यों कहती हुई सौंदर्य एवं कांति से पूर्ण लक्ष्मी-समान वह आनन्दित हुई।

तब अति उत्तम गुणवाले (हनुमान्) ने (सीता के) चरणों को प्रणाम करके कहा—हे अरुन्धती (के सदृश देवी) ! रामचन्द्र के दास अनेक वानर-सेनापति हैं, जिनकी संख्या समुद्र के बालुका-कणों से भी अधिक है। मैं उनकी आज्ञा का पालन करने-वाला एक तुच्छ किंकर बनकर यहाँ आया हूँ।

वीर (राम) की सेना सत्तर 'वेल्लम' नामक संख्यावाली है। यदि वह सेना इस समुद्र के गहरे जल को एक-एक अंजलि में भरकर पिये, तो भी यह जल पर्याप्त नहीं होगा। वंचक राक्षसों की यह सुरक्षित लंका अबतक (हमारी) दृष्टि में नहीं पड़ी थी, अतएव यह नगरी अबतक बची है। अब हमने इसको देख लिया है, तो इसका विनाश हुए बिना कैसे रहेगा ?

वाली का अनुज सुग्रीव, उसका पुत्र अंगद एवं मैन्द, द्विविद, विजयी कुमुद, नील, ऋषभ, कुमुदाक्ष, पनस, शरभ, वृद्ध, जांबवान्, यमसदृश दुर्मर्ष, कम्प, गवय गवयाक्ष, जगत्-प्रसिद्ध सत्कार्यशील शंख, विनत, दुर्विद, नल—

स्तंभ, स्वनामधन्य धूम, दधिमुख तथा शतबली—इन नामोंवाले सेनापति, रामचंद्र के बाण के सदृश बलवान् हैं। वे इस लोक को तथा अन्य सब लोकों को उखाड़ देने की शक्ति रखते हैं। ये राक्षस, उन (वानरों) की गणना के चिह्न-रूप में रखने के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। ऐसी वानर-सेना का कोई वार-पार भी है ?[1] (१—११७)

●

अध्याय ६

चूडामणि पटल

(उस समय) हनुमान् ने विचार किया कि दुःख भोगनेवाली, सब लोकों के आदिभूत प्रभु (राम) के प्राण-समान और कमलवासिनी (लक्ष्मी) की समानता करनेवाली इस देवी को अब यहाँ से ले जाना ही मेरा कर्त्तव्य है। अहो ! क्या इस संसार में ऐसे हनुमान् का कोई उपमान मिल सकता है।

(हनुमान् ने सीता से कहा—) इस दास के वचन सुनो। क्रोध मत करो। यदि शत्रु (रावण) तुम्हें मार देगा, तो फिर उसे जीतने से भी कोई बड़ा लाभ नहीं होगा। अब अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? इसी क्षण तुम्हें रामचन्द्र के सम्मुख ले जाकर उनके चरणों पर नत होऊँगा। मेरी शक्ति भी देखो।

स्वर्णमय लता-समान देवी ! कोमल रोमों से आवृत मेरे कंधे पर तुम, दुःख-मुक्त हो, मधुर निद्रा करती हुई आसीन हो जाओ। तुम्हें लेकर मैं बीच में कहीं विश्राम किये बिना ही, क्षण-मात्र में, उस पर्वत पर कूद पड़ूँगा, जहाँ प्रभु रहते हैं।

हे घने कुंतलोंवाली ! यदि कुछ राक्षस ऐसे होंगे, जो यह जानकर (कि मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ) मेरा पीछा करते हुए आयेंगे, तो किसी से भी अवध्य मैं उनका वध करके अपने मन के क्रोध को शांत करूँगा। अब तुम्हारी यह दशा देखने के पश्चात्, उस उदार (राम) के पास रिक्तहस्त मैं नहीं लौटूँगा।

हे माता ! यदि इस लंका के साथ ही तुम जाना चाहती हो, तो मैं इस नगर को उखाड़कर अपनी एक बलिष्ठ हथेली पर रख लूँगा और बाधा बनकर आनेवाले राक्षसों को (दूसरे हाथ से) पीस करके, दृढ धनुर्धारियों (राम-लक्ष्मण) के मनोहर चरणों के निकट पहुँचकर दंडवत करूँगा। यह मेरे लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।

१, ऊपर के अंतिम नौ पद प्रक्षिप्त कहे जाते हैं।—अनु०

हे अरुन्धती (-सदृश देवी)! उन अति सुन्दर (राम) के निकट जाकर यदि मैं कहूँगा कि आपकी अमृत-सदृश देवी अत्यन्त मायावी (राक्षसों) के बंधन में पड़कर पीडा भोग रही हैं और मुक्ति का कोई मार्ग नहीं देख रही हैं, तो मेरी किंकर-वृत्ति क्या होगी? (अर्थात्, मेरी सेवा-वृत्ति व्यर्थ होगी)।

क्या मैं अक्षत भुजाओं के साथ (राम के समीप) जाकर शत्रुओं के वल का विवरण दूँ? क्या उनसे यह कहूँ कि (आपकी देवी को) साथ नहीं लाया हूँ, किन्तु अपने प्राणों को बचाकर लौट आया हूँ? या यह कहूँ कि (उन देवी के) दर्शन किये विना ही आ गया हूँ?

यदि तुम मुझे यह आज्ञा दो कि प्राचीरों से आवृत इस लंका को जलाकर पिघला दो, वली राक्षस (रावण) को मिटा दो, राक्षस-कुल का उन्मूलन कर दो और शीघ्र युद्ध समाप्त कर यहाँ से चलो, तो मैं वह सब इसी क्षण कर दूँगा।

हे चन्द्र के समान ललाटवाली! यही उचित होगा कि अब वीर (राम) तुम्हें प्राप्त कर लें और अपने मन की दारुण वेदना को दूर करके प्रशान्त होकर अनन्त राक्षस-कुल को मिटाकर संसार का दुःख दूर करें।

हे मधुरभाषिणी, बाललता-सी देवी! अब तुम्हें क्या आपत्ति है? मुझपर ऐसी कृपा करो कि मैं अपने सुकृत के फलस्वरूप ऐसा भाग्य प्राप्त करूँ (अर्थात्, तुम्हें ले जाकर रामचन्द्र से मिलाने का यश प्राप्त करूँ)। फिर, तुम दुःख से निस्तार पा सको। शीघ्र ही मेरे कंधे पर आसीन हो जाओ।—हनुमान् यों निवेदन के साथ कर जोड़कर (सीता के) चरणों में प्रणत हो खड़ा रहा।

उचित वचन कहनेवाले, अपनी माँ के सामने खड़े गाय के बछड़े-जैसे दीखनेवाले उन (हनुमान्) को देखकर सीता ने सोचा कि यह काम इसके लिए कुछ दुष्कर नहीं है। फिर, ये दोषहीन वचन कहे—

यह (काम) तुम्हारे लिए कठिन नहीं है। तुमने जो सोचा है, वह तुम्हारे पराक्रम के अनुकूल ही है। जब तुम कहते हो कि मैं अमुक कार्य करूँगा, तब उसे अवश्य पूरा भी करोगे। (फिर भी) यह कार्य ऐसा है, जिसे मैं अज्ञ और मंदबुद्धि स्त्री होने के कारण अनुचित मानती हूँ।

यदि तुम मुझे ले जाओगे, तो समुद्र के मध्य निष्ठुर राक्षस आकर तुम्हें घेर लेंगे और तुम पर तीक्ष्ण बाण छोड़ेंगे। तब तुम विष-समान उन राक्षसों के साथ युद्ध भी नहीं कर पाओगे और मेरी रक्षा भी नहीं कर सकोगे। इस प्रकार अकेले ही व्याकुल होओगे।

यही नहीं, एक और भी कारण है। आर्य (राम) का विजयी धनुष कलंकित होगा, तो इससे कौन-सी भलाई हो सकेगी? जिस प्रकार कुत्ता, पके अन्न को आँख बचाकर ले भागता है, क्या तुम भी उसी प्रकार का छल-भरा कार्य करना चाहते हो?

जबतक मेरे पति सम्मुख युद्ध में देवताओं को विस्मय-विमुग्ध करते हुए, अपनी विद्या का कौशल नहीं दिखायेंगे और मेरे शरीर को जिस (रावण) ने वासना-भरी दृष्टि

से देखा है, उसकी आँखों को जबतक कौए निकालकर न खायेंगे, तबतक क्या मुझे शांति मिल सकेगी ?

विजयी प्रत्यंचावाले कोदंडधारी (राम-लक्ष्मण), जबतक अपनी धनुर्विद्या की कुशलता को प्रकट न करेंगे और जबतक निर्लज्ज राक्षसियों के मंगल-सूत्र इस प्रकार न कट जायेंगे, जैसे उनकी नाक ही कट गई हो, तबतक क्या मेरी सहज लज्जाशीलता का कुछ महत्त्व होगा ?

स्वर्णमय (त्रिकूट) पर स्थित लंका जबतक शत्रुओं की अस्थियों के पर्वत से न भर जायगी, तबतक मैं कुलवती की महिमा को, सच्चारित्र्य को और अस्खलित पातिव्रत्य को किस प्रकार निरूपित कर सकूँगी ?

पीडा-जनक राक्षसों की लंका की क्या बात, अनन्त लोकों को भी अपने शाप से मैं जला देती। किन्तु, वैसा करना पवित्रमूर्त्ति (राम) की धनुर्विद्या की कुशलता को कलंकित करना है—यही सोचकर मैं वैसा न करके चुप रह गई।

हे सत्यशील ! कथन-योग्य एक और कारण है। वह भी सुनो। पंचेन्द्रियों पर संयम पाने पर भी तुमको यह संसार, पुरुष ही कहता है। उस उत्तम वीर (राम) के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श करना मेरी देह के लिए क्या उचित हो सकता है ?

यदि उस नीच (रावण) ने (मुझे) छू लिया होता, तो क्या इतने दीर्घ समय तक (उसके या मेरे) शरीर में प्राण बचे रहते ? उस समय वह (रावण), यह सोचकर कि मुझे छूने पर वह क्षणमात्र में विनष्ट हो जायगा, धरती के साथ ही मुझे उठा ले चला।

ब्रह्मदेव के द्वारा रावण के प्रति दिया हुआ ऐसा एक शाप है कि यदि वह अपने साथ मिलने की इच्छा न रखनेवाली किसी स्त्री का स्पर्श करेगा, तो उस पाप के फल-स्वरूप उसके बलिष्ठ सिरों के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। उसी शाप ने अबतक मेरे प्राणों की रक्षा की है।

वैसा एक शाप है—यह वृत्तांत मुझे, पराक्रमी उज्ज्वल किरीटधारी और सत्यशील विभीषण की बेटी (त्रिजटा) ने मुझपर करुणा करके बतलाया और मेरे भय को दूर किया।

उस शाप के रहने से मैं भी, यह विचार कर कि धर्म कभी व्यर्थ नहीं जायगा, रामचन्द्र के पराक्रम को सोचकर एवं अपने परिशुद्ध चारित्र्य को भी प्रमाणित करने के लिए ही इतने दीर्घ काल तक जीवित रही हूँ। अन्यथा, निश्चय ही कभी अपने प्राण त्याग देती।

उस स्थान (दंडकारण्य) से, राक्षस ने जो धरती के साथ ही मुझे लाकर यहाँ रखा है, यह तुम सत्य को पहचाननेवाली अपनी दृष्टि से देखो। लक्ष्मण के द्वारा निर्मित पर्णशाला भी यहाँ वैसी ही रखी हुई है।

मैं कभी इस स्थान से हटती नहीं हूँ। हाँ, शिथिल होनेवाले अपने प्राणों को बचाने के लिए कभी-कभी उस सरोवर पर जाती हूँ, जो दंडधारी (राम) की शरीरकांति के सदृश जल तथा ऊर्ध्वमुख कमलों से भरा हुआ है।

अतः, वह तुम्हारा विचारा हुआ कार्य उचित नहीं है। हे उत्तम! अब तुम्हारा कार्य यही है कि उस वेदनायक (राम) को मेरा संदेश पहुँचा दो।—सीता ने कहा।

हनुमान् यह सोचकर कि सब लोकों के स्वामी (राम) की इस सहधर्मिणी, महिमामयी देवी की तपस्या भी कितनी श्रेष्ठ है, विस्मय-विमुग्ध हुआ। अपनी आशंकाओं से मुक्त होकर बड़े आनंद के साथ (सीता की) स्तुति करने लगा।

रावण के कारण अंधकार में डूबा हुआ यह संसार फिर प्रकाश पायेगा। कुछ दिन तक तुम अपने प्राणों को सुरक्षित रखो। दुःख से बेसुध हुए प्रभु के पास जो संदेश ले जाना है, उसे कहो।—इस प्रकार हनुमान् ने सीता के चरणों में नत होकर प्रार्थना की।

हे नीतिमान्! और एक मास पर्यंत मैं यहाँ जीवित रहूँगी। उसके बाद, उसी प्रभु (राम) की सौगंध खाकर कहती हूँ कि मैं अपने प्राणों को रोक नहीं सकूँगी। तुम्हें देखकर मैंने जो यह वचन कहा है, इसे मन में भली भाँति बिठा लो।

तुम उन (राम) से कहना—हारों से विभूषित वक्षवाले उन (राम) के लिए, भले ही मैं योग्य पत्नी न होऊँ, (मेरे लिए) उनके हृदय में भले ही दया न हो, तो भी उन्हें अपनी वीरता की लाज तो रखनी ही होगी।

प्रशंसनीय जयशील उन कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण से यह एक वचन कहना—महिमामय (राम) की आज्ञा से वे मेरी रक्षा करते रहते थे। अब बीच में आये हुए इस दारुण बंधन से मुझे मुक्त करना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है।

एक मास में मेरा प्राण समाप्त हो जायगा। अतः, इसी अन्तर में यदि वे यहाँ नहीं आयेंगे, तो वे (राम) नूतन जल से भरी गंगा नदी के किनारे इस दासी की अंत्येष्टि क्रिया अपने लाल करों से पूर्ण कर दें।

हे महान्! तुम उस धर्म के नायक (राम) से यह बात कहना कि लंका में मृत्यु प्राप्त करती हुई सीता ने अपनी तीनों उत्तम सासों के प्रति प्रणाम कहा है। दया की कमी से (वे राम) कदाचित् मुझे भुला भी दें, पर तुम मुझे मत भूलना।

उन (राम) के श्री-सम्पन्न कानों में यह बात पहुँचा देना कि जब उन्होंने (मिथिला में) आकर मेरा पाणिग्रहण किया था, तब उन्होंने यह वचन दिया था कि इस जन्म में (तुम्हारे अतिरिक्त) किसी अन्य स्त्री का मन से भी स्पर्श नहीं करूँगा।

उन (राम) से यह निवेदन करना कि यदि मैं यहीं रहकर अपने प्यारे प्राणों को त्याग दूँ, तो भी उनका नमस्कार कर यही प्रार्थना करूँगी कि वे मुझे ऐसा एक दोष-रहित वर प्रदान करें, जिससे मैं दुबारा जन्म लेकर पुनः उन्हीं की सुन्दर देह का आलिंगन कर सकूँ।

उन्हें (सिंहासन पर) अधिष्ठित होकर राज्य करते हुए, श्रेष्ठ रत्नों एवं सुन्दर कंठ-सूत्र से सुशोभित हाथी पर बैठकर वीथियों में जाते हुए तथा अन्य दृश्यों को देखने का सुकृत मुझे नहीं मिला है। अब बहुत कहने से क्या प्रयोजन? अपने भाग्य को सोचकर मैं रोती रहूँगी।

(वे प्रभु) अपने दुःख को देखकर दुःखित होनेवाले संसार के दुःख को, अपनी माताओं के दुःख को तथा भरत के द्वारा अनुभूत दुःख को मिटाने के लिए अयोध्या में जायेंगे। क्या वे मुझ एक व्यक्ति के दुःख को देखकर यहाँ आ सकेंगे? (अर्थात्, वे यहाँ नहीं आयेंगे।)

मेरे पिता-माता आदि सभी बंधुजनों को मेरा नमस्कार कहना। कपिराज (सुग्रीव) से कहना कि सुन्दर भुजावाले उस प्रभु का निरंतर साथ देते हुए उन्हें अविनाशी अयोध्यानगर का राजा बनाये।

इस प्रकार के वचन जब वह देवी कहने लगीं, तब यह कहकर कि 'हे सौंदर्यवती देवी! आपने अब भी अपनी पीडा को तजा नहीं है', हनुमान् सब प्रकार के कारणों से युक्त, योग्य तथा मधुर वचन कहकर उन्हें सांत्वना देने लगा।

(हनुमान् कहने लगा—)[1]

हाँ-हाँ, तुम सचमुच यहीं मृत्यु प्राप्त करोगी। उधर शिथिलप्राण हुए वे (राम) अपने मधुर प्राणों को सुरक्षित रखे रहेंगे। वे (अरण्य से) चलकर महिमापूर्ण उस (अयोध्या) नगर में जायेंगे और किरीट भी धारण करेंगे। यह सच बात ही तो है।

पातिव्रत्य से किंचित् भी स्खलित न होनेवाली तुमको, घृणित तथा भयंकर बंधन में डालनेवाला (रावण) अपने प्यारे प्राणों को रखकर जीवित रहेगा। अनुपम धनुर्धारी (राम-लक्ष्मण) हारकर चले जायेंगे। वाह! तुम्हारे ऐसे वचनों के समान सत्य वचन और क्या हो सकता है?

हे सद्गुणवती! हम सब, तुम्हें पीडा देनेवाले राक्षसों का विनाश किये विना ही अपने प्राणों को सुरक्षित रखकर वहाँ (राम के समीप) चले जायेंगे और हमारे प्रभु (राम) भी अपने धनुष को हाथ में लिये (अयोध्या को) लौट जायेंगे।

अलंघ्य दुःख-सागर से हमारी रक्षा करने के लिए, हमें अघट सुख-संपत्ति जिस (राम) ने दी है, उसे तुम्हें प्रदान किये विना हम मौन रह जायेंगे, तो हमसे बड़े लोग और कौन होंगे?

जिस (राम) ने यह प्रण किया था कि सद्धर्म का आचरण करनेवाले मुनियों को जो खा जाते हैं, उन (राक्षसों) को मारकर उनकी आँतों को जबतक पिशाचों को न खिलाऊँगा, तबतक (कोशल) देश में नहीं जाऊँगा, उस प्रभु के लिए ये काम (अर्थात्, रावण का वध करके तुम्हें मुक्त करना) क्या असाध्य है? (अर्थात्, असाध्य नहीं है)।

'शत्रुओं के द्वारा बंदी बनाई गई तुमको मुक्त कर लिया'—यदि ऐसा वे न कह सकेंगे और खाली हाथ लौट जायेंगे, तो क्या देशवासी सज्जन पुरुष और शास्त्रज्ञ विद्वान् हमारी बातों का आदर करेंगे?

पातिव्रत्य-धर्म का पालन करनेवाली, कभी किंचित् भी असत्य आचरण न करनेवाली वह (सीता) अस्पृश्य वंचक (राक्षसों) के द्वारा छुए जाने के पूर्व ही मृत हो गई—

---

१. नीचे के कई पदों में व्यंग्य की ध्वनि है।

यह समाचार पाकर भी संतुष्ट होकर यदि हम खाली हाथ लौट जायेंगे, तो उससे (राम की) वीरता खूब प्रकट होगी न ?

यह भी तुमने खूब कहा ! यदि तुम अत्यन्त शोक से अपने प्राण छोड़ दोगी, तो वे अपने विजयी बाणों से शत्रु-सहित सातों लोकों को ही क्यों न जला दें, तो भी उनका अपयश नहीं मिटेगा।

हे लक्ष्मी (के अवतार)! युद्ध के लिए सन्नद्ध कोदंडधारी (राम) पहले से ही तीनों लोकों को (अर्थात्, तीनों लोकों के राक्षसों को) मिटा देने की सोच रहे हैं। यदि तुम्हारी यह दशा भी उन्हें विदित हो जाय, तो फिर क्या वह अपनी शांति बनाये रखेंगे ? तुम्हारी बात भी कैसी है ?

(श्रीरामचन्द्र का) न उमड़नेवाला क्रोध (जब उमड़ उठेगा, तब) बलवान् राक्षसों के प्राण लेने मात्र से ही शांत नहीं होगा। जब वह क्रोध शांत न होगा, तब क्या यह धरती और गगन भी उनके क्रोध से न मिट जायेंगे ?

(जिस दिन राम को तुम्हारी अवस्था का ज्ञान होगा), उसी दिन चक्रांकित हाथोंवाले (राम) के बाण गंभीर और शीतल समुद्रों-सहित सातों लोकों को क्या प्रलय-काल की अग्नि के समान नहीं पी जायेंगे ? कहो तो सही।

राम ने देवों के शत्रुओं का नाश किया। सब पाप-कार्यों को रोका। सज्जनों की रक्षा की। पुण्यकर्मों को सुरक्षित रखा। ऐसा जो यश है, क्या तुम उसे नहीं मानती हो ?

तुम्हारे कारण सद्धर्म का निर्वाह होगा। इसलिए, यदि तुम कष्टों को सहती हुई यहीं रहो, तो सारे संसार के लिए उससे अच्छे दिन उत्पन्न होंगे। ऐसा करना ही उचित है न ?

घृणित कंटक-जैसे राक्षसों के रक्त-प्रवाह में स्नान करनेवाले भूत-पिशाच ज्यों-ज्यों डुबकी लगा-लगाकर क्रीडा करने लगेंगे, त्यों-त्यों (अब) छिपे रहनेवाले देवता (बाहर निकल आयेंगे और) आनन्दित होंगे।—क्या यह शुभ परिणाम तुम नहीं देखोगी ?

युगांत में मानों वज्र गिर पड़े हों—इस प्रकार गिरनेवाले विध्वंसकारी (राम के) बाणों से शत्रुओं के शरीर में जो घाव होंगे, उनसे इस प्रकार रक्त बहेगा कि तरंगों से भरे सातों समुद्र एक बनकर घोर गर्जन करेंगे।—क्या तुम वह दृश्य नहीं देखना चाहती ?

गर्भवती राक्षसियाँ अपने उदर को मलती हुई, शोक से उद्विग्न होकर, अपनी विशाल आँखों से आँसू बहायेंगी। उनके, तोड़कर फेंके गये मंगलसूत्रों से आकाश को छूने-वाला एक ऐसा पर्वत बन जायगा कि बाली भी उसे लाँघना चाहे, तो नहीं लाँघ सकेगा।—क्या ऐसा दृश्य तुम नहीं देखोगी ?

गगन से भी ऊँचे भूत तथा विशाल पंखोंवाले बड़े-बड़े असंख्य पक्षी (राक्षसों की) रक्त-नदी में डुबकी लगाकर फिर राक्षसियों की अश्रु-नदी में स्नान करेंगे।—वह दृश्य भी तुम देखोगी।

तुम देखोगी कि यहाँ की नृत्यशालाओं में, जहाँ मृदंग और वीणा आदि के मधुर संगीत के साथ अप्सराएँ नृत्य करती हैं, वहाँ किस प्रकार पराक्रमी वानर पंक्ति बाँधकर (रावण के वध पर) नृत्य करेंगे।

तुम देखोगी कि किस प्रकार पापी तथा नीच कर्मवाले राक्षसों के घावों से बहती हुई रुधिर-रूपी तरंगायमान नदी में पर्वताकार शव-राशियाँ बहती हैं और तट पर टकराने-वाली ऊँची लहरों से भरे समुद्र को (उन शवों से) पाट देती हैं।

तुम देखोगी कि पापी राक्षस-रूपी कोयले के बीच सीता-रूपी चिनगारी के रहने और अनघ (राम) के शर-रूपी अपार पवन के चलने के कारण किस प्रकार यह विशाल लंका नामक स्वर्ण (पिंड) पिघल उठता है।

तुम देखोगी कि (सब पर) आघात करने की शक्ति रखनेवाले रावण के सिरों पर किस प्रकार कौए लपककर उसकी उन आँखों को, जिन्होंने तुम्हारे पुण्यफल-जैसे स्थित शरीर को वासनामय दृष्टि से देखा था, अपनी नुकीली चोंचों से निकाल-निकालकर खाते हैं।

दीर्घ दिशाओं में स्थित दिग्गज पूर्वकाल में जिस रावण से हारकर लज्जित हो, अपना मुँह लटकाये खड़े हैं, ऐसे विष-समान उस (रावण) के सभी सिर युद्धक्षेत्र में कट-कटकर गिरेंगे और पैरों से टकरायेंगे।—तुम यह दृश्य भी देखोगी।

इस लंका में, जहाँ सुन्दर पताकाएँ इस प्रकार फहरा रही हैं, मानों यह सोचकर कि नीला आकाश स्वेद-बिंदुओं से भर गया है और (उस स्वेद को) पोंछने के लिए यत्र-तत्र वस्त्र उछाले जा रहे हों, (उस लंका में रामचन्द्र के) उज्ज्वल शरों की वर्षा होगी और पिशाच धूलि उड़ाते हुए आनन्द-तांडव करेंगे।—यह दृश्य भी तुम देखोगी।

तुम यह भी देखोगी कि काले रंगवाले राक्षसों की रुधिर-धाराएँ समुद्र में न समाकर उमड़-उमड़कर नदियों के मार्ग से लौटकर वह रही हैं। समुद्र से आवृत पृथ्वी युगांत में जब मिट जाती है, तब भी (प्राणियों को खा-खाकर) न अघानेवाला यम, अब (लंका के विध्वंस के समय) अघाकर अपने खाये हुए प्राणियों को उगलने भी लगेगा।

सुगंधित कल्पवृक्षों के उद्यानों में स्थित सरोवरों में जहाँ अब राक्षस, अप्सरा-समान स्त्रियों के साथ जल-क्रीडा करते हैं, वहाँ वानरों के समूह, एक दूसरे की मुड़ी हुई पूँछों को पकड़े, पंक्तियों में चलकर, स्नान करते हैं।—यह भी तुम देखोगी।

अब अधिक क्या कहना है? तुम देखोगी कि (राम के द्वारा) प्रयुक्त दिव्य अस्त्र इस लंका के राक्षसों का विनाश करके और आगे बढ़कर त्रिलोकों में स्थित राक्षसों का भी अन्त कर देंगे।

यहाँ इस बंधन में अब तुम्हें एक मास तक भी रहने की आवश्यकता नहीं होगी। मेरे उस वीर को देखने भर की देर है। उसके पश्चात् अधिक समय की आवश्यकता ही क्या है? फिर वे प्रतापी (राम) क्षण-मात्र का भी विलंब नहीं करेंगे।

हाँ, यह सच है कि उन (राम) के प्राण अबतक बचे हैं। किंतु, वहाँ के बड़े वनों में ऐसे फूल या पल्लव नहीं हैं, जो तुम्हारे अपूर्व प्राण-भूत वीर (राम) की सुन्दर देह

के स्पर्श से झुलस न गये हों। ऐसे वृक्ष भी नहीं हैं, जिनसे जल-जलकर चिनगारियाँ न निकली हों।

यदि मन में पीडा उत्पन्न होती है, तो वह किसी की स्मृति के कारण ही तो होती है? (जब रामचन्द्र तुम्हारे विरह की पीडा से मूर्च्छित हो जाते हैं, तब) गर्जन करनेवाले मेघों के टूटकर उनके ऊपर गिरने या पंचशिर नागों के झपटकर उनके वक्ष और भुजाओं में काटने पर भी उनकी चेतना नहीं लौटती।

उनके प्राण, मथे जानेवाले दही के समान, (शरीर में) आते और जाते हुए अंदर-बाहर के बीच लड़खड़ाते रहते हैं। इन्द्रियों के शिथिल हो जाने से वे उन्मत्त-से हो गये हैं। तुम्हारे वियोग के कारण उनकी जो दशा हुई है, उन सबका वर्णन करना क्या कभी संभव है?

ऐसे वे (राम), यदि तुम कहो कि (तुम्हें छोड़कर) जीवित रहेंगे, तो वह वचन, उनकी वास्तविक दशा का विचार करने पर, झूठा ही सिद्ध होता है। मैं जो कहता हूँ, इसकी सचाई तुम, हस्तामलक के समान, स्वयं पहचानोगी।

हे माता! हे देवी! तुम्हारा समाचार पाकर वह पवित्रमूर्त्ति (राम) और कपिकुल-नायक (सुग्रीव) आनन्दित हों, इसके पहले ही समुद्र को पारकर लंका को घेर लेनेवाले बड़े-बड़े वानरों के कोलाहल को सुनकर तुम आनन्दित हो उठोगी।

हे स्त्रियों में उत्तम! असंख्य वानर-सेना कल ही इस नगर में आ पहुँचेगी। उस समय उसके बीच में, आकाश के मध्य गरुड पर विराजमान विष्णु के सदृश, मेरे कंधे पर विराजमान प्रभु (रामचन्द्र) को तुम देखोगी।

अंगद के कंधे पर कनिष्ठ (भ्राता लक्ष्मण) उदयगिरि पर प्रकाशमान उष्णकिरण के समान विराजमान होंगे। इस प्रकार युद्ध के लिए सन्नद्ध हो वानरों की सेना यहाँ आ उतरेगी। तुम अपनी पीडा, सन्देह और आशंका को दूर कर दो। तुम (शीघ्र ही) वियोग से मुक्त होओगी।

हे पुष्पों की गंध से युक्त केशोंवाली! (तुम्हारे द्वारा) निर्दिष्ट अवधि के भीतर इस बड़े कारागार से यदि वे प्रभु तुम्हें मुक्त नहीं करेंगे, तो अपने अपयश और पाप के कारण वे रावण बन जायेंगे। और यह (रावण) राम बन जायगा।[1] यों हनुमान् ने कहा।

उस दोषहीन ने इस प्रकार के जो वचन कहे, उन्हें सुनकर मयूर-सदृश सीता स्वस्थचित्त हुईं और उमंग-भरे मन से फूल उठीं। मन में यह सोचकर कि अब इस (हनुमान्) का (शीघ्र) जाना ही अच्छा है, ये वचन कहने लगीं—

हे श्रेष्ठ गुणवाले महात्मा! तुम शीघ्र जाओ। सब बाधाओं पर विजय पाओ। अब मैं और कुछ नहीं कहूँगी। किंतु, मैं कुछ पूर्वघटित घटनाओंको, जो उनको प्रिय हैं, तुमसे कहती हूँ। उन (राम) को सुना देना।

---

१. भाव यह है कि राम को इतना अपवाद होगा कि उनके अपवाद को देखते हुए रावण का पाप बहुत कम दीखेगा। —अनु०

कभी एक दिन, स्वर्ग को छूनेवाले ऊँचे तथा सुन्दर (चित्रकूट) पर्वत पर एक काक आया था और मेरे वक्ष पर अपने तीक्ष्ण नखों से आघात किया था। उस समय क्रुद्ध होकर उन (राम) ने समीपस्थ पत्थर के पास उगी हुई एक घास लेकर उसे अत्युग्र ब्रह्मास्त्र बनाकर प्रयुक्त किया था। इसे धीरे से (राम को) सुनाना।

उस समय, वह काक भयभीत होकर काँप उठा था। जब वह भागकर ब्रह्म-लोक में गया, तब वहाँ (ब्रह्मदेव ने) क्रुद्ध होकर पूछा—'तू यहाँ क्यों आया है ?' फिर, वह उमापति के पास और आठों दिशाओं में (दिक्पालकों के पास) भागता रहा। किन्तु, सभी देवों ने उसका तिरस्कार कर दिया।

काक के रूप में स्थित इन्द्र के पुत्र जयन्त को देखकर अंतरिक्ष के देवताओं ने कहा—'हाय ! अब हमारे प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है, अतः उन्हीं के चरणों पर जाकर गिरो।' तब वह काक लौट आया।

वह भयभीत होकर भूलोक में आया और यह कहता हुआ कि—'हे प्रभो ! तुम्हारे चरण ही मेरी शरण हैं', प्रभु के चरणों पर जा गिरा। उदार (राम) ने भी मन में शान्त होकर यह कहा कि वह ब्रह्मास्त्र उस (काक) की एक आँख लेकर उपशान्त हो जाय। तब वह दिव्य अस्त्र वैसा ही करके उपशांत हो गया। यह सब उन्हें सुनाना।

'हे प्रभु ! तुम्हारे चरण ही हमारी शरण हैं'—यह कहने पर प्रभु ने उस काक को अभयदान दिया और कहा—'तुम्हारे किये पूर्व अपराध को हम क्षमा करते हैं। तुम्हारी जाति के पक्षियों की दोनों आँखों के लिए एक ही पुतली होगी।' यह भी उनसे निवेदन करना।

जयन्त भयमुक्त हो अंतरिक्ष में चला गया। देवों ने पुष्प-वर्षा की। गजसदृश कनिष्ठ (लक्ष्मण) भी यह घटना नहीं जानते। इसे इक्षुरस-सदृश मधुर वचनों में उन प्रभु से कहना।

हे सत्य-मार्ग का अनुसरण करनेवाले ! उन प्रभु से यह कहना कि उस दिन (अयोध्या में) जब मैंने उनसे यह पूछा था कि हे प्रभो ! अपनी इस शुकी का क्या नाम रखूँ ? तो उन्होंने प्यार से उत्तर दिया था—'मेरी माँ दोषहीन कैकेयी का नाम रखो।'

इस प्रकार के अभिज्ञान-वचन कहकर, उस देवी ने सोचा कि अब इतने अभिज्ञान बताने के पश्चात् और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर, अपने मनोहर वस्त्र में बँधी हुई, अपनी कांति से ऊपर और नीचे के समस्त लोकों को प्रकाशित करनेवाली, सूर्य को भी (अपनी उज्ज्वलता से) परास्त करनेवाली,

चूडामणि को अपने कमल-कर में लिया। हनुमान् उसे आश्चर्य के साथ देख-कर सोचने लगा कि यह अद्भुत वस्तु क्या है ? चारों ओर फैला हुआ घोर अंधकार भी, जो सप्त लोकों को भी निगल जाता है, (उस चूडामणि के प्रकाश से) अदृश्य हो गया।

कठोर नेत्रवाले राक्षस यह संदेह करने लगे कि कदाचित् मेघ-मंडल के ऊपर चमकनेवाला सूर्य ही इस नगर में उतर आया है। (रात्रि में वियोग के कारण) दुःखी

रहनेवाले चक्रवाक तथा मुकुलित कमल भी आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। सूर्यकांत पत्थरों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

सीतादेवी ने वह चूडामणि दिखाई, जो उनके शीतल मेघ-जैसे केशों पर चमकनेवाले नवग्रह-पति (सूर्य) की समता करती थी। सीता देवी की कोमल देह के समान ही कांतिपूर्ण थी, और असमान वीर (राम) के चरणों के समान प्रकाशमान थी। मारुति ने (उस चूडामणि को) देखा।

मेरी खोज में यहाँतक आकर मुझे प्राण प्रदान करनेवाले, हे पुरुषश्रेष्ठ! लो, इस चूडामणि को, जो मेरे नेत्र-तारा के समान है और दीर्घकाल से मेरे वस्त्र में बँधी पड़ी रही है, मेरे अभिज्ञान के रूप में ले जाओ—यों कहकर सत्य-यशवाली उस देवी ने चूडामणि (हनुमान् को) दी।

(हनुमान् ने) प्रणाम करके उस (चूडामणि) को लिया। बड़ी सावधानी से अपने वस्त्र में बाँधा। फिर, (सीता देवी को) नमस्कार करके आँसू बहाते हुए तीन बार परिक्रमा की और दंडवत किया। प्रतिमा-जैसी सीता देवी ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वह हनुमान् लौट पड़ा। (१—८६)

●

अध्याय ७

वन-विध्वंसन पटल

उत्तर की दिशा में जाने का निश्चय करके उस (हनुमान्) ने विशाल रूप धारण किया और लक्ष्मी (सीता) के आवासभूत उस पुष्पोद्यान के मध्य त्वरित गति से चलने लगा। फिर, यह सोचकर कि एक छोटा-सा काम करके ही लौट जाना अच्छा नहीं है; यह निश्चय किया कि कोई ऐसा काम करूँ, जो मेरे लिए करने योग्य हो (अर्थात्, जिससे मुझ-जैसे एक व्यक्ति का यहाँ आने का कुछ प्रभाव पड़े)।

यदि मैं पापकर्मी शत्रुओं को न मार दूँ, प्राचीरों से आवृत इस नगर को समुद्र में न फेंक दूँ, हरिण-सदृश नेत्रोंवाली देवी को मनुकुलश्रेष्ठ (राम) के कमल-चरणों पर समर्पित न करूँ, तो मैं किस प्रकार उनका किंकर हो सकता हूँ?

मैंने अपनी लंबी पूँछ से उस छली राक्षस रावण के दसों सिरों को बाँधकर उसे कठोर कारागार में नहीं डाला या उसको युद्ध में पराजित भी नहीं किया। अब यह वचन कैसे सत्य हो सकता है कि आप्तजन परस्पर की सहायता करनेवाले होते हैं? (अर्थात्, यदि मैं रामचन्द्र का आप्त होऊँ, तो मुझे उनकी सहायतार्थ और भी कुछ कार्य करना चाहिए)।

यदि मैं अपनी शक्ति से, सम्मुख आनेवाले राक्षसों को पीडित कर दूँ, अति

बलवान् राक्षस (रावण) के देखते-देखते अपनी अनुपम दक्षता के साथ मंदोदरी को, उसके पुष्पालंकृत केशों को पकड़कर, खींच ले जाऊँ और बंदी बनाकर रखूँ, तो क्या इसमें कुछ दोष हो सकता है ?

इन राक्षसों को सताकर उन्हें भगा दूँ, और अपना बल इनपर प्रकट कर दूँ—इतना ही अब मेरा कर्त्तव्य शेष रह गया है। अब विचार करने की और कोई बात नहीं है। अतः, अब किस उपाय से इन राक्षसों के साथ युद्ध छेड़ूँ ?—वह उपाय सोचने लगा।

(उसने सोचा) इस उद्यान को शीघ्र ही तोड़-फोड़कर विध्वस्त कर दूँगा। उस बड़े शब्द को सुनकर राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझपर आक्रमण करेंगे। तब अपनी शक्ति से उन्हें पीसकर उनके प्राण पी लूँगा। यही अच्छा उपाय है।

मुझपर आक्रमण करने के लिए आनेवाले सब राक्षस जब मृत्यु को प्राप्त होंगे और यहाँ से नहीं लौटेंगे, तब वह बलशाली (रावण) भी अपनी अदम्य सेना-सहित आगे बढ़कर आयगा। तब उसके किरीटधारी सिरों को झुका दूँगा और अपने मन की दारुण पीडा से मुक्त होकर यहाँ से जाऊँगा।

यह सोचकर, उसने अपने उस विराट् रूप को, जो सूर्य-चन्द्र के द्वारा परिक्रान्त मेरु-समान कंधोंवाला था, धारण किया। वह ऐसा लगा, जैसे आदिकाल में इस धरती को अपने दंत पर उठानेवाला महावराह हो। फिर, घने अशोकवन को पैरों से रौंदने लगा।

(अशोक वन के पेड़) भग्न हुए, टूट गये, चूर-चूर हो गये, झुककर गिर गये, तहस-नहस हो गये, जल गये, झुलसकर काले पड़ गये, म्लान हुए, बिखरकर गिर पड़े और छिन्न-भिन्न हो गये।

कुछ पेड़ जड़ से उखड़ गये, कुछ (फेंके गये)आकाश पर मेघों के निकट जा पहुँचे, कुछ घास-पात के जैसे हवा में उड़कर समुद्र में जा गिरे, कुछ भ्रमरों-सहित स्वर्ग-लोक से जा टकराये, कुछ टूट-फूटकर अस्त-व्यस्त हो बिखर गये।

कुछ पेड़, जो (हनुमान् के द्वारा घुमाकर दूर) फेंके गये थे और अपने साथ मेघों को भी खींचते चले गये थे, दिशाओं में स्थित युद्ध-कुशल (दिग्) गजों का भोजन बने और कुछ जिन्हें (हनुमान् ने) जड़ से पकड़कर ऊपर की ओर फेंका था, गगन-मार्ग से स्वर्ग में जा गिरे और नंदन-उद्यान को भी विध्वस्त कर दिया।

समुद्र में हलचल उत्पन्न हो गई, राक्षसों के विशाल घर ढह गये, कुछ पेड़ कुलपर्वतों से टकराकर चूर-चूर हो गये, पेड़ों के श्वेतपुष्प विस्तृत आकाश पर बिखरकर, तारों से मिलकर नीचे गिर पड़े।

(हनुमान् ने) कुछ पेड़ों को जड़ से उखाड़कर इस प्रकार फेंका कि वे सत्यलोक से परे जा पहुँचे और फिर नीचे गिरकर दिग्गजों के दाँतों में उलझकर लटकने लगे। वे ऐसे लगे, मानों दिग्गज अपनी हथिनियों को देने के लिए उन पेड़ों को अपनी सूँड़ों से गगन तक उठाये खड़े हों।

(जब हनुमान् ने उन पेड़ों को सर्वत्र फेंका, तब) विष-समान (रावण) के

उद्यान के पुष्पों को विद्याधर के लोकों में, यक्षों के पर्वतों पर तथा मृत्युहीन देवों के लोकों में रहनेवाला महावर से अलंकृत चरणवाली स्त्रियाँ आकर चुनने लगीं।

जब स्वर्ण एवं श्रेष्ठ रत्नों से बने बड़े-बड़े वृक्ष, विभिन्न दिशाओं में उड़ते थे, तब वे संचरण करनेवाली बिजलियों के जैसे लगते थे। सूर्य के समान प्रकाश फैलाते थे। जब वे एक दूसरे से टकराकर नीचे गिरते, तब युगांत में आकाश से गिरनेवाले तारकों के समूह के समान लगते थे।

(हनुमान् के फेंके हुए वृक्षों से नीचे गिरनेवाले) पक्षियों, भ्रमरों, सुगंधित पुष्पों, मधु, कलियों, पल्लवों और सरस शाकों को जल-समृद्ध समुद्रों में रहनेवाले मत्स्य खा-खाकर उछलने लगे। फिर, उन पेड़ों के गिरने से कुचले जाकर तड़प-तड़पकर मर गये।

वीचियों से पूर्ण समुद्र, जो दुर्गंध से भरे रहते हैं, (हनुमान के फेंके वृक्षों से) गिरे पुष्पों से भर जाने पर सर्वत्र सुगंधित हो गये। वे उस समय ऐसे लगे, जैसे देवताओं के अपनी देवियों के साथ जल-क्रीडा करने के लिए बने हुए तालाब हों।

उखाड़ी गई रत्न-वेदियों और तोड़े गये वृक्ष एक के पीछे एक जाकर समुद्र में गिरे और उसे पाट दिया। (इन पेड़ों के कारण) सुरभि से भरे समुद्र में ऐसा मार्ग बन गया, जिसपर कोई भी पैदल ही चलकर उसे पार कर सकता था। वह मार्ग ऐसा लगा, मानों आकाश-मार्ग से आये हुए हनुमान् के लौटते समय पैदल ही जाने के लिए बना हो।

गगन में फेंके गये बड़े-बड़े वृक्ष, ग्रीष्म ऋतु में तपनेवाले सूर्य के सदृश चमकते हुए नीचे गिरे। उनकी चोट से दानवों के भवन इस प्रकार ढह गये, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पहाड़ टूट जाते हैं।

उस समय, उखाड़कर फेंके गये असंख्य वृक्ष-समूह घने और शीतल मेघों के जैसे (आकाश पर) छा गये। वह दृश्य ऐसा था, मानों महिमामय हनुमान् ने क्रोध से बलवान् रावण के अनुपम उद्यान को गगन पर उठाकर रख दिया हो।

पुष्पों से भरे रत्नमय वृक्ष, मधु-बिंदुओं को छितराते हुए, आकाश में उड़ने लगे, तो उनमें रहनेवाले अनेक पक्षी कोलाहल कर उठे, आकाश में पंक्तियों में दिखाई पड़नेवाले वे पेड़, खड्ग और धनुष के आकार में ऐसे प्रकाशमान हो उठे, मानों गगन में उड़नेवाले बड़े-बड़े विमान हों।

युद्ध में दक्ष, अनुपम हाथी के समान (हनुमान्) के द्वारा फेंके जाने से, मोटे तने और अतिदीर्घ शाखाओं से युक्त विशाल वृक्ष आकाश में ऊँचे उड़कर समुद्र में ऐसे जा गिरे, मानों आकाश से विविध प्रकार के मेघ समुद्र का जल भरने के लिए उतर आये हों।

साधना में कमी हो जाने के कारण, धरती पर पुनः जन्म पाये हुए योगी, संपूर्ण ज्ञान पाकर मुक्ति प्राप्त करके जा रहे हों—ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए दानशील कल्पवृक्ष (जो रावण के द्वारा धरती पर लाये गये थे), हनुमान् के द्वारा फेंके जाकर आकाश-मार्ग से सर्वोत्तम स्वर्णनगर (स्वर्ग) में पहुँच गये।

(हनुमान् ने) रत्नवेदिकाओं को ढाह दिया। मंडपों को गिराकर टुकड़े-टुकड़े

कर दिये। समीपस्थ सरों को पाट दिया। चमकती हुई (मणिमय) दीवारों को विध्वस्त कर दिया। ऊँचे टीलों को मिटा दिया—इस प्रकार के अनेक दुष्कर कार्य किये।

'वेंगे' वृक्षों को भग्न किया। सालवृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया। ऊँचे कल्पवृक्षों को पुष्पों-सहित तोड़कर फेंक दिया। चंपक के पौधों को उखाड़ फेंका। फल से भरे आम्रवृक्षों की शाखाओं को तोड़ डाला—इस प्रकार उनको अस्त-व्यस्त कर दिया।

उसके पैरों से कुचले जाकर वह उद्यान अपने स्थान से ऐसे विचलित हुआ कि मन्मथ और उसके सखा वसंत के मुख कांतिहीन हो गये। चंदन-वृक्ष ज्वालामय हो जलकर भस्म हो गये।

'कामर' नामक राग गानेवाले भ्रमर व्याकुल हो उठे। बड़े-बड़े वृक्ष मिट्टी में मिल गये। नाट्यशालाएँ गिर गईं। पुष्पवृक्ष एक दूसरे से टकराकर जल उठे।

झुकनेवाली टहनियाँ, पुष्पलताएँ, शीतल पल्लव-समुदाय, जहाँ कोयलें निवास करती थीं, कोमल पुष्पों से भरे प्रवेश-द्वार, सुगंधित कुंज, मनोहर मधुवर्षा, भ्रमर और मयूर, सब विध्वस्त हो गये।

श्रेष्ठ प्रवाल-लताएँ फेंकी जाकर पर्वतों पर गिरकर उनसे ऐसे लिपट गईं, जैसे मेघों से गिरनेवाली विद्युल्लताएँ हों। उज्ज्वल स्वर्णमय शाखावाले वृक्ष, गजों के मुख पर लगाये जानेवाले स्वर्ण-फलकों के समान (उन पर्वतों पर) जा गिरे।

विविध पक्षियों की ध्वनि, विविध वृक्षों के टूटने की गर्जन-जैसी ध्वनि, उस धर्म रूपी (हनुमान्) के चिल्लाकर गर्जन करने की ध्वनि—ये सब ध्वनियाँ इस ब्रह्मांड से परे भी शून्य में जाकर परिव्याप्त हो गईं।

पक्षियों के समूह अपने बच्चों के साथ व्याकुल हो उठे। गगनचुंबी 'कोंगु', 'पाथल' आदि वृक्ष मनोहर संगीत करनेवाले भ्रमरों के साथ असंख्य तरंगों से शब्दायमान विशाल समुद्रों में जा गिरे।

भ्रमरों से गुंजरित उस सुन्दर उद्यान के बड़े-बड़े वृक्ष, पंकिल मिट्टी से भरी, सुन्दर जल से पूर्ण कावेरी नदी में जा गिरे। आकाश-तल तक बढ़े हुए (कुछ अन्य) वृक्ष (ब्रह्मा के द्वारा) त्रिविक्रम के चरणों को धोने से गगन से प्रवाहित स्वच्छ जलवाली गंगा-नदी में जा गिरे।

हनुमान् के अनेक वृक्षों को फेंकने से, विशाल कमल-सर ऐसा लगा, मानों रक्त-चंदन के कीचड़ से भरा हो। अशोकवन के वृक्षों ने समुद्र को, संगीत गानेवाले मत्त भ्रमरों तथा मधु से युक्त पुष्पों का समुद्र बना दिया।

सिंधुवार-वृक्ष चारों दिशाओं में उड़े और सिंधु (समुद्र) के विशाल वीचियों में जा गिरे। चंदन-वृक्ष ऐसे टूटकर गिरे कि (उनके गिरने से) राक्षसों के घरों के द्वार और किवाड़ तहस-नहस हो गये।

सुगंधित नन्दनवन के सद्योविकसित पुष्प आकाश में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों के जैसे प्रकाशमान हुए। इमली के पेड़ (सगर-पुत्रों के द्वारा खोदे गये) गढ़ों (अर्थात्, समुद्रों) में गिरे, तो वहाँ के श्वेत शंख इधर-उधर भागते हुए मनोहर मोती उगलने लगे।

विविध रत्न तथा स्वर्णमय विविध शाखाओं से युक्त वृक्ष जब आकाश में फेंके गये, तब वे रात्रि में दिखाई पड़नेवाले उस इन्द्रधनुष के समान लगे, जो (उत्पात को बताते हुए) यह संकेत कर रहा हो कि यह (हनुमान्) अभी इन (राक्षसों) को मिटा देगा।

अमंद प्रकाश से युक्त स्वर्णमय लता-समुदाय जब सभी दिशाओं में समुद्रों की ओर फेंके गये, तब वे ऐसे लगे, मानों सूर्य-किरणों के समुदाय टूटकर मेघों से पिये जानेवाले समुद्र के जल में गिर रहे हों।

उस महिमामय (हनुमान्) ने अशोकवन में भरे वृक्षों को दूर-दूर तक फेंका, तो उससे गजशालाएँ, अश्वशालाएँ, नाट्यशालाएँ, मधुशालाएँ तथा रथशालाएँ विध्वस्त हो गईं।

ऊँचे वृक्षों और बड़े पर्वतों को तोड़कर फेंकने से उज्ज्वल विशाल प्राचीर ढह गया, भवन जलकर भस्म हो गये और लंकापुरी सर्वत्र अस्त-व्यस्त हो गई।

उस समय चंद्र मानों यह सोचकर ही डर से अस्त हो गया कि यदि रावण यह सब देख ले, तो यह कहकर क्रुद्ध होगा कि बिंबाधरा सीता के प्रति प्रेम होने के कारण तूने मुझे जलाया है और अब विरोधी देवताओं के देखते हुए तू चुपचाप इस अशोकवन को विध्वस्त होते हुए देखता रहा।

दोष-रहित रत्न, स्वर्ण, सूर्यकांत और चंद्रकांत पत्थर—इनसे प्रकाशमान, मत्त-करनेवाले उस उद्यान के वृक्ष, हनुमान् के द्वारा सब दिशाओं में, दोनों हाथों से उठा-उठाकर फेंके गये और संसार-भर में महान् प्रकाश फैलाने लगे।

उस उद्यान के मृग भयभीत होकर व्याकुल हो उठे और बड़ा कोलाहल करने लगे। उनकी आँखें पानी से भरकर लाल हो गईं। उद्यान के पक्षी समुद्र में जा गिरे। जो पक्षी उस प्रकार न गिरे, वे उड़ने लगे। लेकिन वे भी कुछ दूर जाकर धरती पर गिर पड़े और अपने पंख फड़फड़ाकर सिमटकर निष्प्राण हो गये।

पर्वत-सदृश पुष्ट कंधोंवाले, विशाल तथा मनोहर सूर्य-सदृश वक्षवाले उस (हनुमान्) ने क्रोध से जब छुआ (अर्थात्, उखाड़कर फेंका), तब (उसके छूते ही), पक्षी घने दलवाले पुष्पों से भरे दिव्य वृक्षों पर स्थित अपने घोंसले के साथ स्वर्ग जा पहुँचे। वह (हनुमान्) यदि शांत होकर करुणा दिखाने लगे, तो उससे जाने कौन-सा पद प्राप्त होगा? (अर्थात्, जब हनुमान् के क्रोध करके छूने से ही पक्षियों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गई, तो उसके करुणा से भरे करों से छूने पर तो और भी उच्च पद प्राप्त होगा।)

असत्य-मार्ग पर चलनेवाले राक्षसों से सुरक्षित, पक्षियों के निवासभूत उस नवीन तथा मनोहर उद्यान में केवल वह वृक्ष ही, जिसके नीचे दुःखी मनवाली हंसिनी (सीता) बैठी थी, उसी प्रकार अक्षत खड़ा रहा, जिस प्रकार तीनों लोकों के विनाश के समय विष्णु के आवास-भूत एक अक्षयवट वृक्ष खड़ा रहता है।

उस समय सूर्य उदित हुआ। वह ऐसा लगता, था मानों तरंग-भरे समुद्र ने, यह सोचकर कि अन्य आभरणों से रहित सीता ने अपनी अति उज्ज्वल चूडामणि को भी अपने प्राण-नायक के लिए अभिज्ञान के रूप में दे दिया है, अब इसके पास एक भी आभरण

नहीं रहा, अतएव घने केशोंवाली उस (सीता) के योग्य एक अपूर्व रत्न खोज कर ला दिया हो।

उस लहलहाते विशाल उद्यान का ध्वंस करके अकेले खड़ा हुआ वह (हनुमान्) ऊपर और नीचे के चौदह लोकों को नापनेवाले त्रिविक्रम-सा लगा ; क्षीरसागर के मध्यस्थित मंदर-पर्वत-सा लगा ; युगांत में सर्व-संहार करनेवाले रुद्र-सा लगा।

जिस समय यह सब हो रहा था, उस समय सब राक्षसियाँ जग उठीं, रोष से भर गईं और स्वर्णपर्वत-जैसे उस पुनीत (हनुमान्) को देखकर यह कहती हुई कि भाई! यह कैसी आकृति है? यह कौन है? भय से काँप उठीं। फिर, उज्ज्वल ललाटवती (सीता) को देखकर पूछा—'हे नारी! क्या तुम जानती हो?' सीता ने उत्तर दिया—

निष्ठुर राक्षसों की जो माया होती है, उसे छली और पापी लोग ही जानते हैं। तुम्हारे माया-प्रपंच को सच्चे व्यक्ति कैसे जान सकते हैं? एक राक्षस हरिण का रूप लेकर आया, तो लक्ष्मण के यह कहने पर भी कि यह राक्षसों की माया है, मैंने उसे सच्चा समझकर उसे माँगा था।

सीता ने यह वचन कहा। राक्षसियाँ अपनी छाती और पेट को पीटती हुई ऐसी भाग-दौड़ मचाने लगीं कि पहाड़, धरती, आकाश और समुद्र काँप उठे। अपने पिता (वायुदेव) के सदृश उस (हनुमान्) ने वहाँ स्थित क्रीडा-पर्वत को देखा और यह सोचकर कि इसे भी मिटा देना चाहिए, उसकी ओर अपनी लंबी बाहें फैलाकर उसे दृढता से पकड़ लिया।

वह क्रीडा-पर्वत इस प्रकार ऊँचा बढ़ा हुआ था कि गगनतल तक व्याप्त मेरु-पर्वत भी (उसकी ऊँचाई देख) लज्जित होता था। उसे आँख उठाकर देखना भी असम्भव था। उसके ऊपर मेघ भी नहीं छा सकते थे। वेगवान् प्रभंजन भी उसे आक्रान्त नहीं कर सकता था। रात्रिकाल में अंधकार भी उसे आवृत नहीं कर सकता था। कदाचित् यह धरती भी उसके भार का वहन नहीं कर सकती थी।

कई दिनों तक उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रकाशवाले चंद्र को भी, जो नूतन दूध-सा (अपना प्रकाश) फैलाता रहता है, अंधकार निगलने लगता है, उस अंधकार को भी निगल जानेवाले प्रकाश से युक्त इस क्रीडा-पर्वत का, बीस भुजाओंवाले (रावण) की आज्ञा से ब्रह्मदेव ने स्वयं पीतस्वर्ण से निर्माण किया था।

(उस क्रीडा) पर्वत में (लगे हुए) स्तंभ उज्ज्वल रत्नमय थे। उसके दोनों ओर मुक्ता और स्वर्ण जड़े थे। पीछे का भाग अति मनोहर रत्न-पंक्तियों से अलंकृत था। इस प्रकार, अति प्रकाशमान वह (क्रीडा-पर्वत) उस सूर्य के लिए भी आभरण बन सकता था। जो आकाश-भर में फैलनेवाली रक्त किरणों से संपन्न रहता है।

उसने यह सुना था कि कठोर कृत्यवाले राक्षस (रावण) ने पहले कभी रजत-गिरि (हिमाचल) को समूल उठाया था। उस महान् हनुमान् ने उस कार्य को छोटा बनाते हुए अब तीक्ष्ण नखोंवाले अपने विशाल करों से उस क्रीडा-पर्वत को यों उठाया, मानों महान् मेरु को ही उठा रहा हो।

उसने उस (क्रीडा-पर्वत) को उठाकर लंका पर फेंका, तो गगनस्पर्शी प्रासाद उससे आहत होकर टूट गये। उनसे जो चिनगारियाँ निकलीं, उनसे आसपास की सब वस्तुएँ जल गईं। अनेक वीर राक्षस भी डर से मर गये। अहो, (दूसरों का) अहित करते रहनेवाले क्या कभी (बुरे फल के भोग से) बच सकते हैं ?

लंका की भूमि में उगे हुए उस उद्यान की रखवाली करते रहनेवाले ऋतु-देवताओं के मन में भयरूपी अग्नि सुलग उठी। उनके वस्त्रों से जल चू पड़ा। उनकी देहों से (चोट लगने से) रक्त बह चला। उनकी टाँगें एक दूसरे से टकराकर उलझ गईं। वे अपने मुखों को खोलकर ऐसे चिल्लाये कि सारा नगर उस ध्वनि से गूँज उठा। वे भागकर (रावण के पास) गये।

वे जलानेवाले क्रोध से भरे उस (रावण) के पास जाकर (उसके) चरणों पर गिर पड़े और बोले—दिग्गजों से सुरक्षित दिशाओं में भी अपने शासन को चलानेवाले हे शासक ! अब हम (तुम्हारे उद्यान की) रखवाली करने से असमर्थ हैं। पर्वत जैसे-पुष्ट कंधोंवाला एक वानर उद्यान में आया है और वृक्षों को तोड़ रहा है। आग-लगे वस्त्र के समान शीघ्र ही वह (उद्यान) विध्वस्त हो गया।

(उस वानर के कार्य के बारे में हमसे) कुछ कहते नहीं बनता है। उसने अपने पैरों और हाथों से (उद्यान को) इस प्रकार विध्वस्त कर दिया कि घास और धूल भी नहीं बची है। उसने स्वर्णमय क्रीडा-पर्वत को भी उखाड़कर फेंक दिया, जिससे दिव्य विभूति से सम्पन्न लंका का भी अधिकांश विध्वस्त हो गया है।

रावण ने उनके वचन सुने, तो हँसकर बोला—वाह ! एक मर्कट ने स्वर्णमय वृक्षों से युक्त उद्यान को उजाड़ दिया। राक्षसों के द्वारा सुरक्षित उस क्रीडा-पर्वत को, जिसका उपमान खोजने पर भी कहीं नहीं मिलेगा, जड़ के साथ उखाड़कर फेंक दिया और लंका को विध्वस्त कर दिया। राक्षसों की यह कैसी विजय है ? तुम्हारे जैसे वचन तो कोई मूर्ख भी नहीं कहेंगे।

तब उन देवताओं ने कहा—हे राजन् ! इस धरती की सराहना करनी चाहिए, जो उस वानर का वहन करने की क्षमता रखती है। यदि हम यह कहें कि वह वानर त्रिमूर्त्तियों में से कोई है, तो भी उसके रूप का वर्णन नहीं हो सकेगा। प्रभु हमें सतानेवाले उस (वानर) को अभी चलकर देखिए।

उसी समय हनुमान् ने ऐसा गर्जन किया, जिससे भूमि फट गई और तरंगायमान समुद्र का जल उस दरार में भरने लगा। अष्ट दिशाओं की रक्षा करनेवाले दिग्गज और देवता अपना-अपना स्थान छोड़कर भागे। बिंब-समान रक्त अधरोंवाली राक्षसियों के गर्भ गलित हो पड़े; मानों ब्रह्मांड ही टूट गया हो ! (१–६०)

अध्याय ८

किंकर-वध पटल

(हनुमान् की) वह गर्जन-ध्वनि, जो विशाल पर्वत की कंदराओं में प्रतिध्वनित होनेवाली वज्र की ध्वनि थी, भयंकर समुद्र-गर्जन की ध्वनि और शिवजी के धनुष के टूटने की ध्वनि की समता करती थी, सर्वत्र प्रतिध्वनित होकर उस (रावण) के बीसों कानों में जाकर गूँज उठी, जिससे उसके किरीट-अलंकृत शिरःपंक्ति कंपित हो उठी।

किंचित् मुस्कराकर और किंचित् ईर्ष्या-भाव के साथ उस (रावण) ने असंख्य राक्षसों में से किंकर-वर्ग को आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर आकाश के मार्ग को भी इस प्रकार रोक लो, जिससे वह वानर निकलकर न भाग सके और धीरे-से उसे जीवित ही पकड़कर शीघ्र यहाँ ले आओ।

त्रिशूल, करवाल, मूसल, भाला, तोमर, दंड, भिंडिपाल आदि शस्त्रों को अपने हाथों में लेकर, साकार विष बने हुए, असंख्य राक्षस सत्वर गति से इस प्रकार चल पड़े, जिस प्रकार समस्त संसार को मिटा देनेवाले प्रलयकाल में भयंकर समुद्र उमड़ पड़ा हो।

वे राक्षस ऐसे थे कि इस संसार में युद्ध होनेवाला है, यह कहने मात्र से उनके मन में मधु पीने से भी अधिक आनन्द उत्पन्न हो उठता था। यदि उनका वर्णन करना चाहें, तो वे अरण्य से बढ़े (भयंकर) थे, गर्जन करने में समुद्र से भी बड़े थे, अपनी ख्याति के कारण आकाश से भी बड़े थे।

(उन राक्षसों ने) परस्पर वैर करनेवाले देवों और दानवों, दोनों वर्गों में पारस्परिक सामंजस्य पैदा करने का यश पाया था। यह सोचकर कि यह मर्कट जो पुष्प आदि खाकर जीवित रहता है, क्या वस्तु है, इसे अपना शत्रु मानकर और उसे हराकर अपनी जय मानना भी एक अपयश ही है—उनका मन लज्जा के कारण दुःखी हुआ।

(राक्षस कैसे थे ?) वे करवाल लिये हुए थे, कवच धारण किये हुए थे, वीर-वलय से विभूषित थे, उनकी विशाल भुजाएँ दिशाओं को छूती थीं। उनके हाथ (ऐसे विशाल और काले थे कि) मेघों का उपहास करते थे। उनके सिर आकाश के ऊपर की सीमा को छूते थे। उनके पैर पहाड़ों से टकरा जाते थे (जिससे वे पहाड़ दूर हट जाते थे)। उनके वचन, एक साथ शब्द करनेवाले मेघ तथा नगाड़े की ध्वनि के समान थे।

उनकी भुजाओं पर, देवताओं के द्वारा प्रयुक्त दिव्य अस्त्रों के तथा उनके विरोधी असुरों द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों के आघात के चिह्न पड़े थे। उनके मुँह पर्वत की कंदरा के समान विशाल थे, जिनमें हाथियों और हथिनियों को उठाकर वे भर लेते थे। नवोदित उज्ज्वल तथा वक्र चंद्रकला के समान खड्ग-दंत उनके मुखों में दिखाई पड़ते थे। उनकी आँखों से क्रोध उमड़ रहा था।

चक्र, मूसल, गदा, करवाल, परिघ, शंख, मुद्गर, बरछे, भाले, त्रिशूल, काँटेवाले छड़, वज्रायुध, पाश, परशु, धनुष, दीर्घ बाण, नोकदार लौहदंड—ये सब (उनके हाथों में) चमक रहे थे।

स्वर्णमय आभरण (उनकी देह पर) चमक रहे थे। उनके शस्त्र, आँखें और देह, धूप की-सी ज्वाला उगल रही थीं। उनके कंधे पर्वत के समान पुष्ट और उभरे हुए थे। (वे एक दूसरे को धक्के देते हुए इस प्रकार जा रहे थे कि) पीछेवाले ढकेलते थे, तो आगेवाले पूछते थे कि क्यों ढकेल रहे हो? उसके उत्तर में पीछेवाले कहते—आगे बढ़ते क्यों नहीं? यह न जानते हुए कि आगे बढ़ने के लिए अब स्थान शेष नहीं रहा है, वे क्रोध से आगे रहनेवालों की पीठों को झुलस देते थे।

अपने ओठों को मरोड़-मरोड़कर रखनेवाले (अर्थात्, क्रोध करनेवाले) वे राक्षस, जिनके पास कठोर शस्त्र-रूपी विद्युत् चमकती थी, जो धनुष तथा बहते हुए निःश्वास से युक्त थे, जिनकी देह काले अंतरिक्ष में दिखाई पड़ती थीं, चारों ओर से इस प्रकार बढ़ आये, जैसे प्रलयकाल में वर्षा करनेवाले मेघ उमड़ आये हों।

एक वानर ने अकेले ही शीतल उद्यान को उजाड़कर, क्रीडापर्वत को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। ओह, हमारा वीर दर्प भी कैसा अच्छा रहा!—वे यों सोचते थे। अब इससे बढ़कर अपमान की बात और क्या हो सकती है?—यह कहकर गर्जन करते थे। वे क्रोध से एक के आगे एक लपकते हुए चले जा रहे थे।

धनुष पर डोरी चढ़ाकर किये जानेवाले टंकार, वीर-वलयों से उठी ध्वनि, शंखों के नाद, धमकी और भर्त्सना के शब्द—ये सब पहले पृथक्-पृथक् और फिर, सब मिलकर बहुत बड़ा कोलाहल फैला रहे थे। उस घोर ध्वनि के सम्मुख प्रलयकालीन समुद्र का घोष तथा मेघ-गर्जन भी मंद पड़ जाते थे।

यह सोचकर कि रास्ते पर पैदल चलने के लिए स्थान नहीं है, कुछ (राक्षस) गगन-मार्ग से जा रहे थे। कुछ अपनी भौंहों और हाथ के धनुष दोनों को एक जैसे ही झुकाये, आह भरकर धुआँ निकाल रहे थे। कुछ एक के आगे एक बढ़कर, एक दूसरे के मार्ग को रौंदते हुए क्रोध प्रकट करते थे। कुछ लंका के कम विशाल होने से पर्याप्त मार्ग न पाकर आँखें फाड़कर देखते खड़े थे।

वे तलवारों को उछालते थे। ओठ चबाते थे। अपने बाजू पर ताल ठोकते थे, जिसकी ध्वनि से पत्थर भी टूट जाते थे। पैर उठाकर, फिर उसके रखने के लिए स्थान न पाने से क्रुद्ध हो, धक्का देते थे। अपने दृढ तथा वक्र दंतों को पीसते हुए आग-जैसे जल उठते थे।

सभी (राक्षस) पर्वत के जैसे थे। सभी अनेक शस्त्रों का प्रयोग करने में अभ्यस्त थे, वज्र के समान गर्जन करनेवाले थे, देवताओं पर विजय पाये हुए थे। असुरों के प्राणों को खा जानेवाले थे और वे इस प्रकार चलते थे कि उनके बोझ से धरती धमक जाती थी।

(उन राक्षसों में) राक्षस-नेता थे, नागजाति के वीर थे, जिनके शब्दायमान वीर-कंकण बिजली के समान चमकते थे। उनमें वे लोग भी थे, जिन्होंने भयंकर युद्ध में पराजित होकर भागनेवाले शत्रुओं को देखकर उपहास किया था। वे भी थे, जिन्होंने महान् निधियों के नायक कुबेर की कीर्त्ति के साथ (उसके नगर) अलकापुरी को विध्वस्त

किया था। वे भी थे, जो अपनी भुजाओं की खुजलाहट के कारण अपने साथ युद्ध करने-वाले बलवान् वीरों के अन्वेषण में, संसार-भर में घूम चुके थे।

यदि कहा जाय कि पहाड़ों को ठोकर मारकर हटा दो, समुद्र के जल को पी जाओ, सूर्य को धरती पर गिरा दो, उमड़ते बादलों को (अपने हाथ में लेकर) निचोड़ डालो, सर्पराज (शेषनाग) को पकड़कर भूमि पर पटक दो, पृथ्वी को उठा लो, तो उनमें से कोई अकेले ही, कोई भी काम कर सकता था। इतना ही नहीं—

उनके चलने से जो धूलि उड़ती थी, वह ऊपर के लोकों में पहुँचकर देवों की आँखों में भर जाती थी। वे भयंकर युद्ध के लिए जानेवाले सिंहों के समान, बलवान् तथा हिंस्र व्याघ्रों के समान, अंतरिक्ष में चलनेवाले भूतों के समान, क्षीर समुद्र से (उनके मथने के समय) उत्पन्न (हलाहल) विष के समान थे। वे युद्ध से कभी पीछे न हटनेवाले थे। वे (राक्षस) तीर के समान वेग से जा रहे, जैसे मेघ-समूह पहाड़ की ओर जा रहा हो।

उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। उनके श्वास के साथ धुआँ निकल रहा था। उनके त्रिशूल बिजली के समान (हनुमान् की ओर) बढ़ रहे थे। वे वज्र के समान गरज रहे थे। वे सब दिशाओं से वेग के साथ ऐसे आगे बढ़ रहे थे कि युगांतकालीन प्रभंजन और वज्रसमूह भी (उनके वेग से) लज्जित हो गये। उन्होंने मेघहीन आकाश-जैसे उजड़े हुए अशोकवन को चारों ओर से घेर लिया।

वह (हनुमान्) खुले स्थान में गगनस्पर्शी हिमालय के समान खड़ा था। उसे देखकर धूप फैलानेवाला सूर्य भी हट गया था। उसने शृंगों, शंखों और वर्षाकालिक मेघ-सदृश नगाड़ों की ध्वनियों को, जो धरती के सब प्राणियों को भयभीत करनेवाले युद्ध की सूचना देती थी, अपने कान से सुना और उन राक्षस-वीरों को देखा।

सबसे उत्तम उस (हनुमान्) ने समझा—मैंने यह सोचा कि यह कार्य ही (अर्थात्, अशोक-वन को उजाड़ना ही) उचित है, सो ठीक ही निकला। बुद्धि की परिपक्वता से बढ़कर अच्छा गुण दूसरा क्या हो सकता है? वह हनुमान् यह सोचकर आनंदित हुआ कि सुरक्षित उद्यान को उजाड़ने के कारण एक ऐसा युद्ध छिड़ जायगा, जिसमें वह राक्षसों को हराकर भगा सकेगा।

'अब इसे पकड़ना है', यों कहते हुए हवा के जैसे आगे बढ़कर, दिन में ही रात्रि आ गई हो—ऐसे दिखनेवाले वे राक्षस उस (हनुमान्) को देखकर कह उठे—'यही, यही, यही!' और उज्ज्वल तथा विष-जैसे शस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जिससे धरती, पहाड़, आकाश, अनुपम लंकानगर—सब एक साथ काँप उठे।

उन्होंने बड़े-बड़े नगाड़ों को इस प्रकार बजाया कि मेघ और तरंग-भरे समुद्र के घोष भी छिप गये। वे कंदरा-जैसे अपने मुखों को खोले हुए थे। अत्यन्त क्रोध के कारण (मुखों से) धुआँ निकल रहे थे। वे अपने भारी पैरों को इस प्रकार उठा-उठाकर रखते थे कि दोषहीन, अनेक फनवाले आदिशेष के सब कंधे और गले सिकुड़ गये। वे सब एकत्र होकर इस प्रकार शस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जैसे बाँसों के वन में आग लग गई हो।

उस धर्म-स्वरूप ने वह सब समझ लिया। उसने अपने समीप सुन्दर युद्धवेष में

घेरा डाले हुए उन (राक्षसों) को मारने के लिए उपयुक्त एक दीर्घ और अति विशाल वृक्ष को एक हाथ में ले लिया। वह यह सोचकर आनंदित हुआ कि यह (वृक्ष), मन के अनुकूल सहायता करनेवाले मित्र के समान साथ देगा। वह इस प्रकार ऊँचा हो खड़ा रहा, जिस प्रकार भरे हुए समुद्र को मथने के लिए विशाल पादवाला मंदराचल खड़ा हो।

उसने (उस वृक्ष से, राक्षसों पर) इस प्रकार प्रहार किया कि उससे बड़े-बड़े पहाड़ों को विध्वस्त करनेवाला वज्र भी काँप गया। जैसे अनेक विशाल निर्झरों से युक्त पर्वत हों, वैसे ही पर्वताकार कंधोंवाले उन राक्षसों के, जो एक दूसरे के साथ लिपट गये थे, सिर पिस गये और उनके रक्त-प्रवाहों से धरती के तालाब भर गये।

कुछ ने पंक्तियों में खड़े होकर शस्त्रों का प्रयोग किया। किंतु वे नगाड़े के समान अपनी आँखों को खोकर धरती पर लंबे हो गिर पड़े, उनके चंद्रकलाकार खड्गदंत टूट गये, उनके शिर और कंधे फट गये, उनके रहे-सहे प्राण भी, भगदड़ में कुचल जाने से, निकल गये, उनकी आँतें और रक्त मिलकर कीचड़ बन गये। पूतिगंध (मांस की गंध) से युक्त उनके शरीर पिस गये।

कुछ वीरों के केश, जो युद्ध के उत्साह से उठ खड़े हुए थे, धक्के से निकली हुई ज्वाला में जल उठे। उनकी पीठ और जाँघें चिर गईं। उनके शरीर से रक्त का प्रवाह चक्कर काटता हुआ बह चला। उनकी भुजाएँ कटकर गिर पड़ीं, उनके शस्त्र चूर-चूर हो गये और उनके पेट फट गये। इस प्रकार वे यत्र-तत्र पहाड़ के जैसे पड़े दिखाई देने लगे।

भली भाँति गदा-युद्ध और शरवर्षा करनेवाले घने धनुर्धारी जो वीर घेरकर आनेवाले घने अंधकार के जैसे इकट्ठे हुए थे, उनकी छाती (हनुमान् की) लात लगते ही चूर-चूर हो गई। उनकी आँखों की पुतलियाँ उनके गर्जन के साथ ही निकल गईं। वे थरथराकर लहू उगलने लगे। वे देर तक धूल में लोटते रहे, फिर ऐसे मरे कि उनके प्राण बीजों के समान बिखर गये।

(हनुमान् ने उन राक्षसों को) आसपास के पहाड़ों पर दे पटका, जिससे कुछ (राक्षस) कुबेर की उस अलकानगरी में जा पहुँचे, जो उनको मारने के लिए सन्नद्ध थीं। कुछ ऐसे उड़े कि उनसे आकाश ढक गया। वे ऊपर के सब लोकों में फैल गये। कुछ मेघों से पिये जानेवाले समुद्र में जा गिरे। कुछ चारों ओर छितरा गये। कुछ राक्षसों को हनुमान् ने ऊपर की ओर फेंका, तो वे सशरीर ही इस धरती को छोड़ चले।

हनुमान् ने उनको पकड़कर उनके पैर और हाथ चीर दिये और फिर उन्हें दूर फेंक दिया, तो वे ऐसे जा पड़े, जैसे गति देनेवाले पंखों के कटने पर गिरे हुए पहाड़ हों। हनुमान् ने अपनी विजयकारक पूँछ में कुछ निष्ठुर राक्षसों को लपेटकर ऐसा फेंका कि वे लट्टू के जैसे नाचने लगे।

(राक्षसों की) तलवारें टूट गईं। दृढ धनुष टूट गये, चमकते फरसे और त्रिशूल टूट गये। धवल प्रकाशवाले दाँत टूट गये। शस्त्रों को पकड़नेवाले विशाल कर टूट गये। उनकी आयु भी टूट गई।

(कुछ राक्षसों के) भारी सिर बिखर गये, उभरे हुए चमकते कवच बिखर गये, स्वर्ण के बने वीर-कंकण बिखर गये, स्वर्ण-मणियों के हार झनझनाहट के साथ बिखर गये, आभरणों के विविध रत्न बिखर गये, बड़ी-बड़ी चिनगारियाँ बिखर गईं, कुंडल बिखर गये और आँखों की काली पुतलियाँ भी बिखर गईं।

हाथों में धरे मुद्गर बिखर गये, 'भुशुंडि' (नामक शस्त्र) बिखर गये, चक्र बिखर गये, 'बप्पण' (नामक शस्त्र) बिखर गये, श्रेष्ठ रत्नकिरीट बिखर गये, दंतसमूह बिखर गये, हड्डियों के टुकड़े और चमड़े बिखर गये और देह के चिर जाने ने प्राण भी बिखर गये।

कई (हनुमान् के) पैरों से मारे गये, कई विशाल हथेलियों से मारे गये, कई कंधे के धक्के से मारे गये, कई आग उगलनेवाली आँखों की रोशनी से मारे गये, कई (हनुमान् के) उत्तरोत्तर बढ़नेवाले बल को देखने से मर गये, कई घूँसों से मारे गये, कई अपने हाथों के करवालों से ही (हनुमान् के द्वारा उनके करवालों को छीनकर उन्हीं पर फेंकने के कारण) मारे गये और कई वृक्षों के आघात से मारे गये।

कुछ (हनुमान् के द्वारा) खींचे जाने से मरे। कुछ धक्के लगने से मरे। कुछ अपने स्थान से दूर उड़ा दिये गये। कुछ मुष्टि में पिसकर मरे। कुछ (हनुमान् की) गर्जन-ध्वनि सुनकर मरे। कुछ थप्पड़ खाकर मरे। कुछ (हनुमान् के) घूरकर देखने से मरे। कुछ भय खाकर मरे।

चक्र के समान (तीव्र गति से) चलनेवाले हनुमान् ने कुछ राक्षसों को उसके स्थान में ही पकड़कर मारा। कुछ को लताओं से आवृत बड़े वृक्षों पर पटककर मारा। कुछ को तमाचों से मारा। शव-राशियों में (छिपे हुए) कुछ राक्षसों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारा।

पर्वत के जैसे महान् आकारवाला हनुमान्, अपने ऊपर आकर टकरानेवालों से फिर टकराया। पंक्तियों में आ-आकर धक्का देनेवालों पर फिर धक्का दिया। पर्वत के समान रूपवाले जिन राक्षसों ने समीप आकर उसे बाँधने का प्रयत्न किया, उन्हें बाँध दिया। अपने हाथों से उसकी देह पर थप्पड़ मारनेवालों को थप्पड़ों से मारा।

वह (हनुमान्) ऐसा था कि यदि वे (राक्षस) उसे भूल जाते, तो भी उन्हें मारता। यदि वे उसका स्मरण करते, तो भी उन्हें मारता। विशाल आकाश में उड़ जाते तो भी उन्हें मारता। धरती पर पैदल चलते, तो भी उन्हें मारता। हाथों में चमकते हुए शस्त्र रखे वीर-कंकणधारी राक्षस जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ वह (हनुमान्) चिनगारियाँ निकालता हुआ जा खड़ा होता और उनके प्रयुक्त सब शस्त्रों को अपने महान् कर में लेकर मसल देता।

उन राक्षसों की खोपड़ियों की गुद्दी और मज्जा, कीचड़ और पंकिल मिट्टी के समान धूल से भरी दीर्घ वीथियों में बह चली। नदी की बाढ़ जैसी प्रवहमाण रुधिर-धारा सारी लंका में लहरा उठी और असंख्य नगर-द्वार उस रक्त को उगलने-से लगे।

वेद-समान मारुति ने केवल कल्पना में आनेवाले क्षणमात्र काल में (राक्षसों को)

अपने हाथों और पूँछ में लपेटकर वृक्षों पर दे मारा, तो वे राक्षस-वीर ऐसे पिस गये, जैसे कोल्हू में डाला गया गन्ना हो। रुधिर-रूपी गन्ने का रस बहकर गरजते हुए समुद्र-रूपी पात्र में भर गया।

ज्योंही उसने राक्षसों को उठाकर फेंका, त्योंही उनके धक्के से ध्वजाओं से अलंकृत बड़े-बड़े प्रासाद ढह गये। मंडप गिर गये। बड़ी सूँड़वाले हाथी बैठ गये (मर गये)। गोपुर विध्वस्त हो गये। बड़ी-बड़ी हथिनियाँ और घोड़े भी मर गये।

ज्योंही मारुति ने अपनी दीर्घ बाहुओं से आघात करके उन्हें उठा कर फेंका, त्योंही कुछ राक्षसों ने (अपने प्रासादों पर गिरकर) अपने शरीर के टक्कर से ही उन प्रासादों को विध्वस्त कर दिया। कुछ ने अपने पैरों के आघात से अपनी स्त्रियों को मार दिया। कुछ ने अपने हाथ के शस्त्रों से अपने बच्चों को मार डाला।

हिलते-डुलते रहनेवाले महान् गज के समान उस (हनुमान्) ने राक्षस-स्त्रियों पर दया करके कुछ राक्षसों को यह कहकर कि, 'अब तुम अपने घर जाओ', उन्हें छोड़ दिया। कुछ नवविवाहिता युवतियों को, उनके प्राणसदृश पतियों को दे दिया (अर्थात्, उनको विना मारे छोड़ दिया)। कुछ ऐसी राक्षसियों के पास, जो अपने पतियों से मान किये बैठी थीं, (क्योंकि वे राक्षस उन्हें छोड़कर युद्ध करने चले गये थे) उन राक्षसों को वापस भेज दिया।

वृक्षों में शव थे। चबूतरों पर शव थे। चौकों पर शव थे। समुद्र में शव थे। नगर के मध्य भाग में शव थे। आकाश में शव थे। राक्षस-वीथियों में शव थे। सारी लंका में शव-ही-शव बिखरे पड़े थे।

हनुमान् अकेले ही सब राक्षसों को मारता रहा। वह रुकता नहीं था। तब शरीरों से निकालकर जीवों को ले जानेवाला यम भी थककर ढीला पड़ गया (और अपना काम करना छोड़ दिया)। इसलिए चारों ओर नक्षत्र-मंडल में जीव-ही-जीव थे। मेघ-मंडल में जीव थे। आकाश में सर्वत्र जीव थे। अन्य सब अवकाशों में जीव-ही-जीव भरे थे।[1]

जब यह युद्ध हो रहा था, तब राक्षस मोहग्रस्त-से होकर, अधिकाधिक क्रोध से भरकर, विशाल गगन और दिशाओं में सर्वत्र ऐसे घिर आये, जैसे काले मेघ हों। (उनके बीच) हनुमान् सूर्य-जैसा लगता था।

वे बलवान् राक्षस, अपने कोलाहल से, हलचल से, अति विशाल भयानक शरीर से, काले रंग से, चमक से, दृढ त्रिशूल आदि के मछलियों के समान चमकते रहने से, उथल-पुथल से भरे समुद्र के सदृश थे और मारुति मंदर-पर्वत के सदृश था।

हनुमान् के अपने हाथों, पैरों और पूँछ से उन्हें जकड़ लेने से, पंक्तियों में रहने-वाले उनके किरीट-भूषित सिर टूटकर गिर जाते थे और वे (राक्षस) मरकर लुढ़क जाते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे हनुमान् गरुड हो, जो देवों को भयभीत करके अमृत लिये जा रहा हो और राक्षस उसको घेरकर रहनेवाले सर्प हों।

---

१. भाव यह है कि जीव यमलोक में न जाकर इधर-उधर भटक गये।

वे राक्षस, जो बड़े अहंकार और वैर से क्रुद्ध होकर हनुमान् को घेरे हुए थे, मीन-भरे समुद्र से घिरी हुई धरती-भर में फैले हुए थे। वे हनुमान् के दृष्टिपथ में ज्यों-ज्यों आते थे, त्यों-त्यों मारे जाते थे, फिर भी वे समाप्त नहीं होते थे, किन्तु अधिकाधिक बढ़ते ही चले आ रहे थे। वे हाथियों के जैसे थे और हनुमान् मृगराज के सदृश था।

(राक्षसों के द्वारा अपने शस्त्रों को लेकर) ऊपर फेंकने से, आघात करने से, काटने से, गिराने से, चुभाने से, भोंकने से, छेदने से, चीरने से, टुकड़े करने से, लपेटने से, पकड़ने से, छेद में डालकर कुरेदने से—इस प्रकार की क्रियाओं के कारण, उस भीमाकार हनुमान् की भुजाओं में जो घाव किये गये थे, उनकी गणना करना असंभव था।

धवल दाँतवाले राक्षस अधिकाधिक संख्या में आ-आकर युद्ध करने लगते थे और ऐसा गर्जन कर उठते थे, जिससे अत्यन्त काले समुद्र और वर्षा करनेवाले मेघ भी लज्जित हो जाते थे। लेकिन, हनुमान् की प्रशंसा में देवता जो कोलाहल करते थे, वह उससे भी अधिक बढ़ा हुआ था।

अतिक्रोधी राक्षस पंक्तियों में आकर करोड़ों की संख्या में (हनुमान् पर) टूट पड़ते थे और विविध शस्त्रों का प्रयोग करते थे। उनसे जो घाव उत्पन्न होते थे और देवों, अप्सराओं तथा मुनियों के द्वारा बरसाये हुए जो पुष्प थे—दोनों हनुमान् की भुजाओं पर इस प्रकार लगे थे कि उनमें कोई अन्तर नहीं दिखता था।

उत्तम धर्मवीर (हनुमान्) एक स्थान से दूसरे स्थान में पतंग के समान संचरण करता, आठों दिशाओं में शीघ्रता से पहुँच जाता, उन्नत आकाश में उठ जाता और धरती पर आ खड़ा होता। इससे राक्षस तो थककर गिरते थे और मरते थे, किन्तु हनुमान की देह से पसीना तक नहीं निकलता था। उसने निःश्वास तक नहीं भरा।

रावण की आज्ञा से राक्षस, जो मानों विष खाये हुए हों, हनुमान् पर टूट पड़ते थे और युद्ध में मरते थे। उनमें से कोई भी डरकर पीछे पैर नहीं रखता था या साहस छोड़कर भागता नहीं था। अतः, उनकी संख्या का कम होना अंत तक नहीं ज्ञात हुआ। ऐसे राक्षसों से बढ़कर श्रेष्ठ वीर और कौन हो सकते हैं?

किंकर-वर्गीय जो राक्षस हनुमान् से युद्ध करने आये थे, सब-के-सब दो मात्राकाल में ही मरकर समाप्त हो गये। तुरन्त ही उस उद्यान के प्रहरी (रावण के पास) भागकर गये। उनकी टाँगें पीछे की ओर मुड़ने के लिए आतुर हो रही थीं।[1] उनकी भुजाएँ काँप रही थीं, किंतु भय उनका कंठ पकड़कर आगे की ओर ढकेल रहा था। सहस्रों शवों पर गिरते-पड़ते और लड़खड़ाते हुए वे भाग चले।

वे शीघ्रता से (रावण के निकट) आ पहुँचे। (पर) दुःख और भय के कारण मुँह से कुछ नहीं बोल सके। सारी घटनाओं को हाथों के संकेत से ही कहने की चेष्टा करने लगे। वे धरती पर एक स्थान पर खड़े भी नहीं रह सके। वे चारों ओर

१. प्रहरी रावण के भय से उसके पास नहीं जाना चाहते थे, इसलिए उनके पैर पीछे की ओर मुड़ने के लिए आतुर हो रहे थे।

घूर-घूरकर देख रहे थे। थरथरा रहे थे। रावण ने उनकी वह दशा देखकर ही सारी बातें समझ लीं।

रावण अपने दसों मुखों से आग उगलने लगा, जिससे उसका काला रंग और भी निखर उठा। वह कह उठा—सब मर गये क्या, अथवा सब मेरी आज्ञा की अपेक्षा करके (युद्ध से) भाग गये, या युद्ध में हारकर सबको भूलकर कहीं जा छिपे? क्या हुआ?

तब प्रहरियों ने उत्तर दिया—क्रोधी वीर हारकर नहीं भागे, युद्ध करने से डरकर छिपे भी नहीं, किंतु एक वानर के हाथ वे इस प्रकार मिट गये, जिस प्रकार जान-बूझकर झूठी गवाही देनेवालों का वंश मिट जाता है।

रावण ने, जो क्रोध से ऐसा लगता था, मानों तीनों लोकों को निगलनेवाला हो, अपनी आज्ञा से आये हुए तथा निकट खड़े हुए अष्ट दिक्पालकों को देखा और मन में लज्जा का अनुभव कर फिर (उद्यान-राक्षसों से) कहा—कदाचित् तुमने सब घटनाओं को ठीक-ठीक नहीं जाना है।

वे उद्यान-राक्षस डर से थरथराते हुए फिर कुछ कह नहीं सके। तब विकसित पुष्पों से अलंकृत सिरवाले रावण ने कहा—एक वानर के हाथ से राक्षसों का हत होना, तुमने किसी से सुना या स्वयं तुमने देखा है?

तब उन उद्यान-पालकों ने कहा—एक ओर खड़े रहकर हमने अपनी आँखों से यह सब देखा। उस वानर ने समुद्र के समान उमड़कर आई हुई उस सेना को सब ओर घूम-घूमकर एक पेड़ से मार डाला। वह वानर अभी तक वहीं खड़ा है। (१—६१)

●

अध्याय ६

जंबुमाली-वध पटल

तब रावण ने, जंबुमाली नामक राक्षस को, जो अपने हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा था और जो पर्वत-जैसे पुष्ट कंधों और सर्प की प्रकृति से युक्त था, देखकर कहा—तुम तीव्रगामी अश्वों की सेना लेकर जाओ और उस (वानर) को घेर लो। उसे अपने वश में करके रस्सियों से बाँधकर ले आओ और मेरे क्रोध को शांत करो।

उस (जंबुमाली) ने प्रणाम करके (रावण से) कहा—हे प्रभो! असंख्य राक्षस-वीरों के रहते हुए, तुमने मेरा स्मरण किया है और मुझे यह आज्ञा दी है कि तुम यह कार्य पूरा करो। मुझसे बढ़कर भाग्यवान् और कौन है? यह कहकर जंबुमाली युद्ध करने के लिए यों चला, मानों युद्ध के लिए उत्पन्न रावण का सारा क्रोध साकार होकर चल रहा हो।[१]

---

१. आगे के कुछ पद्य प्रक्षिप्त-से प्रतीत होते हैं।—ले०

जंबुमाली, जिसे बड़ा युद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अपनी सेना, रावण की आज्ञा से आई हुई एक सेना, अपने पिता की सेना तथा अपने मित्रों की बहुत बड़ी सेना को साथ लेकर चल पड़ा।

(उस सेना में) ऐसे हाथी थे, जो वज्र के जैसे चिंघाड़ते थे, लाल आँखोंवाले थे, उज्ज्वल दाँतोंवाले थे, मुखपट्ट से भूषित ललाटवाले थे तथा पर्वत के जैसे भारी रूपवाले थे। (उस सेना में) बड़े-बड़े रथ, विशाल चक्रों और लटकते हुए मुक्ताहारों से भूषित ध्वजाओं से युक्त ऐसे लगते थे, मानों कमलभव (ब्रह्मा) द्वारा सर्जन किये गये (सातों) मेघ एक साथ मिलकर जा रहे हों।

(उस सेना में) ऊँची जाति के अश्व थे, जो पंक्तियों में इस प्रकार जा रहे थे मानों हवा को ही चारों ओर से चार टाँगें लगा दी गई हों और उसमें प्राण डाल दिये गये हों तथा उसपर यम को बिठा दिया गया हो। पैदल सैनिक बड़े उल्लास के साथ इस प्रकार जा रहे थे, मानों विविध प्रकार के, पीली-पीली नाचती हुई पुतलीवाले बाघों को, पर्वतों के झुरमुटों से जगा-जगाकर, वहाँ एकत्र कर दिया गया हो।

(उस सेना में) तोमर, मूसल, तीक्ष्ण खड्ग, चमकते हुए परसे, कुलिश, अंकुश, भली भाँति पैनाये गये त्रिशूल, अग्नि की-सी ज्वाला से युक्त चक्र, चाप, दंड, लौह-शलाकाएँ, चमकते हुए कर्प्पण, कालपाश, बड़े पेड़, पहिये, तीक्ष्ण बाण आदि प्रकाशित हो रहे थे।

चित्र-विचित्र पताकाओं की पंक्तियाँ सब दिशाओं में यों उड़ रही थीं, मानों प्रशंसनीय तीक्ष्ण बरछे, त्रिशूल, लौहदंड आदि शस्त्रों के चुभ जाने से जल-भरे काले मेघों से पानी बरस रहा हो और वह पानी ही पताका के आकार में लहरा रहा हो।

विविध वाद्य वज रहे थे। बड़े-बड़े शंख वज रहे थे। स्वर्णमय रथों के पहिये गड़गड़ा रहे थे। घोड़े अपने-अपने स्थान में रहकर ही शब्द कर उठते थे। हाथी अपने मुँह खोलकर चिंघाड़ रहे थे—ये सब ध्वनियाँ उठकर अंतरिक्ष में जा पहुँचीं और वहाँ देवों के संभाषण को सुनना भी एक दूसरे के लिए असंभव कर दिया।

जब उस जंबुमाली की सेना चलने लगी, तब वह स्वर्णनगरी लंका पिस गई और उससे जो धूलि उठी, उसके छा जाने से साधारण पर्वत भी (स्वर्ण-पर्वत) मेरु के जैसे दीखने लगे और पुराने नगर स्वर्ग के समान हो गये।

उस पापी (जंबुमाली) के बड़े रथ को घेरकर जो सेना जा रही थी, उसमें बड़े चक्रवाले रथ, दस हजार थे। हाथियों की संख्या उससे दुगुनी थी। अश्वों की संख्या हाथियों से दुगुनी थी और पदाति-सेना अश्वों से भी दुगुनी थी।

(उस सेना में) जो रथी वीर थे, वे धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे। नाना माया-विद्याओं में चतुर थे। उन्हें अनेक वरों का भी वल प्राप्त था। उनकी आँखों से उनका प्रताप टपक रहा था। वे अपार शक्तिशाली दृढ भुजाओं से युक्त थे। प्राचीन वीर-जाति में उत्पन्न हुए थे। उनकी पीठ पर तूणीर बँधे थे। उनके वक्षरूपी पर्वत को रक्त-ताम्र के कवच ढके हुए थे।

मत्तगजों पर आरूढ हाथीवान, युद्ध-निपुण ऐरावत गजेन्द्र पर आसीन इन्द्र के

जैसे लगते थे। वे करवाल आदि शस्त्रों के प्रयोग में और अंकुश लेकर हाथी को चलाने की कला में निपुण थे। 'निरुति' (निऋृति ?) के वंश में उत्पन्न थे। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। उनके शरीर सूर्य के जैसे चमक रहे थे।

अश्वों पर आरूढ वे वीर, जो अपने मार्ग की प्रकृति तथा अट्ठारह प्रकार की अश्वगतियों को भली भाँति जानते थे, युद्धोचित शस्त्रों के प्रयोग में पूर्ण निपुण थे। वे युद्ध-क्षेत्र की ओर चले जा रहे थे, किंतु उनके मन-रूपी घोड़े रथियों, हाथीवानों और अश्वारोहियों के सिरों पर पैर रखकर आगे-आगे भागे जा रहे थे।

इधर उज्ज्वल खड्ग-दंतवाले जंबुमाली को वह बड़ी सेना घेरकर जा रही थी, उधर देवों में भय व्याप्त हो रहा था। उसकी विशाल आँखें जाज्वल्यमान थीं। उसके वक्ष का कवच बिजली और धूप के जैसे चमक रहा था। वह स्वर्णमय रथ पर सवार होकर ऐसे जा रहा था कि पर्वत के मध्य से अग्नि उमड़ रही हो।

उधर अशोकवन में स्थित रामदूत भी, यह सोचता हुआ कि अभी तक राक्षस-वीर क्यों नहीं आये, खड़ा था। वह उनकी बाट जोहता हुआ, उद्यान के एक ऐसे (विशाल) तोरण पर चढ़कर खड़ा था, जो उस इन्द्रधनुष के समान ऊँचा था, जिसपर से चंद्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों को छुआ जा सकता है।

वह हनुमान् उस तोरण पर ऊँचे स्थान पर खड़ा था, जिसके स्वर्ण और रत्न, बारी-बारी से अपनी कांति से अंधकार को दूर कर रहे थे। वहाँ खड़ा हुआ वह (हनुमान्), चारों ओर असंख्य किरणों को फैलाते हुए, समुद्र के मध्य दृष्टिगत होनेवाले सूर्य की समता करता था।

हनुमान् ने ऐसा गर्जन किया, जिससे वज्रों के साथ मेघ बिखर गये। तरंग-भरे समुद्र का घोष दब गया। पर्वतों पर झुरमुटों में रहनेवाले सर्प अपने प्राणों के सहित विष उगलने लगे। हिंस्र राक्षसों के मन में भय समा गया। देवता भी काँप उठे। वह निनाद ऐसा था, जैसे वीर राम ने धनुष का टंकार किया हो।

हनुमान् ने अपनी बाँह पर ताल ठोकी, तो अष्ट दिशाओं के दिग्गजों का मद दूर हो गया। दक्षिण दिशा के अधिपति यम का मन चौंक उठा। गगन में अविचल रूप में रहनेवाले नक्षत्र टूटकर पुष्पों के जैसे झर पड़े। धरती और पर्वत फट गये। समुद्र हलचलों से भर गया।

उस समय, राक्षस लहरों से भरे समुद्र के समान शब्द करते हुए, अपने बंधुओं के शवों से टकराकर गिरते-उठते हुए जा रहे थे। मार्ग में बड़ी शव-राशियों के पड़े रहने और उष्ण रक्तधारा के सर्वत्र फैले रहने से वे ठीक से नहीं चल पाते थे और इस दुविधा में पड़े रह जाते थे कि अब किस मार्ग से हम आगे बढ़ें।

जंबुमाली ने वहाँ से अपनी सेना को पृथक्-पृथक् पंक्तियों में (हनुमान् के) दोनों पार्श्वों और सामने से भेजा और स्वयं अपने बड़े रथ को आगे बढ़ाया। तोरण पर स्थित हनुमान्, जिस युद्ध की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा था, उसके निकट आ जाने से उसकी भुजाएँ फूल उठीं।

वह उन्नत हनुमान् (युद्ध के लिए) सन्नद्ध खड़ा रहा। सुन्दर ऊर्ध्व-पुंड्र से सुशोभित उसका ललाट ही, जो घृत-भरी ज्वाला से युक्त दीपक के समान था, उसकी अग्र-गामी सेना थी। उसकी दोनों बाँहें, जिनके घने रोम पुलकित हो रहे थे और तीक्ष्ण नख रूपी खड्ग से युक्त थे, दोनों पार्श्वों की सेनाएँ थीं। उसकी श्रीयुक्त लम्बी पूँछ ही पीछे-वाली सेना थी।

वैरी राक्षस उमड़ते क्रोध के साथ उस वीर (हनुमान्) पर चारों ओर से चमकते हुए शस्त्रों को फेंकने लगे। उस समय शृंग और शंख बज उठे। दृढ धनुषों का टंकार गूँज उठा। विविध वाद्य घोष कर उठे। उनकी माया-विद्याएँ आनन्दित हो उठीं।

तोरण पर खड़ा हुआ हनुमान्, अपने हाथों से, काले समुद्र-समान राक्षस-सेना द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों को पकड़-पकड़कर तोड़ देता और उन्हें समुद्र में फेंक देता। वह राक्षसों को पीस देता। चारों ओर चिनगारियाँ निकल पड़ीं। ज्वाला के समान क्रोध से भरे उस हनुमान् ने एक लौहदंड को कहीं से निकाल लिया।

वह (हनुमान्) कब बैठता, कब उठता, कब (तोरण पर से) उतरता, कब उछलकर ऊपर चढ़ता, कब इधर-उधर घूमता, यह जानना असंभव था। इधर राक्षस कहीं फैले हुए थे, कहीं जमा हुए थे, कहीं दूर खड़े थे, कहीं समीप खड़े थे। हनुमान् ने उन सबको (अपने लौहदंड से) मारकर गिरा दिया।

(हनुमान् ने) अपनी ओर फेंके गये और भयंकर वज्र के समान समीप आनेवाले सब शस्त्रों को बायें हाथ से पकड़कर छिन्न-भिन्न कर डाला और अपने दायें हाथ से (शत्रुओं के साथ) युद्ध करता रहा। उस आघातों से विनाशकारी हाथी पिस गये, बड़े-बड़े रथ टूट गये और अश्वसेना मिट गई।

वे हाथी, जिनके कपोलों से मद की धारा प्रवाहित हो रही थी, अपने ऊपर की ध्वजाओं के साथ अपने दाँतों को भी खो बैठे, अपनी लंबी सूँड़ खो बैठे, अपने विशाल पैरों को खो बैठे, अपने गर्जन को खो बैठे, मद-प्रवाह को खो बैठे और अपने भयंकर क्रोध को भी खो बैठे।

बड़े-बड़े रथ चारों ओर टूट गये। उनके दीर्घ दंड (जो सामने लगे रहते हैं), टूट गये। उनके पहिये टूट गये। ऊपर के वितान टूट गये। उनमें लगी उत्तम घंटियाँ टूट गईं। शीघ्रगामी अश्व टूट गये (अर्थात्, मर गये)। इस तरह वे रथ चूर-चूर हो गये।

अश्व-सेना की यह दशा हुई कि कुछ खंड-खंड होकर पड़े थे। कुछ धूल में लोट रहे थे। कुछ प्राणहीन हो गये थे। कुछ तड़प रहे थे। कुछ आहत हो गये थे। कुछ जल गये थे। कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। कुछ ऊपर उठ गये थे। कुछ मरकर नीचे दब गये थे। कुछ पैरों के टूट जाने से, पहाड़ के जैसे धरती पर बैठ गये थे—इस प्रकार उनका अन्त हो गया।

(हनुमान् के साथ) युद्ध करने के लिए आये हुए पदाति-सैनिक, भयभीत हो गये। आश्चर्य-विमुग्ध हो गये। गिरे और उठे। मोह में पड़ गये। बुद्धिभ्रष्ट हो गये। व्याकुल हो गये। पुनः युद्ध करने जाकर मर गये। कुछ के सिर कटकर गिरे। जो बच गये थे, वे अपनी शक्ति खोकर व्याकुलता से धरती पर लुढ़क गये।

हनुमान् ने हाथियों से ही हाथी को मारकर उन्हें ध्वस्त कर दिया। घोड़ों से घोड़ों को मार गिरा दिया। दृढ धनुर्धारी पैदल-सेना को पैदल वीरों से ही मिटा दिया। घंटियों की पंक्तियों से शोभित रथों को रथों से ही टकराकर भग्न कर दिया।

हनुमान् ने उन राक्षसों को यों रौंदा कि उनके पैर और सिर बिखर गये। विशाल पर्वत-सदृश उनकी भुजाओं और उनके खड्गों के साथ ही उनका भेजा और लहू खौलती हुई कढ़ी बन गये, जिसमें हाथी भी डूब गये।

हनुमान् ने, बलिष्ठ पर्वत-जैसी भुजावाले वीरों को, उनके मुँह के वक्रदंतों को, उनके दीर्घ सूँड़वाले हाथियों को, उनके बड़े-बड़े धनुषों और बरछों को तथा उनके श्लाघा-मय शब्दों को, उनके प्राणों के सहित ही कुचलकर धरती में रौंद दिया।

हनुमान्, (राक्षसों की) धुआँ उठानेवाली ज्वाला जहाँ-जहाँ जाती थी, वहाँ-वहाँ जाता था। ऊँचे शिखरवाले उज्ज्वल रथों की पंक्तियों में जाता था। हाथियों और घोड़ों की सेनाओं में संचरण करता था और वीरों के उज्ज्वल शस्त्रों के मध्य एवं उन (वीरों) के सिरों पर विचरण करता था।

(वह हनुमान्) शीघ्रगामी बड़े-बड़े घोड़ों की पीठ पर, वैरी राक्षसों के सुरभित हार-भूषित वक्षों पर, घंटियों से युक्त एक रथ से दूसरे रथ पर, मद-जल बहानेवाले, पर्वत-जैसे हाथियों पर प्रलयकालीन वज्र के समान कूद पड़ता था।

उस समय हनुमान्, सर्वत्र विना बाधा के चलनेवाले वेत्रदंड के समान, दुर्वार्य दोनों कर्मों को मिटा देनेवाले ज्ञान के समान, धन के लिए हर किसी को अपने स्तनों को (आलिंगन के लिए) देनेवाली वेश्याओं के मन के समान तथा फिरनेवाले चक्र के समान घूम रहा था।

'विष्णु भगवान् के जो भक्त होते हैं, वे उन (भगवान्) के गुणों को प्राप्त करते है।' इस तथ्य को वह दोषहीन (हनुमान्) निरूपित करने लगा और भूमि पर, आकाश में, दिशाओं में, युद्ध करनेवाले बलवान् राक्षसों की आँखों में और मन में पृथक्-पृथक् रूप में विराजमान हुआ।

ध्वजा-युक्त बड़े रथ के साथ, घोड़ों के झुंड को अपने ही विशाल हाथों की मुट्ठी से मारकर धरती पर पीस दिया। क्रोध से गर्जन करनेवाले बड़े दाँतोंवाले पर्वत-सदृश हाथियों को दूसरे हाथ से पकड़कर उनके प्राणों को निचोड़ डाला।

काले रंगवाले, खड्गदंतवाले, पाश-आयुध धारण करनेवाले, क्रोध से अग्नि-सदृश आँखों से घूरनेवाले, तीक्ष्ण परसे धारण करनेवाले, भयंकर गर्जन करनेवाले, जिससे ऐसा लगता था, मानों विरोध करनेवाले अनेक यम ही आ गये हों, राक्षसों को पृथक्-पृथक् दंड देकर उन्हें इस प्रकार मारा कि मानों वह स्वयं रुद्र बन गया हो।

चक्र, तोमर, मूसल, गदाएँ, तीक्ष्ण खड्ग, अनेक रथ, घोड़े, छत्र, ध्वजाएँ— सब एक साथ मिलकर पड़े थे। (उस रण-क्षेत्र में) बहते हुए रक्त-प्रवाह की वीचियों में बड़े-बड़े हाथी भी बह जाते और समुद्र में जा गिरते थे।

हनुमान् से प्रयुक्त लौहदंड के आघात से राक्षसों के सिर उनके शरीरों से टूट-

कर आकाश में उड़ते थे, पहाड़ों से जा टकराते थे, सब दिशाओं में बिखर जाते थे। एक दूसरे से टकरा जाते थे। टुकड़े-टुकड़े होकर युद्धक्षेत्र में पहले गिरे हुए सिरों में फैल जाते थे।

वह यम-सदृश जंबुमाली, उस पर्वताकार मत्तगज के समान खड़ा रहा, जो क्रोध-भरे सिंह के द्वारा अपने यूथ के सब हाथियों के मारे जाने पर अकेले खड़ा रहता है। शहद की जैसी उसकी लाल-लाल आँखों से आग की ज्वालाएँ फूटने लगीं।

पवन से भी अधिक वेगवान् अश्वों की सेना जिन राक्षसों के पास थी, वे (राक्षस) खेत रहे। रक्तप्रवाह और मांस में बहुत गहरे कीचड़ के फैल जाने से रथ के पहिये भी उसमें धँस जाते थे। अब उनसे हटकर जाने के लिए भी मार्ग नहीं रहा। ऐसी दुःस्थिति में वह बेचारा (जंबुमाली) त्वरित गति से आगे बढ़ने लगा।

अपनी देह के घावों कारण पुष्पों से भरे पेड़ के जैसे दिखनेवाले हनुमान् ने (जंबुमाली से) कहा—तुम्हारे हाथ में अब एक ही शस्त्र बचा है। रथ भी वैसा ही (एक ही) है। अपने साथियों को बचाने की शक्ति भी तुझमें नहीं रही। अब तुम अकेले रह गये हो, अतः तुम निश्चय ही युद्ध में मारे जाओगे। तुम क्या कर सकते हो? बलहीन के प्राण लेना उचित नहीं है (अर्थात्, तुझ बलहीन के प्राण लेना नहीं चाहता)। तुम लौट जाओ।

जंबुमाली ने उत्तर दिया—अच्छा! अच्छा! तुम मुझपर दया दिखाने लगे।' और, इतना कहकर हँस पड़ा, तो चिनगारियाँ निकल पड़ीं। वह फिर, बोला क्या मुझे भी तुमने युद्ध में गिरे हुए अन्य राक्षसों के जैसा समझ लिया है?—यों कह-कर, अपने अतिदृढ धनुष से, भली भाँति तपाकर तेज किये गये तीरों को एक, दस, सौ और सौ हजार संख्या में छोड़ा।

जंबुमाली को देखकर हनुमान् ने कहा—अपने हाथ में धनुष लेकर तुम खाली हाथ रहनेवालों के साथ ही अच्छी तरह युद्ध कर सकते हो, किंतु मुझे पराजित करना तुम्हारे लिए असंभव है। यह कहकर अपने दाँतों को प्रकट करके हनुमान् हँस पड़ा और अपनी ओर आनेवाले तीरों को अपने लौहदंड से उसी प्रकार छितरा दिया, जिस प्रकार वर्षा की बौछार को प्रभंजन छितरा देता है।

तब वह राक्षस (जंबुमाली) अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। हनुमान् पर उसके आगे और पीछे छोड़े हुए बाणों को टूटकर गिरते हुए देखकर, वह उस (हनुमान्) के चारों ओर अपने बड़े रथ को चलाकर उसके समीप पहुँचने का मार्ग ढूँढ़ने लगा। परसा-जैसे अपने अति तीक्ष्ण बाणों से उसने हनुमान् के हाथ के लौहदंड को काट दिया।

हनुमान् (अपने हाथ के लौहदंड के टूट जाने से) मन में विचलित हुआ और जंबुमाली द्वारा प्रयुक्त बाणों को अपने हाथ से ही रोकता रहा। फिर, झट उसके रथ पर कूद पड़ा, जिसे देखकर पुष्पालंकृत देवता हर्षध्वनि कर उठे। जंबुमाली के टंकार करनेवाले धनुष को छीनकर उसे उसके कंठ में लगाकर इस प्रकार खींचा कि उस राक्षस का सिर कटकर उसके खुले मुँह को बंद करते हुए, धरती पर जा गिरा।

हनुमान् ने (रथ से बाहर) कूदकर उस रथ को, उसके सारथि को और घोड़ों को कुचलकर चटनी बना दिया। फिर, दीर्घ तोरण पर चढ़कर बैठ गया। तब उस उद्यान की रक्षा करनेवाले देव, जो भीतर से सूखे रहने पर भी बाहर से पुष्ट-से दिखते थे, असंख्य राक्षसों को मरे हुए देखकर भयभीत हो, युद्धक्षेत्र से (रावण को खबर देने के लिए) भाग चले।

प्रवहमाण रुधिर-धारा लंका की वीथियों में बह चली और राक्षस-वीरों के शवों को उनके घरों पर उनकी पत्नियों के सम्मुख, बहा ले गई। लंका-भर में घोर आर्त्तनाद उठा, जिससे वह नगर हिल गया। धर्म-देवता, यह सोचकर कि आज इस (हनुमान्) के द्वारा राक्षसों का बल क्षीण हुआ, प्रसन्न हुआ।

वे देवता (जो रावण के समीप भाग गये थे), स्वर्णहारों से भूषित रावण के प्रासाद में प्रविष्ट हुए। किंतु, रावण से कहने के लिए उनके मुँह से कुछ शब्द नहीं निकलते थे। वे सिसकियाँ भरते हुए खड़े रहे। रावण उन्हें देखकर हँसा और कहा—'डरो मत'। तब उन्होंने उससे निवेदन किया—हे प्रभो ! हमारे सब लोग मारे गये। जंबुमाली भी मारा गया। (यह सब करनेवाला) वह वानर अकेला ही है।

यह सुनते ही, रावण का क्रोध अत्यधिक मात्रा में भड़क उठा। (सारी घटनाएँ) सोचकर वह अपनी आँखों से रक्त की बूँदे गिराने लगा। फिर, यह कहकर कि 'उस वानर को मैं पकड़ूँगा'—वह उठा। यह देखकर पाँच सेनाधिपति उससे इस प्रकार निवेदन करने लगे—(१–५१)

●

अध्याय १०

पंचसेनापति-वध पटल

(पाँच सेनापतियों ने रावण से कहा—) हे पराक्रमी ! मकड़ी पकड़कर खानेवाले एक क्षुद्र मर्कट पर यदि तुम आक्रमण करने जाओगे, तो (उससे तुम्हारे पराक्रम का महत्त्व ही घट जायगा और) जिन दिग्गजों के साथ तुमने, अपनी आँखों से अग्नि-ज्वाला निकालते हुए युद्ध किया था और उन्हें मदहीन करके, उन पर्वतों के जैसे बना दिया था जिनके निर्झर सूख गये हों, अब (वे दिग्गज) पुनः मद प्रवाहित करने लगेंगे (अर्थात्, दिग्गज तुम्हारा भय छोड़ देंगे)।

तुम्हारा एक मर्कट पर झपटना ऐसा ही है, जैसे सुन्दर पंखों और अत्यन्त बल से युक्त गरुड, अपना क्रोध प्रकट करता हुआ, एक मच्छड़ पर झपटे। कैलास-पर्वत (जिसको तुमने पहले उखाड़ा था) लंबी जयमाला से भूषित तुम्हारी भुजाओं के बल को याद करके रात-दिन भय से काँपता रहता है। अब यदि तुम एक मर्कट पर चढ़ाई करने जाओगे, तो उस (कैलास-पर्वत) का वह भय दूर हो जायगा।

यदि तुम एक मर्कट पर आक्रमण करने लगोगे, तो उन त्रिमूर्त्तियों के मुख मंदहास से भर जायेंगे, जो तुम से परास्त हो गये थे। अपनी विजय की आशा छोड़कर तुम भाग गये थे और तुम्हारा नाम भी (डर के कारण) सुनना नहीं चाहते थे। अतः, इस कार्य से बढ़कर तुम्हारी प्रतिष्ठा को घटानेवाला कार्य और कौन होगा? और, इससे लाभ ही क्या होनेवाला है?

हे राजन्! इतना ही नहीं, शत्रु यह सोचेंगे कि तुम्हारी सहायता करनेवाले कोई योग्य साथी नहीं हैं। तुमने (उस वानर से) युद्ध करके उसपर विजय पाने के लिए आवश्यक बल से हीन राक्षसों को भेजा था। यदि तुम विजय चाहते हो, तो हमें इस कार्य पर जाने दो।—उन (पाँच सेनापतियों) ने रावण से इस प्रकार प्रार्थना की। तब रावण ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

वे सेनापति यों आनन्दित हुए, जैसे तीनों लोकों का राज्य उन्हें मिल गया हो। उन्होंने अपने ललाट से धरती को छूकर (रावण को) नमस्कार किया। फिर, राजप्रासाद से बाहर आकर, उन्होंने आज्ञा दी कि अतिदृढ रथों, गजों और तुरंगों की अपार सेना को लेकर राक्षस योद्धा शीघ्र ही आवें।

वल्लुव (घोषणा करनेवाले) लोगों ने हाथियों पर से नगाड़े बजा-बजाकर घोषणा की। उस घोषणा को सुनकर अपार राक्षस-सेना, आग-भरे समुद्र के समान, सभी दिशाओं से उमड़ आई। निरन्तर भारी वर्षा करनेवाले मेघों के समान भेरियाँ बज उठीं। शस्त्रास्त्र ऐसे चमक उठे, जैसे नक्षत्रों से पूर्ण आकाश के मध्य बिजलियाँ कौंध उठी हों।

उस सेना की दीर्घ श्वेत ध्वजाएँ, जिनके दंड मेघों में छिपे थे और जो आकाश-गंगा की तरंगों के सदृश थे, इस प्रकार हवा में फड़फड़ा रहे थे, मानों दुर्दम वीर मारुति के साथ युद्ध में मरकर वीरगति प्राप्त किये हुए उसके शत्रुओं का यश हो।

राक्षस-वीरों ने, अपने योग्य स्वर्णमय वीर-कंकण धारण किये, शरों से पूर्ण तूणीर कसे, कवच पहने, घोड़ों पर बढ़िया जीन रखे, रथ तैयार किये और हाथियों को सजाया।

हाथियों का मदजल नदी बनकर बह चला। उस नदी का जल रथ के पहियों से उठी हुई धूल के मिल जाने से कीचड़ बन गया। उस कीचड़ को घोड़ों के खुरों ने (उसपर दौड़-दौड़कर) धूल बना दिया। उन घोड़ों के लगाम-लगे मुखों से बहनेवाले फेन ने उस धूल को फिर कीचड़ बना दिया।

वेग से दौड़नेवाले रथों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, बड़े हाथियों का चिंघाड़, (सिपाहियों के) वीर-कंकणों की ध्वनि, अनेक युद्धवाद्यों का घोष—इन सबके मिल जाने से प्रलयकालिक समुद्र के गर्जन से भी तिगुनी ध्वनि सुनाई पड़ी।

चक्रवाले रथों की संख्या पचास हजार थी। मुखपट्ट-भूषित हाथियों की संख्या भी उतनी ही थी। प्रलयकालिक पवन के जैसे घोड़ों की संख्या उससे दुगुनी थी। बल-शाली, श्रेष्ठ शस्त्रधारी पदाति-सेना की संख्या उससे भी दुगुनी थी।

ज्यों-ज्यों (सेनापतियों की) घोषणा सुनाई जाती थी, त्यों-त्यों भयंकर राक्षस-सेना बाढ़ के समान आ-आकर एकत्र होती जाती थी। यहाँतक कि उसके हिलने-डुलने

के लिए भी पर्याप्त अवकाश न होने से वह घनी होकर खड़ी थी। भली भाँति तपाकर पैनाये गये चमकते हुए शस्त्र, एक दूसरे से रगड़ खाते थे, तो उनसे चिनगारियाँ इस प्रकार उठती थीं कि मेघसमूह झुलस जाता था।

युद्ध-सज्जा से अलंकृत सुन्दर हाथियों के पार्श्वों में लटकाई गई घंटियाँ ऐसी बजती थीं, जैसे मेघ गरज रहे हों। उनकी अग्नि के समान लाल-लाल आँखों की काली-काली पुतलियाँ तथा उनके कपोलों पर के रत्न इस प्रकार चमकते थे, मानों काले मेघों के मध्य सूर्य चमक रहा हो।

उस समय, घुँघराले केशोंवाली (उन सैनिकों की) पत्नियों, चूड़ियों से सुसज्जित करोंवाली बेटियों, माताओं तथा अन्य बन्धु लोगों ने बड़ी घबराहट के साथ उस घनी सेना के मार्ग को रोग लिया। (जब उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ, तब) वे यह कहकर विलाप करने लगीं कि 'अबतक जो लोग युद्ध करने गये, उनमें से एक भी नहीं लौटा, इसलिए हम भी उस वानर को अपने प्राणों की बलि दे देंगे। सब चलो।'

वे पाँचों सेनापति, जिन्होंने (अपनी आकृति से) साकार काले मेघों के उपमान को भी मिटा दिया था (अर्थात्, काले मेघ भी उनके उपमान नहीं हो सकते थे) और जिनके उपमान, साकार पंचभूत ही बन सकते थे, दोनों ओर से उमड़ती हुई चलनेवाली सेना के मध्य ऐसे जा रहे थे, जैसे विचित्र कलायुक्त रथ पर आरूढ हो सूर्य ही जा रहा हो।

उनके आगे-आगे विविध वाद्य बज रहे थे। वे चिनगारियों की पंक्तियाँ उगलते हुए जा रहे थे। धनुष पर बाण चढ़ाकर उनको टंकारित करते हुए जा रहे थे। वे (पाँचों सेनापति) उन पंचेन्द्रियों के सदृश थे, जो इन्द्रियों को विवेक की शिक्षा देनेवाले मुनियों और ऋषियों के लिए अति निष्ठुर अन्तःशत्रु बनकर रहते हैं।[१]

उनकी दीर्घ भुजाएँ ऐसी थीं कि उनमें इन्द्र का वज्रायुध, दक्षिण दिशा के पति (यम) का अपनी नोक में आग रखनेवाला दंडायुध, शिव का त्रिशूल, ये सब एक छोटी सूई के बराबर भी नहीं चुभ सकते थे।

उन्होंने अपने माथे पर ऐसी कलँगियाँ धारण कर रखी थीं, जिनमें शूरों के संहार-कर्त्ता (सुब्रह्मण्य) के (वाहन) मयूर से छीने गये पंख तथा सृष्टिकर्त्ता के (वाहन) हंस से छीने गये पंख लगे थे।

उनके कानों में सुन्दर कुंडल शोभित हो रहे थे, जो (कुंडल) पूर्वकाल में स्वर्णाभरण से भूषित भुजावाले रावण के वक्ष के धक्के से दिग्गजों के टूटे हुए दाँतों से बनाये गये थे। वे अष्ट दिशाओं के दिग्गजों के मुखपट्ट से बने वीरपट्ट (अर्थात्, कवच) पहने हुए थे।

पूर्वकाल में रावण ने नव निधियों के प्रभु (कुबेर) को परास्त करके और

१. भाव यह है—मुनि लोग ज्यों-ज्यों अपनी इन्द्रियों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं, त्यों-त्यों वे इन्द्रियाँ विपरीत मार्ग पर जाने का प्रयत्न करती हैं; अतः इन्द्रियाँ मुनियों के अन्तःशत्रु बनकर उन्हें पीडा देती रहती हैं। ये पंच सेनापति उन इन्द्रियों के जैसे ही विपरीत मार्ग पर जानेवाले थे।—अनु०

उसको उसकी नगर से भगाकर, वहाँ की सारी संपत्ति लूट ली थी और स्वर्णाभूषणों की राशियाँ वहाँ से उठा लाया था। वे पंचसेनापति उन्हीं आभूषणों को पहने हुए थे।

वे (पंचसेनापति) इतने बलवान् थे कि प्राचीन काल में जब (राक्षसों से युद्ध में पराजित होकर) अपमान को प्राप्त हुआ इन्द्र अपने गज पर आरूढ होकर तीव्र गति से भागने लगा था, तब इन्होंने उसके मंदर-पर्वत के समान गज की पूँछ को पकड़कर यह कहा था कि यदि तुम बलवान् हो, तो इस गज को आगे चलाओ।

एक बार जब लंका के निवासियों ने रावण से निवेदन किया था कि ब्रह्मदेव की आज्ञा का पालन करनेवाला यम, लोगों की विधि के अनुसार काम करता है (अर्थात्, लोगों की आयु के समाप्त हो जाने पर ही उनके प्राण हरण कर लेता है) और तुम्हारे शासन की उपेक्षा करता है, तब नीले रंगवाले रावण के क्रोध को शान्त करने के लिए, उन्हीं (सेनापतियों) ने यम के हाथ-पैर बाँधकर उसे बंदी बना लिया था।

उनके विशाल वक्ष पर्वतों का उपहास करते थे। उनकी दीर्घ भुजाएँ समुद्र की विशाल तरंगों का उपहास करती थीं। उनकी हिंसा-वृत्ति यम की मारक-वृत्ति का उपहास करती थी। उनकी आँखें इस प्रकार आग उगलती थीं कि वे लुहार की भट्ठी का उपहास करती थीं।

प्रज्वलित वडवाग्नि यदि प्रलय मचाती हुई भीषण चंचल ध्वनि के साथ सारे संसार को आवृत करने के लिए दिग्दिगन्तों में व्याप्त हो जाय, या प्रचंड मारुत अधिकाधिक वेग से बहने लगे, या विशाल समुद्र उमड़ उठे, तो भी वे सेनापति उनको दबाने की शक्ति रखनेवाले थे।

इस प्रकार के वे पाँचों सेनापति, अपनी सेना के साथ चलकर उस सुदृढ तोरण-द्वार पर जा पहुँचे और वह सेना चारों ओर से उसे घेरकर खड़ी हो गई। हनुमान् उनके सब कार्यों को ध्यान से देखता रहा।

इन्द्रादि देवताओं ने उन पंचसेनापतियों के बल और उनकी अपार सेना के गर्व को देखा तथा उनके मध्य स्थित एकाकी हनुमान् को भी देखा, तो उनके मन में करुणा, वेदना और भय उत्पन्न हो गये।

विविध शास्त्रों का अध्ययन किये हुए मारुति ने, यह सोचकर कि ये सब राक्षस निश्चित रूप से आज ही मिट जायेंगे, आनंदित हुआ। उसने अपने को चारों ओर से घेर लेनेवाली अन्तरहित सेना को ध्यान से देखा और फिर अपनी भुजाओं को भी देखा।

तब वे असंख्य राक्षस यह सोचकर कि लघु सिरवाले इस मर्कट ने अकेले ही एक बड़े युद्ध में विजय पाई और देवताओं के यश को निर्मूल करनेवाले राक्षसों को विध्वस्त कर दिया, भयग्रस्त हो गये।

उस समय, देवेन्द्र के नगर-द्वार से उठाकर लाये गये और अशोकवन में रखे गये उस तोरण पर (बैठा हुआ) हनुमान् अपने शरीर को इस प्रकार फुलाकर विराट् बनाने लगा कि वह अपनी ऊँचाई के कारण अत्युन्नत आकाशपथ को भी पार कर गया।

वे राक्षस महान् आकारवाले उस हनुमान् को देखकर भयग्रस्त हुए। फिर,

क्रूर स्वभाववाले वे क्रोधोद्विग्न हुए। अपने धनुषों को झुका-झुकाकर बाण छोड़ने लगे। शंख-समूह बज उठा। नगाड़े गरज उठे।

राक्षसों ने अग्नि उगलनेवाले असंख्य आयुधों को हनुमान् पर फेंका। वे शस्त्र (हनुमान् की) देह के रोमों में उलझकर ऐसे लगते थे, जैसे वे (उसकी देह को) खुजला रहे हों। हनुमान् इस (खुजलाने के) सुख का अनुभव करता हुआ आँखें मूँदकर खड़ा रहा।

वीर-दर्प से युक्त सब राक्षसों ने एक साथ ही बड़े क्रोध के साथ हनुमान् पर बड़ा आघात किया। तब हनुमान् ने यह सोचकर कि अब शीघ्र ही उन राक्षसों का वध कर दूँ, जिससे दूसरे राक्षस युद्ध करने के लिए आ जायें, एक लौहदंड अपने हाथ में उठा लिया।

हनुमान् ने अपने लौहदंड से, अपने पर फेंके गये शस्त्रों को, क्रोधी वीरों को, आघात करने के लिए आये हुए अश्वों को, मार्ग को रोकनेवाले रथों को और मेघ-पंक्तियों के समान ध्वजायुक्त गजों को इस प्रकार मारा कि वे धरती पर गिरकर मिट गये।

(वह हनुमान्) मद-प्रवाह से युक्त गजों के दाँतों को उखाड़कर उनसे बड़े-बड़े रथों को मारकर उन्हें ध्वस्त कर देता। उन विध्वस्त रथों के चक्रों को लेकर युद्ध करने-वाले वीरों को मार गिराता। उन गिरे हुए वीरों के खड्ग लेकर घंटियों से भूषित घोड़ों को काट देता।

अपने हाथों में दो रथों को उठाकर ऐसा मारता कि बड़े-बड़े दो गज मरकर धरती पर लोट जाते। अपने दोनों हाथों में दो बड़े-बड़े गजों को उठाकर दोनों ओर से आनेवाले घोड़ों की पंक्तियों को विध्वस्त कर देता।

कभी एक विशाल पहाड़ को उखाड़ लेता और उससे सहस्रों रथों को तोड़कर धरती पर पीस देता। कभी सहस्रों हाथियों को एक बड़े वृक्ष से क्षण-मात्र में मार गिराता।

(राक्षसों के द्वारा) अपने ऊपर चलाये गये हाथियों को छितरा देता। रथों को रौंद देता। घोड़ों को पीस देता। वीरों को धरती पर पटक अपने लौहदंड से कुचल देता। उनके सिरों पर कूद पड़ता, उन्हें काटता और घूँसों से मारता।

वेगवान् घोड़ों से जुते रथों और हाथियों को उठाकर यों फेंक देता कि विशाल दिशाएँ और आकाश उनसे भर जाते। अपने बड़े-बड़े हाथों से, लगाम लगे शीघ्रगामी तुरंगों और विजयी शूलधारी वीरों को पीस डालता।

जब वह अग्निज्वाला उगलनेवाली लाल आँखों से युक्त भयंकर गजों को अपने विशाल करों से उठाकर आकाश में फेंक देता, तब वे गज अपने ऊपर की ऊँची ध्वजाओं के साथ ही समुद्र में गिरकर ऐसे डूबने लगते, जैसे ऊँचे मस्तूलवाली नौकाएँ समुद्र में डूब रही हों।

अनुपम वीर (हनुमान्) के द्वारा उसके विशाल हाथों से समुद्र में फेंके गये रथ, जो घंटियों एवं चक्रों से सुशोभित थे और जिनमें घोड़े जुते हुए थे, ऐसे लगते थे, जैसे समुद्र पर प्रकट होनेवाले, सहस्रकिरण (सूर्य) का रथ हो।

(हनुमान् के द्वारा) ऊपर फेंके गये घोड़े, आकाश से टकराकर, ऊँची तरंगों-

वाले समुद्र में गिर जाते थे, शक्तिहीन हो जाते थे और अपने मुँह से रक्त की धारा उगलते हुए ऐसे लगते थे, जैसी अपने मुख में अग्नि धारण की हुई वडवा (नामक घोड़ी) हो।

(हनुमान् के द्वारा) पूँछ में लपेटकर घुमा-घुमाकर बहुत दूर फेंके गये राक्षस-वीर, समुद्र में गिरकर भी चक्कर काटते हुए ऐसे लगते थे, जैसे वासुकि-रूपी रस्सी से बाँधकर (क्षीर-सागर में) घुमाया जानेवाला मंदर-पर्वत हो।

(हनुमान् के द्वारा) अपने बलिष्ठ हाथों से उठाकर फेंके गये मद-प्रवाहयुक्त हाथियों, रथों और घोड़ों से भी पहले उनके उष्ण रक्त की वेगवती धारा, घोर शब्द के साथ बहती हुई, भयंकर समुद्र में जा गिरती थी।

(मुँह के) दोनों ओर अर्धचंद्र-सदृश खड्गदंतोंवाले, गुहा-सदृश मुँहवाले, अपनी आँखों से मलिन रक्त-धारा और अग्नि-ज्वाला को उगलनेवाले राक्षसों के शव, जिनमें कोशों से बाहर निकाले गये शस्त्र धँसे हुए थे, ऐसे गगनचुंबी ढेर बनकर पड़े थे कि उनसे वह तोरण-द्वार बंद हो गया था।

पर्वत हैं, वृक्ष हैं, श्रेष्ठ लौहदंड भी अनेक हैं। प्राणों का हरण करके ले जाने के लिए यम भी प्रस्तुत हैं। क्रोध से युद्ध करनेवाले राक्षस-वीर भी अनेक हैं। ऐसी स्थिति में हनुमान् के हाथों मारे जाने के अतिरिक्त, वे अपने प्राणों को लेकर कैसे लौट सकते थे?

त्रिमूर्त्तियों में एक भगवान् सुब्रह्मण्य के पिता ललाटनेत्र (शिव) के हाथ के फरसे के समान प्रज्वलित अति दृढ लौहदंड से हनुमान् ने मनोहर वीर-कंकणधारी योद्धाओं के विशाल समूहों को युद्धक्षेत्र में ही मारकर मिटा दिया।

राक्षसों की सेना मिट गई। उसे देखकर देवता आनन्दित हुए। समुद्र से आवृत उस लंका नगरी में हलचल मच गई। रुदन-ध्वनि रूपी समुद्र-घोष सर्वत्र व्याप्त हो गया। तब विजयी भुजाओं से युक्त पाँचों सेनापति आक्रमण करने लगे।

(शवों को) बहा ले चलनेवाले रक्त-प्रवाह के मध्य स्थित (शवों के) ढेरों में (राक्षस-सेनापतियों के) रथों के पहिये धँस जाते थे। फिर भी, उन्होंने बड़ी कठिनाई से आगे बढ़कर अंजना-पुत्र (हनुमान्) का सामना किया और बड़ा कोलाहल करते हुए अनेक सहस्र शर छोड़कर उनसे हनुमान् की देह को चारों ओर से घेर दिया।

उस समय (हनुमान् ने) अपने ऊपर प्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों को अपने हाथों से ही तोड़कर फेंक दिया। उन सेनापतियों में से एक[1] के रथ में लगे हुए, वेग-वर्धक यंत्र (चक्र?) को विध्वस्त कर दिया।

वह सेनापति, अपने रथ के विध्वस्त होने के पूर्व ही अंतरिक्ष में उछल गया। तब हनुमान् ने अंतरिक्ष में स्थित उस राक्षस पर क्रोध के साथ काले स्वर्ण के (अर्थात्, लोहे से) बने दंड को चलाया। लेकिन, उस राक्षस ने अपने धनुष से उस दंड को रोक दिया।

---

१. इसमें वर्णित राक्षस का नाम वाल्मीकि-रामायण के अनुसार 'दुर्धर' है।—अनु०

जब उसका वह बड़ा धनुष टूट गया, तब उसने एक पहाड़ को उठाकर हनुमान् पर फेंका। विवेकी हनुमान् ने अपने हाथ के लौहदंड से ही उस राक्षस के प्राण हर लिये।

अब शेष चारों सेनापतियों ने प्रलयकालिक अग्निज्वाला के समान क्रुद्ध होकर, अपने भयंकर धनुषों को झुका-झुकाकर बाण बरसाये। उनकी आँखों से (क्रोध के कारण) धुआँ निकल रहा था। उस वीर (हनुमान्) की मनोहर भुजाओं से भी रक्त बह निकला।

उस समय वह वीर (हनुमान्) क्रोधोद्विग्न हुआ। मायावी राक्षसों के बल को पहचान लिया। आग उगलनेवाले एक पत्थर को उठाकर उनपर फेंका। किन्तु, उन भयंकर राक्षसों ने उसे चूर-चूर कर दिया।

वे राक्षस अपने धनुष पर जो बाण चढ़ाकर प्रयोग करते थे, वे उस (हनुमान्) के विशाल वक्ष में चुभकर निकल जाते थे। इसी समय बलशाली हनुमान् ने उन राक्षसों में एक को, उसके रथ के साथ ही, अतिशीघ्रता से उठाकर आकाश में फेंक दिया।

ऊपर फेंका हुआ वह रथ, पूरे आकाश में उड़कर, अपना वेग कम होने से, फिर नीचे गिरा। उसके पहले ही वह राक्षस[1] भूमि पर कूद पड़ा। उसके गिरते ही मारुति उसपर लपक पड़ा।

मत्त गज पर कोई भयंकर सिंह लपके—उसी प्रकार वह वीरातिवीर हनुमान् भयंकर क्रोध के साथ उसपर शीघ्रता से लपक पड़ा और उसे इस प्रकार रौंद डाला कि उस राक्षस का पर्वत-जैसा शरीर पिसकर रक्त से लथपथ हो गया।

शेष तीनों सेनापति क्रुद्ध होकर अपने रथ चलाते हुए बाण छोड़ने और भयंकर युद्ध करने लगे। वे हनुमान् के सम्मुख यह कहते हुए गये कि 'अब तुम कहाँ भागोगे?'

पुष्ट और उभरे कंधोंवाला अंजना का सिंह (अर्थात्, अंजना देवी का सिंह-सदृश पुत्र हनुमान्) अपने शत्रुओं के तीनों रथों में से दो को अपने हाथों में उठाकर चल पड़ा, जिसे देखकर देव भी भयभीत हो उठे।

तब उन (दोनों) रथों में जुते हुए वेगवान् घोड़े और सारथि प्राणहीन हो गये। पीन कंधोंवाले दोनों सेनापति (रथों पर से) अंतरिक्ष में उछल गये। उनको अंतरिक्ष में उछलते देखकर, उनके अदृश्य होने के पहले ही, विशाल रूपवाला मारुति उनके निकट जा पहुँचा।

उसने उनके दीर्घ धनुषों को अपने हाथ से तोड़ डाला। उनके तूणीरों और बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया। निःशस्त्र होने पर भी वे दोनों राक्षस पीछे नहीं हटे। किन्तु अंतरिक्ष में ही (हनुमान् के साथ) मल्लयुद्ध करने लगे।

धवल दाँतवाले, काले भयानक शरीरवाले, कंदरा के जैसे खुले हुए मुँहवाले वे राक्षस, क्रोध के साथ (चंद्र को) ग्रसने के लिए आये हुए भयंकर सर्प-ग्रहों (राहु और केतु) के जैसे लगे। अतिपराक्रमी वीर (हनुमान्) सूर्य के समान था।

---

१. इसमें वर्णित राक्षस का नाम वाल्मीकि-रामायण के अनुसार 'विरूपाक्ष' है।—ले०

(हनुमान् ने) रस्सी की जैसी अपनी पूंछ से, किंचित् भी थके विना, युद्ध करनेवाले उन राक्षसों के लम्बे पैरों और भुजाओं को कसकर बाँधा और उन्हें तोड़ डाला। (सूर्य को ग्रसने के लिए आनेवाले) सर्प के जैसे ही वे राक्षस हट गये और मरकर गिर पड़े। तब कुमुद-शत्रु (सूर्य) के समान ही वह (हनुमान्) चमक उठा।

पाँचों में बचा हुआ एक सेनापति अब हनुमान् के सम्मुख आया। उसे अपने सम्मुख देखकर, पर्वत पर झपटकर चलनेवाले सिंह के समान ही (हनुमान्) उस राक्षस के उज्ज्वल सिर पर कूद पड़ा। वह राक्षस अपने प्राण त्यागकर अपने रथ के साथ ही भूमि में धँस गया।

छल, चौर्य आदि कर्मों को पसन्द करनेवाले, नीति-रहित मार्ग पर चलनेवाले, विष से भी अधिक भयंकर लगनेवाले, दूसरों का अहित करना ही अपना धर्म बना लेनेवाले, वे राक्षस (हनुमान् के द्वारा) विजित हुए। भयंकर वैर रखनेवाले वे पाँचों सेनापति पंचेन्द्रियों के जैसे थे और वह एकाकी वीर (हनुमान्) उत्तम ज्ञान के जैसा था।

उस उद्यान की रक्षा करनेवाले सब लोगों ने अपनी आँखों से देखा कि घृतसिक्त फलवाले उज्ज्वल शूलों को धारण किये हुए उन असंख्य राक्षसों में से, जो उस युद्ध में आये थे, जीवित लौट जानेवाला एक भी राक्षस नहीं रहा। इतना ही नहीं, बड़े कोलाहल के साथ सेना संगठित करके आये हुए, यम को भी भय-विकंपित कर देनेवाले, पाँचों सेनापति भी मर मिटे।

अब यह वानर हमें भी मार देगा—उद्यान-रक्षक यह सोचकर दुःखी हुए और उस रावण के समीप जा पहुँचे, जो (सीता पर मुग्ध रावण के) वियोग के कारण दुःखी रहनेवाली स्त्रियों के प्रति कठोर दृष्टि से देखकर उनसे कठोर वचन कह रहा था तथा प्रलय-कालिक अग्नि के समान सत्यलोकों को झुलसा देनेवाली दृष्टि से देख रहा था। उन्होंने उसके कर्ण-द्वारों को झुलसानेवाले ये वचन कहे—

'हे प्रभो! उस (वानर) के आघात से वह सेना मिट गई। पंचसेनापति भी हत हो गये। युद्ध करने के लिए उन राक्षसों ने अति वेग से बाणों की वर्षा की, फिर भी उस वानर ने, अंतरिक्ष के निवासियों को भी हरा देनेवाले उन पाँचों वीरों को उनकी सेना के साथ ही विध्वस्त कर डाला और अब युद्ध करनेवाले किसी राक्षस के न रहने से चुपचाप बैठा हुआ है। (१–६७)

●

अध्याय ११

अक्षकुमार-वध पटल

ज्यों ही उस (रावण) ने (वनरक्षकों के) वचन सुने, त्यों ही क्रोधाग्नि से तप्त उसका निःश्वास उमड़ उठा, जिससे उसके वक्ष की विकसित पुष्पों की माला, उसपर के भ्रमरों के साथ ही, झुलस गई। उसकी आँखें लाख से अंकित-सी (लाल लाल) हो गईं। उसका मन (हनुमान् से युद्ध करने के लिए) सन्नद्ध हो गया। तब उसके पुत्र (अक्षकुमार) ने उसके चरणों पर नत होकर उसे रोका और प्रार्थना की कि मुझे (हनुमान् से युद्ध करने का) अवसर दो।

अक्ष ने रावण से प्रार्थना की कि हे पिता ! त्रिनेत्र (शिव) का वाहन (वृषभ), त्रिलोकों को अपने चरण से नापनेवाले (विष्णु) का वाहन वह पक्षी (गरुड), उस (विष्णु) की शय्या बना हुआ सर्प (आदिशेष) और अष्ट दिग्गज इनमें से कोई (तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए) नहीं रह गया, तो क्या तुम अब एक क्षुद्र मर्कट के साथ युद्ध करने जाओगे? यह कार्य मुझे सौंपकर तुम शान्ति से यहीं रहो।

मेरे रहते हुए, तुमने मेरे ज्येष्ठ भ्राता (इन्द्रजित्) को देवेन्द्र से युद्ध करके उसे बंदी बना लाने के लिए भेजा था। मेरे मन में यह शिकायत अभी तक शेष है। अब यह निर्बल मर्कट ही सही, (उससे युद्ध करके) अपनी उस पुरानी शिकायत को कदाचित् दूर कर सकूँगा। अष्ट दिशाओं में विजय पानेवाले तुम इस युद्ध के लिए मुझे भेजो।—इस प्रकार अक्ष ने रावण से प्रार्थना की।

तीन अपलक नेत्रवाले (त्रिनेत्र) स्वयं छल करके, लंका के लिए ऐसा अपमानजनक कार्य करने के उद्देश्य से, कोमल पल्लवों को खाकर जीवित रहनेवाले क्षुद्र मर्कट का रूप लेकर क्यों न आये हों, तो भी मैं उन्हें अनायास ही पराजित कर दूँगा और अतिशीघ्र बंदी बनाकर तुम्हारे समीप लाऊँगा।

फटे खंभे से निकला हुआ बलशाली नृसिंह ही क्यों न हो, या अपने धवल दंत पर भूमि को उठानेवाला महावराह ही क्यों न हो, वे भी मेरे साथ युद्ध करने के लिए पर्याप्त बल नहीं रखते। यदि वह मर्कट भागकर इस ब्रह्मांड से परे भी चला जाये, तो भी मैं उसे पकड़कर तुम्हारे समीप लाऊँगा। यदि नहीं ला सकूँ, तो तुम मुझे दंड देना।

'मुझे आज्ञा दो'—यह वचन कहकर प्रार्थना करते हुए तथा नतसिर खड़े हुए, वीर-कंकणधारी और अति बलिष्ठ कंधोंवाले (अक्ष) कुमार को देखकर रावण ने कहा—शीघ्रगामी घोड़ों से जुते रथ पर चढ़कर जाओ। पुष्पमालालंकृत (अक्षकुमार) युद्ध-सज्जा करके चल पड़ा।

अक्ष उस रथ पर आरूढ हुआ, जिसे पहले कभी (युद्ध में परास्त होने पर) देवेन्द्र छोड़कर भाग गया था। उस रथ में दो सौ शीघ्रगामी, विजयप्रद घोड़े जुते थे।

राक्षसों ने आशीर्वाद दिये। भेरी-रूपी मेघ गरज उठे। उसके पीछे-पीछे एक विशाल सेना, प्रलयकालिक समुद्र के समान उमड़ती हुई चली।

यदि तरंगों से उमड़ते रहनेवाले समुद्र के मकरों को गिन सकते हैं, तो उस सेना के गजों की भी गिनती कर सकते हैं। उस समुद्र में विचरण करनेवाले मछलियों को गिन सकते हैं, तो उस सेना के रक्तस्वर्ण-निर्मित रथों की भी गणना हो सकती है। यदि (समुद्र की) वालू के कणों की गणना हो सकती है, तो उसकी पदाति-सेना को भी गिन सकते हैं। यदि एक के पीछे एक आनेवाली, (समुद्र की) तरंगों को गिन सकते हैं, तो फाँदकर चलनेवाले घोड़ों की गणना कर सकते हैं।

विजयशील राक्षस-कुल में उत्पन्न बारह सहस्र कुमार, जो प्रलयकाल की उमड़ती हुई अग्नि की घनी ज्वालाओं के सदृश थे तथा (अक्षकुमार के) अनन्यप्राण मित्र थे, रथों पर आरूढ हो, अक्ष को घेरकर चले।

मंत्रियों के पुत्र, ज्ञान एवं राजनीति-विशिष्ट सचिवों के पुत्र, सेनापतियों के पुत्र, रावण की देवस्त्रियों से उत्पन्न कुमार—ऐसे चार लाख वीर रथों पर चढ़कर चले।[1]

तोमर, मूसल, त्रिशूल, उज्ज्वल परशु, वज्र, अंकुश, वाण-युक्त दृढ धनु, बरछे, दंड, भाले, करवाल, गोले, बड़े वृक्ष, पाश, चक्र, पैने और दृढ दंड, सुन्दर वक्रदंड, कप्पण (काँटेदार शस्त्र) आदि—

अनेक शस्त्र एकत्र हो गये थे, जिससे ऐसा लगता था, मानों बहुत-सी बिजलियाँ इकट्ठी हो गई हों। उनसे धूप और चाँदनी, दोनों एक साथ बिखर पड़ती थीं। धरती की घनी धूल उड़कर गगन में छा गई, जिस कारण से धरती स्वर्ग बन गई—(भाव यह है कि धरती की धूल दूर हो गई है और शस्त्रों से धूप और चाँदनी का प्रकाश एक साथ फैल रहा है। अतः, भूतल में स्वर्ग-सा दृश्य उपस्थित हो गया है)।

कौए, भूत, गिद्ध, काल, चिरकाल से दृढता के साथ (राक्षसों के द्वारा) किये गये पाप—ये सब उस (राक्षस-सेना) के पीछे-पीछे चल रहे थे। चीनी की चाशनी के जैसे (मधुर) अधरोंवाली, बरछे-जैसी आँखोंवाली, पुष्ट बाँस-जैसी कंधोंवाली तथा कलापी-जैसी (राक्षस) सुन्दरियों के मन भी, भ्रमरों के झुण्ड के जैसे ही उन (राक्षसों) का अनुसरण करते हुए चले।

(हनुमान् के साथ युद्ध में) मृत हुए राक्षसों की हरिणी-जैसी आँखोंवाली स्त्रियाँ (अपने पतियों को) पुकार-पुकार कर रोती थीं। उनकी उस रुदन-ध्वनि से, समुद्र के गर्जन से, कोलाहल-युक्त सेना से उत्पन्न शब्द से तथा विविध वाद्यों के नाद से, (उन राक्षसों द्वारा) गगनस्थ मेघ-गर्जन की जैसी कंठ-ध्वनि से कहे हुए वचन भी दब जाते थे।

धूप के जैसे प्रकाश को फैलानेवाले रत्न, सूर्य की सर्वत्र फैलनेवाली किरणों को दबा देते थे। चमकते हुए बरछों से निकलनेवाली कांति उन रत्नों से प्रकट होनेवाले प्रकाश को दबा देती थीं। (राक्षसों के) अक्षीण चंद्र-कला जैसे दाँतों का प्रकाश, उनके

---

१. यह पद्य प्रक्षिप्त-सा लगता है।—ले०

आभरणों की कांति को मात कर देता था। इन विविधप्रकाशों के कारण ऐसा विचित्र भान होता था कि वह संसार में प्रकट होनेवाला रात्रिकाल भी नहीं है और दिवस का समय भी नहीं है। (किन्तु दोनों का सम्मिश्रण है)।

ऊँचे रथों में जुते हुए, केसरवाले बड़े-बड़े घोड़े ऊँघने लगे। (राक्षस-वीरों के) कंधे और नेत्र वाम-भाग में फड़कने लगे। घने बाल सर्वत्र रक्तवर्ण की वर्षा करने लगे। (भूख से) दुःखी रहनेवाले कौए (अब आनंद से) शोर करने लगे। मेघहीन आकाश से वज्र गिरने लगे।

वायुपुत्र (हनुमान्) ने देखा कि सेनाओं से घिरा हुआ पुष्पमालालंकृत अक्ष आ रहा है, जिसे देखकर देवेन्द्र भी भयभीत होता था। बहुत दुःखी रहनेवाला यम अब मुस्करा उठा। घूमती हुई (आँख की) पुतलीवाले तथा उछलनेवाले भूत ताल ठोंक-ठोंककर कोलाहल करने लगे।

अति क्रोध से भरे श्रेष्ठ वानर-वीर ने सोचा—'अब यह कौन युद्ध करने के लिए आ रहा है ? क्या इंद्रजित् है ? या स्वयं रावण ही है ?'—फिर उमंग से भर कर कह उठा—'अब मेरी इच्छा पूर्ण हो गई, 'श्रीरामचन्द्र की जय !' कहकर उनके प्रति प्रणाम किया और अपनी मनोहर भुजाओं को देखकर कहने लगा—

'यह मेरे सोचे हुए दोनों व्यक्तियों में से ही कोई है। पूर्वजन्म में मेरा किया हुआ पुण्य अभी शेष है। मेरे प्रभु (राम) भी तपस्या-संपन्न हैं, (अर्थात्, मेरे भाग्य से और राम के तपः प्रभाव से अब रावण या उसका बेटा इंद्रजित् दोनों में से कोई एक मेरे साथ युद्ध करने को आया है), मैं तैयार खड़ा हूँ। यम भी (इस राक्षस को प्राण ले जाने के लिए) समीप में ही आ खड़ा है। अपने विचारे हुए कार्य को मैं अभी पूरा करूँगा।'

(फिर, हनुमान् सोचने लगा—) यह दस सिरोंवाला राक्षस नहीं दिखता (अतः यह रावण नहीं है)। सहस्र नेत्रवाले (इन्द्र) को परास्त करनेवाला (इन्द्रजित्) भी नहीं दिखता। यह तो उन दोनों से भी अधिक श्रेष्ठ विदित हो रहा है। इसका रूप दोष-रहित है, किन्तु फिर भी यह युद्ध करनेवाला कार्त्तिकेय नहीं हो सकता। तब नीलपर्वत के समान, अक्षीण बलयुक्त यह कुमार कौन है ?

यों विचार करता हुआ मुदितमन होकर वह (हनुमान्) गगन के इन्द्रचाप-सदृश उस तोरण पर खड़ा रहा। उसे देखकर क्रूर-कृत्यवाला वह राक्षस (अक्षकुमार) अपने दाँतों को प्रकट करता हुआ हँस पड़ा और बोला—'राक्षस-समूह को मारनेवाला यही मर्कट है ?'

(अक्ष का) वह वचन सुनकर उसके सारथी ने कहा—हे प्रभो ! मेरी बात सुनो। संसार में घटित होनेवाली सब घटनाओं को यथातथ रूप में समझना कठिन है। इसके आकार-मात्र को देखकर इसका उपहास मत करो। पुराने काल में हमारे राजा (रावण) का सामना करनेवाला वाली भी एक वानर ही तो था। अब और क्या कहना है ? अपनी प्रतिज्ञा को दृढ रखकर आगे बढ़ो।—इस प्रकार (सारथी ने अक्ष को) समझाकर कहा।

उस वचन को सुनकर पुंजीभूत विष-सदृश उस अक्ष ने कहा—इस मर्कट ने हमारे

नगर में प्रवेश करके इतना उपद्रव किया है कि केवल इसके प्राण लेकर ही मेरा क्रोध शान्त न होगा। इसके प्राण लेकर, अपने शेष क्रोध को लेकर मैं आगे बढ़ूँगा और तीनों लोकों के समस्त मर्कटों को गर्भ में रहनेवाले भी मर्कटों के साथ ढूँढ़-ढूँढ़कर मिटा दूँगा।

राक्षस-सेना ने घोर शब्द करके अंजना के पुत्र-रूपी उस पर्वत को घेर लिया और उसपर अस्त्र बरसाने लगे, जिसे देखकर दिक्पाल भी भय से पसीने-पसीने हो गये। धरती और आकाश हिल उठे। विजयमाला से भूषित हनुमान् अकेले ही उस सेना पर टूट पड़ा।

राक्षसों ने विविध शस्त्रों का प्रयोग किया। वे सब शस्त्र उस वीर के शरीर पर लगकर टूट गये। घोर गर्जन करनेवाले हाथियों की सेना मर मिटी। रथ विध्वस्त हो गये। फाँदनेवाले घोड़े प्राण त्यागकर गिर पड़े और उनके शव लंका-भर में बिखर गये।

सूखे हुए सरकंडों के वन में आग लग गई हो, इस प्रकार वायुपुत्र उन राक्षस-समूह पर अति त्वरित गति से आक्रमण कर रहा था। उसके हाथों मरनेवाले राक्षसों की कुछ गिनती नहीं रही। मरे हुए जीव भी दक्षिण दिशा में (यमलोक में) प्रयाण करने लगे—ओह यम के पास भी क्या करोड़ों दूत रहते हैं?

आये हुए, आते रहनेवाले और जो अभी आने को थे—सभी राक्षसों के अविराम युद्ध करते रहने पर भी वीर (हनुमान्) का उत्साह कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ता ही रहा। वह युद्ध-रंग में प्रलयकालिक सूर्य के समान प्रकाशमान हुआ और उस प्रकाश में बलिष्ठ भुजावाले सब राक्षस अस्थिहीन जन्तुओं के जैसे जलने लगे।

पंचेन्द्रियों को विषयों से हटाकर उनपर विजय प्राप्त करनेवाले हनुमान् ने राक्षसों को इस प्रकार निहत कर दिया, मानों यम ही, नौकाओं तथा मगरमच्छों से भरे समुद्र से आवृत लंका के सब प्राणियों को लूटकर लिये जा रहा हो। रक्त का प्रवाह ऐसा बहा कि सब प्राणियों को बहा ले चला। सभी के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। मुखपट्टधारी हाथी, रथ और घोड़े पिसकर कीचड़ बन गये और उस प्रवाह में बह गये।

(हनुमान् के साथ) सम्मुख युद्ध करनेवाले मरते रहे। जो युद्ध से हटकर दूर खड़े थे, वे भी ऐसे खड़े थे कि उनके प्राण भी शरीर में रह नहीं पाते थे और वे तड़फड़ा रहे थे। उनमें से कुछ कहते थे—'हाय! सब रथ मिट गये।' कुछ कहते थे—'कठोर दृष्टि, लाल चेहरे तथा दृढ भुजावाले सब पदाति-सैनिक मिट गये।' कुछ कहते थे—'घोड़े ही अधिक संख्या में मिटे।' कुछ कहते थे—'मेघ-सदृश दीखनेवाले मुखपट्ट एवं मदजल से युक्त सब हाथी ही नष्ट हो गये।'

समुद्र के समान विशाल युद्ध-शस्त्रों से युक्त, अति बलिष्ठ राक्षसों की सेना, किसी ग्वालिन के द्वारा विशाल मुखवाले पात्र में जमाये हुए दही की जैसी थी और हनुमान् एक अनुपम मथानी के जैसा था। बरछों को धारण करनेवाले राक्षस सप्त लोकों के निवासी प्राणी थे, जो प्रलयकालिक समुद्र के जैसे उमड़ते हुए आ रहे थे। अपने बल के कारण वायु की समता करनेवाला हनुमान् (वडवा की) अग्नि की समता करता था।

आक्रमण करने के लिए आनेवाली उस राक्षस-सेना को (हनुमान् ने) मारा।

बहुत-से राक्षस मारे गये। रक्त की धारा बह चली। कुछ राक्षस थरथराते हुए पीछे हटे। (अक्ष के) समीप खड़े रहनेवाले भी खड़े नहीं रह सके। अन्त में अक्ष अकेले रह गया। वह अपनी आँखों से आग उगलता हुआ, अति तीक्ष्ण बाणों को चुन-चुनकर प्रयोग करता हुआ अपने रथ को हनुमान् के सामने ले आया।

इन्द्रजित् का अनुज आ पहुँचा। एक ही दिन में अनेक लक्ष वीरों को मारने की शिक्षा पाया हुआ वह (हनुमान्) भी, उसके सामने हुआ। देवता, यह सोचकर कि अब हनुमान् की दशा जाने क्या होगी, व्याकुल हुए और यह विचार करते हुए कि 'अपलक देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त है, यह अच्छा ही हुआ', (अक्ष और हनुमान् का युद्ध देखने के लिए) उन दोनों के सम्मुख जा खड़े हुए।

अक्षकुमार ने अग्नि उगलनेवाले चौदह बाण (हनुमान् पर) छोड़े। हनुमान् ने उन बाणों को अपने हाथ के दंड से रोक दिया और उन्हें विफल बनाकर धरती पर गिरा दिया। तब अक्ष ने अनेक शरों का प्रयोग किया, जिससे वह लौहदंड चूर-चूर हो गया। निःशस्त्र होकर हनुमान् अपने बलिष्ठ हाथों से ही अक्ष के तीरों को रोकता रहा। फिर, अक्ष के अनेक चक्रवाले रथ पर वह झपटकर चला।

रथ पर कूदकर हनुमान् ने कोड़ा हाथ में लिये हुए सारथी को मार डाला। फिर, रथ को चकनाचूर कर दिया। घोड़े को मार डाला। अक्ष के कुछ तीर हनुमान् के वक्ष में प्रविष्ट हो गये, किन्तु उस वीर (हनुमान्) ने उन तीरों की परवाह न की। वह अक्ष के सामने पहुँचकर उसके झुके हुए दृढ धनुष को छीन लिया।

(हनुमान् ने) एक हाथ से उसके दृढ धनुष को पकड़ लिया। तब वह बलवान् (अक्ष) अपने दोनों हाथों से उस धनुष को खींचने लगा। (इस खींचातानी में) वह धनुष टूट गया। तब अक्ष कटार उठाकर हनुमान् की देह में भोंकने गया। किन्तु, इतने में (सीता के पास) संदेश लेकर आये हुए दूत (हनुमान्) ने अपने दृढ कर से उसके कटार को भी छीन लिया। उससे चिनगारियाँ निकलीं और बीच में ही उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

अपनी कटार के टूट जाने से, अक्ष अपनी मुष्टि से हनुमान् को मारने के उद्देश्य से लपककर उसके समीप आया। उसे अपने हाथों में बाँधना चाहा। लेकिन, इतने में हनुमान् की लंबी पूँछ, जिसपर बरछे के जैसे बड़े-बड़े रोम उठे हुए थे, उस (अक्ष) के शरीर से लिपट गई। जिससे वह इधर-उधर मुड़ भी न सका। इस प्रकार अक्ष को पकड़कर उसे हनुमान् ने दबाया।

(अपनी पूँछ से) पकड़कर हनुमान् ने उस (अक्ष) के गाल पर ऐसा तमाचा मारा कि उसके तीक्ष्ण खड्ग जैसे उज्ज्वल दाँत टूटकर गिर गये। उसके कुंडल आदि आभरणों के रत्न ऐसे झड़ पड़े, जैसे मेघों से गरजती हुई बिजलियाँ टूटी हों। उसकी बलिष्ठ ग्रीवा को अपने दृढ हाथ से पकड़कर हनुमान् ने उसपर ऐसा घूँसा मारा कि उसकी आँतें बाहर निकल पड़ीं। ऐसा करके हनुमान् हट गया।

रक्त-धारा जल बनी। युद्ध-रंग लोढ़ा बना। युगान्त में सप्त लोकों के मिट

जाने पर भी न मिटनेवाले यश से संपन्न हनुमान् ने उस अक्ष को, जिसके प्राण अभी नहीं निकले थे, अपने दोनों हाथों से पकड़कर रगड़ा। उसका छितराया हुआ चमड़ा ऐसे लगा, जैसे (लोढ़े से बाहर) बिखर जानेवाला पिसा हुआ चावल हो। स्वर्ग और धरती के रहनेवाले यह दृश्य देखते रह गये।

कुछ बचे हुए राक्षस, अपने घावों से बहते हुए रक्त में ही छिप गये। कुछ भूतों के भांडारों में (अर्थात्, शव-राशियों में) छिप गये। कुछ अतिभय से दिग्भ्रांत होकर मूर्च्छित हो पड़े। कुछ, व्याकुल होकर कहीं जाने में असमर्थ हो, खड़े रहे। जो जहाँ भाग सकता था, अपना हथियार छोड़कर भागा।

कुछ मछली का रूप लेकर समुद्र में जा छिपे। कुछ मृग आदि का रूप लेकर मार्गों के आसपास चरने (का अभिनय करने) लगे। कुछ, मांसभक्षी पक्षियों का रूप लेकर रहे। कुछ ब्राह्मण-वेष धारण कर छिपे रहे। कुछ हिरण की-सी आँखोंवाली (तरुणियाँ) बनकर (हनुमान् के) सम्मुख अपने बाल सँवारते खड़े रहे। कुछ ने यह कहा—'हे प्रभो! हम तुम्हारी शरण में हैं।' कुछ ने यह कहा—'ये ही तुम्हारे शत्रु हैं, हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं।'

कुछ राक्षस, जिनकी पत्नियाँ और बंधुजन उनके समीप आकर उनका आलिंगन करना चाहते (हनुमान् के डर से) यह कह उठे कि हम तुम लोगों के बंधु नहीं हैं, हम देवता हैं और वहाँ से हट गये। कुछ ने (अपने बंधुजन से) कहा कि हम मनुष्य हैं (तुम्हारे बंधु, राक्षस, नहीं हैं) और वहाँ से दूर चले गये। कुछ भ्रमर बनकर (स्वर्ग के) मंदार-वृक्षों के मध्य जा छिपे। कुछ किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रहे और कुछ ने अपने चन्द्रसम वक्र खड्गदंतों को तोड़कर, अपने लाल केशों को काले रंग से रँग लिया।

कुंडल-भूषित कानों से शोभायमान मुखों और कुंकुम-रस से लिप्त स्तनोंवाली (राक्षस)-स्त्रियों के सुगंधित कुमुद-समान महावर-जैसे लाल मुख खुल गये और उनके केश (जिनकी सुगन्धि से उनपर भ्रमर बैठे रहते थे) भ्रमरों को छुड़ाते हुए खुलकर उनके चरणों पर लोटने लगे। उन स्त्रियों की बढ़ी हुई क्रन्दन-ध्वनि लंका-भर में फैल गई और ऊपर के लोकों में भी सुनाई पड़ने लगी।

उदयकालीन सूर्य के जैसे लाल मुखवाली तरुणियों के, जो अपने पतियों के (शवों के) पैर पर गिरकर रो रही थीं, सुन्दर पुष्पालंकृत केशों के साथ राक्षसों का रक्त भी ऐसा फैल गया कि दोनों में कुछ भेद नहीं दिखाई पड़ता था।

उस त्रुटिहीन युद्धक्षेत्र में, चित्र-लिखित प्रतिमा-समान कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ (अपने पति के) शवों पर गिर पड़ती थीं और निःश्वास भरकर, अपलक होकर पड़ी रह जाती थीं। ऐसा होने का कारण कदाचित् यही था कि शरीर से पृथक् होने पर भी उन (राक्षस-वीरों और उनकी पत्नियों) के प्राण एक थे।

कुछ मुग्धाएँ, शरीर के अन्वेषण में चलनेवाले प्राणों के सदृश, (अपने पतियों के पीछे) चलकर मृत वीरों के मध्य अपने पति को पहचान लेतीं और स्वयं भी अपने प्राण त्याग कर स्वर्ग में अपने पतियों से जा मिलती थीं। इससे स्वर्गवासिनी अप्सराएँ (जो स्वर्ग में उन वीरों की संगति पाने की इच्छा रखती थीं) अप्रसन्न हो जाती थीं।

तीक्ष्ण करवाल-सम नयनोंवाली, लक्ष्मी-जैसी एक राक्षसी ने रणनृत्य करके थक-कर पड़े हुए एक कबंध से एक कटे सिर को जोड़कर[1] उससे करबद्ध प्रार्थना करने लगी कि मेरा प्राणपति कहाँ है, तुम मुझे दिखाओ।

चित्रित करने के लिए दुष्कर पुष्पलता-सदृश एक तरुणी अपने पति का (कटा हुआ) सिर हाथ में लिये, (अपने पति के) नाचते हुए कबंध को देखकर कहती थीं—'हे नाथ! अब तुम थक गये हो। (नाचना) बंद करो।' और पुष्प-पल्लव जैसी अपनी बाँहों से उसे आलिंगन में बाँध लेती।

पुष्पित वृक्ष की शाखा-सदृश वे राक्षस-स्त्रियाँ अपने पतियों को ढूँढ़ती-ढूँढ़ती थक जातीं और अपने पतियों के शवों को पहचान कर अनेक वक्षों को आलिंगित करके स्वयं प्राण त्याग देतीं। उस समय उद्यान के रक्षक देवता भयभीत होकर राजा के पास भागे और सारा वृत्तान्त उससे कह सुनाया।

मयपुत्री (मंदोदरी) की मीन-समान आँखों से अश्रु बहने लगा। उसके काले मेघ-जैसे केश धूल पर लोटने लगे। वह ब्रह्मा के प्रपौत्र (रावण) के चरणों पर आ गिरी और छाती पीट-पीटकर रोने लगी।

दोषहीन सुन्दर लंकानगर की सब स्त्रियाँ (रावण के) पदतल पर गिरकर रोने लगीं। उद्यान-रक्षक देवता, यद्यपि आनन्द-चित्तवाले थे, तथापि दिखावे के लिए रावण के चरणों पर गिरकर रोने लगे। (१—५०)

●

अध्याय १२

बंधन पटल

उस समय, (अक्ष की मृत्यु का) वह समाचार पाकर, पौरुषवान् तथा इन्द्र-रूपी बड़े शत्रु को पराजित करके यशस्वी बना हुआ वह राक्षस (इन्द्रजित्) अतिक्रुद्ध हो उठा। उसके कठोर नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी, जिसके भय से सब लोक काँप उठे।

'सान पर चढ़ाया गया बरछा धारण करनेवाला अक्ष मारा गया'—यह बात उस (इन्द्रजित्) के मन को जलाने लगी। वह यों साँस भरने लगा कि उसके साथ चिन-गारियाँ निकल पड़ीं। उस समय वह उस परमज्योति-स्वरूप भगवान् (शिव) के सदृश देदीप्यमान दिखाई दिया, जिस (शिव) ने त्रिपुरों का नाश करने के लिए महामेरु को धनुषाकार में झुकाया था।

वह दृढ चक्रवाले एक ऐसे रथ पर आरूढ हुआ, जिसमें गगन की ऊपरी सीमा

---

१. कवियों ने ऐसा वर्णन किया है कि सिर कटने पर भी वीरों का शरीर कुछ समय तक हाथ में तलवार लेकर नाचता रहता है। इसी की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है।—ले०

को छूनेवाले एक हजार दो सौ भूत जुते हुए थे। वह वीर जो दर्पपूर्ण वचन कह रहा था, उन (वचनों) की ध्वनियों के एक साथ आ टकराने से दीर्घ दिशाएँ फट गईं और ब्रह्मांड का गोला भी फट-सा गया।

उसके वीर-कंकण, मंजीर और भेरी ऐसी ध्वनि कर उठे कि उससे वज्र भी भय-भीत हो गया, देवेन्द्र काँप उठा और पसीना-पसीना हो गया। सब देवों में श्रेष्ठ त्रिमूर्त्ति भी यह सोचकर कि अब अति भयंकर युद्ध होनेवाला है, अपने-अपने व्यापार से विरत हो गये (अर्थात्, सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्य को छोड़ बैठे)।

अपने भाई का स्मरण करके, उसकी आँखों से अश्रु-धाराएँ बहने लगीं। वह अपने धनुष को देखकर क्रुद्ध हो उठा—(भाव यह है कि इस धनुष को रखकर भी मैं अपने भाई की रक्षा नहीं कर सका—यह सोचकर धनुष के प्रति उसके मन में घृणा का भाव उत्पन्न हुआ और अपने प्रति क्रोध भी)। वह अपने ओंठ चबाने लगा। (अपनी अशक्ति को सोचकर अपना उपहास-सा करता हुआ) वह हँस पड़ा। वह सोचने लगा—हाय ! वृक्षों पर विचरण करनेवाले एक क्षुद्रजीवी वानर से अक्षीण बलयुक्त मेरा भाई मारा गया। इससे मेरे पिता का यश कितना घट गया है !

बरछेधारी सैनिकों, धनुर्धारी वीरों और सम्मुख पड़नेवाले पर्वतों को भी तोड़नेवाले करवालों को लिये हुए राक्षसों की गणना मैं नहीं कर सकता। अपने दोनों ओर मदजल की धाराएँ बहाकर कीचड़ फैलानेवाले और छोटी आँखोंवाले हाथियों की संख्या बारह सहस्र थी। रथों की संख्या भी उतनी ही थी।

इन्द्रजित् की सेना में उतने ही (बारह सहस्र) संख्या में अश्व-सेना भी सम्मिलित थी। करवालधारी सेनापति आ मिले थे। तब निरन्तर अश्रुधारा बहानेवाली और क्रोध प्रकट करनेवाली आँखों से युक्त इन्द्रजित् रथ पर आरूढ होकर त्वरित गति से रावण के प्रासाद में जा पहुँचा।

(रावण के) चरणों पर वह गिरा और अपने भाई की मृत्यु पर रो पड़ा। भय-रहित रावण ने भी उसकी बाँह पकड़कर उसे उठा लिया और अपनी छाती से लगाकर अश्रु बहाने लगा। शूल-जैसी आँखोंवाली मंदोदरी आदि स्त्रियाँ छाती पीटकर रोने लगीं। उस समय, सिंहबली इन्द्रजित् ने उन्हें वहाँ से हटाकर रावण से यों कहा—

हे राजन् ! आप कोई हितकारी कार्य नहीं सोचते। दुःख पाने के पश्चात् शोक करने लगते हैं। उस कठोर वानर के बल को ठीक-ठीक पहचानने के उपरान्त भी आपने राक्षसों की पंक्तियों को यह कहकर भेज दिया कि तुमलोग जाकर युद्ध करो। इस-लिए आपने ही तो उस राक्षस-समूह को मरवा दिया है।

हे मेरे पिता ! किंकर, जंबुमाली, नाश-रहित पंचसेनापति इन वीर-कंकण-धारी राक्षसों के साथ गई हुई सेनाओं में से एक भी सैनिक लौटकर नहीं आया (अर्थात्, सब रण-रंग में मारे गये)। वह वानर शंकर, ब्रह्मा और विष्णु—तीनों का स्वरूप माना जा सकता है।

आपने पहले दिग्गजों के बल को, त्रिपुरों का दाह करनेवाले त्रिनेत्र के कैलास

को और त्रिलोक को भी परास्त कर दिया था। अत्र अक्ष को निहत करनेवाले इस वानर की शक्ति की परीक्षा करना चाहते हैं। अब इतना होने के पश्चात् यदि आप यह कहें कि हम जाकर उस वानर से युद्ध करेंगे, तो वह अज्ञ-प्रलाप मात्र होगा।

हे प्रभो! उस प्रतापवान् वानर को, मैं स्वयं जाकर अतिशीघ्र पकड़कर यहाँ लाऊँगा। आप किंचित् भी दुःख न करें। आप चिरकाल तक जीते रहें।—यों कहकर वह, जो देवराज (इन्द्र) को उसके यश के सहित ही बाँध लाया था, चला गया।

काले वर्णवाले राक्षस इस प्रकार उमड़ आये कि लगता था, मानों अब यह विस्तीर्ण धरती भी (इनके लिए) पर्याप्त नहीं होगी। उनके शरीर पर अनेक आभरण चमक रहे थे। बलवान् शत्रुओं के शरीरों में चुभे हुए, विजय-युद्ध करनेवाले करवाल उनके हाथों में थे। उनको देखने से ऐसा लगता था, मानों (पहले सूर्य से) पराजित अंधकार ने तपस्या करके (उस तपोबल से) सूर्य को पराजित कर दिया हो और स्वयं अनेक रूप लेकर, घनी सूर्य-किरणों को अपना आभरण बनाकर पहन लिया हो।

चक्रों से शोभायमान उत्तम रथ, घोड़े, पदाति-सैनिक, क्रोध से लाल हुई आँखों और मुखपट्टों से युक्त हाथी—इनसे सम्मिलित वह सेना, प्रलयकालिक समुद्र के समान सर्वत्र उमड़ आई। उन विलक्षण वीरों के मध्य, वीरोचित कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध वह (इन्द्रजित्) ऐसा लगता था मानों उस प्रलय-समुद्र के मध्य खड़ा हुआ बलवान् मेरु पर्वत हो।

वह (इन्द्रजित्) इस प्रकार चला। वह यद्यपि अष्ट दिशाओं के साथ समस्त लोकों को विजित करनेवाला था, तथापि उस समय, युद्ध करने के लिए सन्नद्ध वीर हनुमान् की दक्षता को सोचकर वह मन में आनंदित हुआ—(भाव यह है कि हनुमान् जैसे महावीर के साथ युद्ध करने का अवसर प्राप्त होने से इन्द्रजित् आनंदित हुआ)। उसे देखकर सब लोग भयभीत हो उठे।

बेल-बूटे की कला से युक्त आभरण पहने हुए (इन्द्रजित्) ने सोचा—अहो! यह युद्धक्षेत्र भी कैसा है? असंख्य शवयुक्त रक्त-प्रवाह में असंख्य शस्त्र-राशियों के पड़े रहने के कारण, यह अपार पर्वतों, समुद्रों और नदियों से युक्त एक विलक्षण लोक ही बन गया है।

वह, जिसने अबतक कभी दुःख का अनुभव वहीं किया था, अब मन में कुछ-कुछ वेदना का अनुभव करने लगा। वह यह विचार कर चिंतित हुआ कि सागर के सदृश महिमावाले और अपने प्रताप के लिए उपमान-रहित (राक्षस-वीर) सब मिट गये। यह वानर तो अकेला ही है। यदि राम आकर हमारा सामना करे तो, हम किस सेना को लेकर उसके साथ युद्ध करेंगे?

आँखों की पुतली-जैसे, प्राण-समान, उत्तम शस्त्रों के प्रयोग में निपुण रक्षक, अकथनीय गुणों से युक्त, अनेक वीरों को धरती पर मृत पड़े हुए देख-देखकर वह क्रुद्ध हो अपने ओंठ चबाने लगा। वह इस प्रकार (वेदना से) कुद उठा, जिस प्रकार पके घाव में किसी ने छड़ी भोंक दी हो।

(दंडक) अरण्य में बुआ (शूर्पणखा) का जो अपमान हुआ, खर का जो संहार हुआ, जिसे मैं अपना सर्वस्व मानता था; वह मेरा भाई जो मारा गया और अन्य जो-जो दुःखद घटनाएँ घटीं—ये सब, दो मनुष्यों और एक वानर के द्वारा ही की गईं। अहो! मेरा पराक्रम भी किस काम का है?—वह इस प्रकार सोचता रहा।

बहनेवाले रक्त से वहाँ एक तरंगित समुद्र ही उत्पन्न हो गया था। मार्ग में पड़ी हुई भारी शवराशियाँ आगे जाने में रुकावट उत्पन्न करती थीं। इस प्रकार के मार्ग पर चलते हुए इन्द्रजित् ने, वहाँ रगड़े गये अपने भाई के मृत शरीर को, तपाये हुए ताँबे जैसी अपनी लाल-लाल आँखों से, क्रोध-भरे मन से, देखा।

उसने, तारक[1] के रक्त-प्रवाह जैसी रक्तधारा में अनुपम भयंकर नरसिंह के तीक्ष्ण नखों द्वारा चीरे गये हिरण्यकशिपु के शरीर जैसे, (अपने भाई के शरीर को) पड़े हुए देखा। (रक्त से उत्पन्न कीचड़ में) धँसकर उसका रथ रुक गया। उसके हाथ का विजय-प्रद धनुष खिसक गया। उसकी क्रोध-भरी आँखों से अश्रुजल, रक्त और अग्नि-कण बरस पड़े। वह स्तब्ध खड़ा रहा।

हे तात! पलाश-पत्र जैसे आकार का बरछा धारण करनेवाले तुम्हारे पिता (रावण) के क्रोध के भय से यम भी (तुम्हारे) प्राण हरण नहीं कर सकता था। अन्यान्य लोकों में रहनेवाले भी तुमसे भयभीत रहते हैं। हे तात, अब तुम हमें छोड़कर किस लोक में जा छिपे हो? (इस प्रकार इन्द्रजित् विलाप कर उठा)।

वह दुःख का सहन नहीं कर सका। प्रेम के (आवेश के) कारण उसकी बुद्धि भी मंद पड़ गई। इस प्रकार जब वह शिथिल हो रहा था, तब क्रोध के भाव ने अधिकाधिक उत्तेजित होकर उसके मन में उत्पन्न शोक को अंतर में ही ऐसे दबा दिया, जैसे नीचे से ठोकी जानेवाले कील को ऊपर से ठोकी हुई कील दबा देती है।

जब इधर यह सब हो रहा था, उसी समय सूर्य के रथ जैसे रथ पर सवार होकर रावण के पुत्र (इन्द्रजित्) को आते हुए वीर-कंकणधारी हनुमान् ने देखा, जो क्रोध से त्रिपुरनाश के लिए सन्नद्ध शिव के समान खड़ा था।

मेरे द्वारा कुछ राक्षस-वीरों के मारे जाने के कारण ही तो अब इसे यहाँ आना पड़ा है। अहो! अब मेरी जय या पराजय दोनों में से एक बात निश्चित है। अभी इसका फैसला हो जायगा। यह जो आ रहा है, वह इन्द्रजित् नामधारी है न?

सुरभित पुष्पों की माला से अलंकृत यह युवक यदि मेरे हाथों मारा जायगा, तो यही कार्य रावण के लिए सबसे कष्टदायक होगा। वह (रावण) अपना विनाश होता हुआ देखकर अकलंक पातिव्रत्यवाली देवी (सीता) को मुक्त कर देगा। इतना ही नहीं, इससे राक्षसों का गर्व भी चूर हो जायगा।

इस (इन्द्रजित्) को मारने से होनेवाला लाभ इतना ही नहीं है। यदि मैं इस प्रतापी को समाप्त कर सकूँ, तो इन्द्र भी अपने दुःख से मुक्त हो जायगा। राक्षसों की

१. तारक एक असुर था, जिसको सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) ने मारा था।

लंका का शासन भी मिट जायगा और मैं स्वयं उस रावण को संपूर्ण रूप से परास्त करनेवाला बन जाऊँगा।

उस समय, त्रिलोक को तीन बार पराजित करनेवाले उस (इन्द्रजित्) के आगे-आगे राक्षस, हाथी, रथ और घोड़े उमड़ते हुए चले आ रहे थे। वे घोर कोलाहल करने लगे, तो वह महान् (हनुमान्) भी क्रुद्ध होकर, एक सालवृक्ष को अपने हाथ में लेकर आगे बढ़ा।

(राक्षस-सेना के) कुछ हाथी (हनुमान् के) पदाघात से गिर पड़े। कुछ हाथी धक्के खाकर लुढ़क गये। इतना ही नहीं, कुछ हाथी उसके पैरों से रौंदे गये। कुछ हाथी (धकेले जाकर) एक दूसरे पर जा गिरे। कुछ हाथी (धरती में) धँस गये। कुछ हाथी अस्तव्यस्त हो गिर पड़े। यों युद्ध में मारे जाकर सारे हाथी धराशायी हो गये।

कुछ रथ विध्वस्त हो गये। कुछ टूट गये। कुछ तहस-नहस हो गये। कुछ ढीले पड़ गये। कुछ अपनी धुरी टूट जाने से गिर पड़े। कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गये—इस प्रकार सब रथ मिट गये।

कुछ घोड़ों के सिर कुचल गये। कुछ की आँखों की पुतलियाँ निकल आईं। कुछ की बलवान् टाँगें टूट गईं। कुछ के घंटियों से भूषित वक्ष टूट गये। कुछ रक्त उगलने लगे। कुछ के स्वर्ण-मंजीरों से भूषित टाँगें टूट गईं। कुछ की ग्रीवाएँ टूट गईं।

राक्षस-वीरों में कुछ (हनुमान् से) पकड़ लिये गये। कुछ चीर दिये गये। कुछ (दाँतों से) काटे गये। कुछ की गरदन तोड़ी गई। कुछ हाथ से मारे गये और कुछ भय से मरे।

राक्षसों के द्वारा, खींचकर झुकाये गये धनुषों से छोड़े गये बाण तथा अन्य शस्त्र उस वीर (हनुमान्) पर जा लगे, किन्तु जिस प्रकार तपाया हुआ लोहा निहाई का कुछ बिगाड़ नहीं पाता, उसी प्रकार वे हनुमान् का कुछ नहीं कर सके। वे जहाँ भी (हनुमान् के शरीर पर) लगे, वहाँ से चिनगारियाँ निकलकर उन्हीं चिनगारियों के साथ इधर-उधर बिखर गये।

इन्द्रजित् ने उमड़ते क्रोध से भरे हुए हनुमान् पर ज्वालामय बाण छोड़े, उनमें कुछ स्वयं झुलसकर धुआँ निकालने लगे। कुछ जलकर भस्म हो गये। वे उस (हनुमान्) को थोड़ी भी पीडा न दे सके। तब इन्द्रजित् अट्टहास करने लगा, जिसे देखकर देवताओं की आँखें व्याकुलता से छलछला उठीं।

रथ, हाथी, घोड़े और राक्षस-वीर, धरती पर (मरकर) बिखरे पड़े थे और पुष्ट कंधोंवाला इन्द्रजित् अकेला खड़ा था। उसके क्रोध तथा अट्टहास बढ़ते जा रहे थे। 'आओ, आओ'—कहते रहनेवाले हनुमान् के निकट वह आ पहुँचा।

उस राक्षस ने अपने दारुण धनुष की डोरी को खींचकर टंकार उत्पन्न किया, तो उससे इन्द्र का सिर भय से काँप उठा। जल से भरे काले मेघों से उठनेवाले वज्रों का समुदाय भय से मोहित होकर काँपते हुए प्राणों के साथ स्थित रह गया। भूमि का निरन्तर वहन करते रहनेवाले महान् सर्प के सहस्र फन भय से थर्रा उठे।

(सब प्राणियों के) शासक प्रभु के दूत (हनुमान्) ने अपनी मनोहर भुजाओं से इस प्रकार ताल ठोका कि उसकी ध्वनि से मानों सारा ब्रह्मांड ही फट गया। पर्वत चूर-चूर होकर गिर पड़े। धरती फट गई। दीर्घ दिशाएँ कड़क गईं और उस इन्द्रजित् के दीर्घ धनुष की डोरी भी टूट गई।

(हनुमान् को देखकर) इन्द्रजित् ने इस प्रकार दर्पपूर्ण वचन कहे—तू बड़ा चतुर है, चतुर है। संसार में तेरे समान चतुर और कोई नहीं है, नहीं है। अपनी शक्ति के कारण तू किसी के साथ युद्ध करने में समर्थ है, समर्थ है। किन्तु, आज तेरी आयु अन्तिम है, अन्तिम है।

तब हनुमान् ने कहा—हे क्रूर राक्षस! अब (तुम लोगों की) आयु का अन्त-काल आ गया है। राक्षस के रूप में लोकों को सतानेवाले तुम्हारे सिद्धान्तों का अन्तकाल आ गया है। तुम्हारे कठोर व्यापारों का अन्तकाल आ गया है और तुम्हारे शस्त्रों का भी अन्तकाल आ गया है। किन्तु, इनका अन्त करने के लिए पर्याप्त शक्ति रखनेवाली मेरी भुजाओं के बल का कोई अन्त नहीं है।

(हनुमान् के ये वचन सुनकर) इन्द्र-शत्रु ने यह सोचकर कि अब इसके इस विश्वास का अन्त कर दूँगा, वज्र से भी अधिक कठोर बड़े बाण उसपर इस प्रकार छोड़े कि उस (हनुमान्) के सिर और वक्ष से नवीन रक्त निकलकर बह चला और देवता तड़प उठे। तब हनुमान्—

अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने शरीर को इस प्रकार बढ़ाकर ऊपर उठाया कि उसे देखने से ऐसा लगा कि अब उसकी ऊँचाई के लिए आकाश भी पर्याप्त नहीं होगा। वह इस प्रकार विशाल होकर फैला, जैसे उसके प्रभु रामचन्द्र का यश ही हो, जिन्होंने अपनी सौतेली माँ के वचनों को सिर पर धारण करके उत्तुंग तरंगों से पूर्ण समुद्र से आवृत भूमि (भरत को) प्रदान कर और धर्म के मार्ग पर सुस्थिर थे।

विशाल अन्तरिक्ष, दसों दिशाओं तथा समस्त लोकों के एकमात्र स्वामी इन्द्र की दृढ बाहुओं को भी बाँधनेवाले उस मेघनाद ने, हनुमान् की उस आकृति के एक भाग को ही देखा, उसे पूरा नहीं देख सका और आश्चर्यचकित हो स्तब्ध खड़ा रहा।

विराट् आकारवाले वीर (हनुमान्) ने अपनी दीर्घ बाँहों को सामने फैलाया और अपने ऊपर (इन्द्रजित् के द्वारा) छोड़े गये बाणों को पकड़कर फिर उसी पर फेंका। उसके पश्चात् उसके दृढ रथ में जुते हुए भूतों और सारथी को ऐसा मारा कि वे सब धरती पर गिर पड़े।

तब युगांतकालिक प्रभंजन के जैसे घोड़ों से युक्त एक अन्य रथ उस (इन्द्रजित्) की सहायता के लिए जा पहुँचा। दृढ भुजाओंवाला वह (इन्द्रजित्) उस बड़े रथ पर झपटकर सवार हो गया और ऊपर कथित विलक्षण युद्ध-कौशल से युक्त विजयी मारुति की देह को चक्रायुध-सदृश अनेक शरों से ढक दिया।

विजयशील मारुति ने अपने वक्ष पर लगे बाणों को इस प्रकार झाड़ दिया कि वे सब नीचे गिर गये। फिर, वह इन्द्रजित् के रथ पर कूद पड़ा और उसके युद्ध-कुशल दारुण

धनुष को, जिसने अनेक बार सब लोकों को परास्त किया था, अपने सुदृढ हाथों से छीन लिया और फिर (रथ से) बाहर निकलकर उस धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

अपने धनुष के टूटने की ध्वनि दिशाओं में फैलकर विलीन हो जाने के पूर्व ही इन्द्रजित् ने अपने हाथ में उस धनुष को उठा लिया, जिसे वज्रायुध से महान् पर्वतों के पंखों को क्रोध के साथ काट देनेवाले इन्द्र ने पहले कभी युद्ध में पराजित होकर भेंट के रूप में उसे समर्पित किया था।

कभी न घटनेवाले क्रोध से युक्त रावण-पुत्र, शत-शत उत्तम बाणों को एक साथ प्रयुक्त करता हुआ जल्दी-जल्दी अपने धनुष को झुकाता रहा। उत्तम वीर (राम का) दूत उन बाणों के प्रहार से, अपनी विराट् देह में अनेक घावों के लगने से कुछ क्षण शिथिल हो चुपचाप खड़ा रहा।

देवता पहले (जब हनुमान् ने इन्द्रजित् के धनुष को तोड़ दिया था, तब) बड़ा कोलाहल करने लगे थे और अब (हनुमान् को इन्द्रजित् के बाणों के कारण शिथिल होता हुआ देखकर) अत्यन्त दुःखी हो व्याकुल हो उठे। किन्तु, हनुमान् शीघ्र ही एक विशाल वृक्ष को हाथ में लेकर इस प्रकार घुमाने लगा कि (इन्द्रजित् के द्वारा) प्रयुक्त बाणों की पंक्तियाँ टूट-टूटकर नीचे गिरने लगीं। फिर, उसने स्वर्णमय तथा माणिक्य-जटित दीर्घ किरीट को धारण करनेवाले (इन्द्रजित्) के सिर पर आघात किया।

ज्योंही वह भारी वृक्ष उसके किरीट-भूषित शिर पर लगा, त्योंहीं देवताओं को पराजित करनेवाला वह (इन्द्रजित्) विमूढ-सा हो गया। ऊँचे पर्वत पर बहनेवाली जल-धारा के समान, उसके शिर से रक्तधारा बह चली, मानों उसके किरीट के माणिक्यों के कांतिपुंज ही पिघलकर बह चले हों।

इस प्रकार वह (इन्द्रजित्) कुछ क्षण स्तब्ध खड़ा रहा। फिर, संज्ञा पाकर अपने चन्द्रकला के समान दाँतों को पीसकर एक ही जैसे सहस्र बाणों को एक के पीछे एक छोड़ा; जिससे पर्वताकार हनुमान् की देह क्षत-विक्षत हो गई और देवता, देवर्षि तथा असुर विस्मय से स्तब्ध हो गये!

(इन्द्रजित् द्वारा) प्रयुक्त शर उसके वक्ष तथा बाँहों में धँस गये, तो हनुमान् घृणा के साथ, अत्यन्त क्रुद्ध होकर ज्ञान-रूपी (रामचन्द्र) के धनुष के निकले हुए बाण से भी अधिक वेगवान् होकर (इन्द्रजित् पर) झपटा और उसको उसके बड़े रथ के साथ ही उठाकर ऊपर फेंक दिया तथा आनन्द से गरज उठा।

आँख की ऊपरी पलक निचली पलक के साथ आ मिले, इसके पूर्व ही (अर्थात्, पलक मारने के समय के अन्तर ही) अपार बल तथा पराक्रम से युक्त शत्रु (इन्द्रजित्), अपने रथ के साथ आकाश की ऊपरी सीमा से जा टकराया और इस प्रकार धरती पर आ गिरा कि उसके घावों से नवीन रक्त नव गंध को फैलाता हुआ, बह चला।

किन्तु इतने में ही, बिजली के समान चमकते हुए दाँतोंवाला (इन्द्रजित्) आकाश में उठ गया। इसी अन्तर में, उड़द के लुढ़क जाने के पहले ही (अर्थात्, क्षण

भर में ही) मारुति ने उसकी सेना में स्थित बड़े-बड़े दृढ रत्नमय रथों को अपने पदाघातों से चूर-चूर कर दिया।

पुनः रथहीन होकर तथा फिर (हनुमान् के) सामने खड़े होने की शक्ति से रहित होकर, अग्नि के समान तपते हुए क्रोध के साथ आकाश में संचरण करते हुए उस (इन्द्रजित्) ने, प्रतिकार करने का अन्य कोई उपाय न देखकर, सोचा कि इसपर ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग करना उचित होगा, जिसका कोई प्रतिद्वंदी शस्त्र नहीं है।

(इन्द्रजित् ने) पुष्प, धूप, दीप तथा पुष्पवर्ण धवल तण्डुल को अविचलित ध्यान के साथ (ब्रह्मा को) अर्पण करके आराधना की और समस्त देवों तथा समस्त लोकों की सृष्टि करनेवाले दिव्यजन्मा चतुर्मुख के अस्त्र को अपने विशाल कर में लिया।

(इन्द्रजित् ने) अपने विजयप्रद धनुष को लेकर उसपर लंबी डोरी चढ़ाई और अति वेगवान् हनुमान् की भुजाओं को लक्ष्य करके उस शर का प्रयोग किया। तब धरती काँप उठी। दिशाएँ काँप उठीं। चन्द्रलोक काँप उठा और मेरु-पर्वत भी काँप उठा।

उस अवाय ब्रह्मास्त्र ने अग्नि उगलते हुए, प्रचंड आँखोंवाले सर्पों के राजा का आकार धारण किया और उस महान् आकृतिवाले हनुमान् की भुजाओं से लिपटकर उन्हें कसकर बाँध दिया, जिस दृश्य को देखकर बलवान् गरुड चौंक उठा।

उस ब्रह्मास्त्र ने (हनुमान् की) दृढ देह को बाँध दिया। तब वह महिमावान मारुति, उस दिन उसको अनुसरण कर लंका में आये हुए धर्मदेवता के अश्रुओं के साथ एवं (अशोकवन के) उस स्वर्णमय तोरण के साथ, धरती पर गिर पड़ा, मानों युगांत में सर्प-ग्रस्त (राहु-ग्रस्त) होकर चन्द्रमा गगन से नीचे गिर पड़ा हो।

नीचे गिरा हुआ मारुति यह सोचकर कि इस महिमामय ब्रह्मास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करना तथा इसके बंधन को तोड़कर मुक्त हो जाना उचित नहीं है, वैसे ही नेत्र मूँदे पड़ा रहा। वह राक्षस (इन्द्रजित्) यह सोचता हुआ कि अब उसकी शक्ति मिट गई है, उसके समीप आया।

जब इन्द्रजित् (हनुमान् के) समीप आया, तब अपने प्राण लेकर दिग्दिगन्तों में भागे हुए सब राक्षस, जो हनुमान् के गिरने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, दौड़कर आये और हनुमान् को घेर कर खड़े हो गये। हनुमान् की देह से लिपटे हुए, रंध्रपूर्ण दंत-वाले उस सर्प को पकड़कर वे (बँधे हुए हनुमान् को) खींचने लगे, उसे धमकाने और चिल्लाने लगे।

'अब इस वानर का बल समाप्त हो गया'—यों सोचनेवालों (राक्षसों) के कोला-हल के साथ उमड़ती हुई लंका नगरी, तरंगपूर्ण समुद्र-जैसी हो उठी। (हनुमान् को) सभी ओर से लिपटकर पड़ा रहनेवाला वह सर्प वासुकि के समान था। राक्षस देवता-जैसे थे और हनुमान् मन्दर-पर्वत-जैसा था।

वह काला सर्प (ब्रह्मास्त्र) उस (हनुमान्) की स्वर्णमय देह से लिपटा पड़ा रहा। धर्म-देवता का एकमात्र साथी बनकर रहनेवाला हनुमान् उस महा मेरुगिरि की समानता

करता था, जो प्रभंजन के समय, बलवान् सर्पराज (आदिशेष) के द्वारा चारों ओर से घिरा पड़ा हो।[1]

पुरुषों ने शोर मचाया। स्त्रियों ने भी, अन्तरिक्ष में, ऊपर के लोकों में और अष्ट दिशाओं में अपनी प्रतिध्वनि को फैलानेवाले मेघों के समान कोलाहल किया। राक्षसों ने जो बधाइयाँ दीं, उनकी कोई सीमा नहीं रही। यदि कहना चाहें, तो यों कह सकते हैं कि वह लंकापुरी तब उतनी ही आनन्दित हुई, जितनी कि वह पहले कभी देवेन्द्र को बाँधकर लाने पर हुई थी। (१-६३)

●

अध्याय १३

बन्धन-मुक्ति पटल

वे (राक्षस) इस प्रकार कहते हुए दौड़े आ रहे थे—इस वानर को तीरों से मारो। इसपर बरछे से प्रहार करो। इसे कुल्हाडी से काटो। इसकी आँतों को निकाल दो। इसके टुकड़े-टुकड़े कर दो। इसे खा डालो। यदि यह जीवित रहे, तो हमारा भला नहीं होगा।

काजल-लगी आँखोंवाली (स्त्रियाँ) और पुरुष, सत्र फनवाले सर्प-जैसे फुफकार भरने लगे। कुछ यह कहते हुए कि, यह वानर अबतक जीवित क्यों रहने दिया गया है?—उसको घेरकर उसे मारने का यत्न करने लगे।

कुछ कहते थे—क्या इसे विष में बुझे शस्त्रों से पीडित कर मारें अथवा इसके सिर पर वज्र से प्रहार करें या इसे समुद्र में डुबोकर मार दें। नहीं तो, इसे अग्नि में डालकर जला दें।

कुछ राक्षसों ने यह कहते हुए (हनुमान् को) घेर लिया कि हमारे पिताओं को (जिन्हें तुमने मारा है) लौटा दो, हमारे अनुजों को लौटा दो, हमारे अग्रजों को लौटा दो। तभी तुम जा सकते हो। और, अनेक राक्षस यह कहकर कि यह वानर स्वर्ग-लोक के देवताओं की आज्ञा से ही यहाँ आया है, उसके प्राण लेने की चेष्टा करने लगे।

पर्वत के समान बलवान्, अपने प्राणाधिक पतियों से हम अबतक कभी विलग नहीं हुई थीं। आज इस वानर के कारण हम उनसे वियुक्त हो गई हैं। अब हम कबतक रोती-कलपती रहेंगी? इसी वानर के सिर पर चढ़कर हम अपने मंगल-सूत्रों को तोड़ दूँगी।—यों कहकर अनेक राक्षस-स्त्रियाँ रोने लगीं।

(हनुमान् को) बाँधकर ले जानेवाले राक्षसों के सामने से सारी विजयिनी

---

१. एक बार आदिशेष और वायुदेव में स्पर्धा चली। अपने-अपने बल की परीक्षा के लिए उन्होंने यह बाजी लगाई थी कि वायु मेरु के शिखर को उड़ा देने की चेष्टा करे और आदिशेष उस शिखर से लिपटकर उसे बचाने की कोशिश करे। अन्त में उस शिखर का एक भाग टूटकर दक्षिण में जा गिरा, जहाँ बाद में लंका का निर्माण हुआ। त्रिकूटाचल मेरु-शिखर का वही टूटा हुआ अंश है। —ले०

लंकापुरी दौड़ी चली आ रही थी (अर्थात्, नगर के सब लोग उसे देखने के लिए आ रहे थे)। उस समय लंका में जो कोलाहल मचा, वह ब्रह्मांड-भर में छा गया। उस कोलाहल को सुनकर, अपने मृत पतियों का स्मरण करके रोनेवाली कुंडल-अलंकृत मुखवाली राक्षसियाँ भी अपना दुःख भूल-सी गईं।

हनुमान् के द्वारा उठा-उठाकर फेंके गये, तीक्ष्ण, अग्नि-सदृश शस्त्रधारी राक्षसों, बड़े-बड़े हाथियों, ध्वजालंकृत रथों और अश्वों के लंका के प्रासादों पर गिरने से वे प्रासाद इस प्रकार ध्वस्त हो पड़े थे, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत ढह जाते हैं। हनुमान्, उन वीथियों में उन्हें देखता हुआ चला।

राक्षसियों ने हनुमान् को लंका की वीथियों में आते हुए देखा। किन्तु, यह न देखकर कि उसकी भुजाएँ बँधी हुई हैं, वे भय के कारण अपना पेट मलती हुई भाग चलीं। उसकी भुजाएँ पुराने वृक्षों के जैसी थीं, जिनपर चींटियों के झुंड पंक्तियों में चल-चलकर उनको आवृत कर रहे हों। उन्हें भागते देखकर बहुत-से राक्षस, जिनके ओंठ उठे हुए दाँतों के कारण उभरे हुए थे, भ्रान्तचित्त हो खड़े रहे—(भ्रांत इसलिए हुए कि राक्षसियों को भागते देखकर उन्होंने सोचा कि वानर ने और कुछ विध्वंसकारी कार्य आरम्भ कर दिया)।

कुछ राक्षस भय के कारण चिल्ला भी न पाते थे, इसलिए मौन हो खड़े थे। कुछ (हनुमान् के) युद्ध-कौशल के बारे में चर्चा कर रहे थे। अनेक राक्षस (हनुमान् को) देख-देखकर काँप रहे थे। कुछ नगर से बाहर भागे जाते थे।

कुछ कह रहे थे—अत्यन्त क्रोधी, कठोर दंतवाले सर्प का बंधन भी इस (वानर) के लिए पुष्पहार के जैसा हो गया है। इसका मुख अभी तक उज्ज्वल और प्रशांत ही है (अर्थात्, यह अभी निस्तेज और बलहीन नहीं हुआ है)। अतः, इसे अभी राजा के सम्मुख ले जाकर उपस्थित न कीजिए। किन्तु, अच्छी तरह सोच-विचार कर कुछ कीजिए।

कुछ राक्षसों ने यह अनुमान कर लिया कि यह जो अब बंदी बनकर अपमान को सह रहा है, प्रभावपूर्ण नाग-पाश के बंधन में पड़ने के कारण नहीं, किन्तु किसी भिन्न उद्देश्य से ही ऐसा कर रहा है। वे हनुमान् को देखकर नमस्कार करके कहते—हमारे ऊपर अपनी कृपादृष्टि डालो। हम पर क्रोध मत करो।

अपार बलवाले, अपने भुजबल के कारण गरुड से भी तिगुने शक्तिशाली पचास सहस्र सैनिक मिलकर पीतवर्ण वीर-कंकणधारी हनुमान् के सर्प-पाश को पकड़कर खींचे लिये जा रहे थे।

अनेक राक्षस कह रहे थे—बल और पराक्रम से युक्त राक्षसों के गर्व को मिटाने के उद्देश्य से, यम स्वयं अपने अविनश्वर आकार को छिपाकर इस वानर के रूप में आया है और युद्ध किया है।

चूड़ियों की पंक्तियाँ पहने हुए स्त्रियाँ और पंक्तियों में खड़े पुरुष महलों के आँगनों में, सुन्दर स्वर्ण-प्रासादों के छज्जों पर, झरोखों में और भेरी-नाद से प्रतिध्वनित द्वारों में सर्वत्र बड़ा कोलाहल करते हुए एकत्र हो गये।

बहुत-से कहते थे—कैलास-वासी, अनुपम परशुधारी महादेव ही, कलापी-तुल्य

सीता देवी के पातिव्रत्य की रक्षा करने के लिए, तीक्ष्ण दंतवाले वानर का रूप धरकर आया है और प्राचीरों से घिरी इस सुन्दर लंका नगरी को विध्वस्त करने लगा है।

देवस्त्रियाँ, अलक-भार से युक्त लताओं के सदृश विद्याधर-रमणियाँ, तंत्री-नाद से भी अधिक मधुरभाषिणी नाग-कन्याएँ, इक्षुरस-सदृश सिद्ध-कन्याएँ और यक्ष-रमणियाँ घोर शब्द करती हुई सब ओर से आ एकत्र हुईं।

कुछ लोग कहते थे—समुद्र में योगनिद्रा में रहनेवाले चक्रधारी (विष्णु) और अनुपम कमल से उत्पन्न, मालालंकृत सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा)—दोनों ही वैर करके, (राक्षसों का विनाश करने के लिए) अपने-अपने रूप को छोड़कर, (इस वानर के) एक ही रूप में यहाँ आ गये हैं।

राक्षसों और राक्षसियों से भिन्न अन्य सब जन विपुल वर्षा के समान बहनेवाली अपनी अश्रुधारा को दबा नहीं पाते थे और रो रहे थे। वह (रोना) क्या सुरभित केशों-वाली सीता के दुःख को देखकर उत्पन्न हुआ था या (हनुमान् पर) दया के कारण था अथवा धर्म की दीनता को देखकर उत्पन्न हुआ था ?

पौरुषवान् हनुमान् ने विचार किया—अब इसी प्रकार, इन राक्षसों के साथ जाकर रावण को देखना भी अच्छा होगा। इसलिए उसने (बंधन को तोड़कर) लौटना उचित नहीं समझा और उनकी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ नहीं किया। प्रत्युत उनके साथ-साथ चलता रहा।

(उसने सोचा) मेरे पिता (वायु) की करुणा से, श्रीराम के रक्त चरणों का ध्यान करने से और सीता तथा देवताओं के द्वारा दत्त वरों के प्रभाव से मैं इस कठोर नागपाश को भी तोड़ सकता हूँ। फिर भी, इस बंधन में रहना ही उचित है।

मैं वक्रदंतवाले राक्षसराज (रावण) से मिलूँगा। मंत्रणा देने के लिए एकत्र मंत्रियों के समक्ष, मैं राम के पराक्रम से उत्पन्न होनेवाले (भयंकर) परिणामों को बताऊँगा। कदाचित् वह (रावण) द्रवितचित्त होकर मिथिला की कुमारी को लौटा भी दे।

इतना ही नहीं, उस (रावण) के साथियों के बल को भी मैं जान सकूँगा और उनके विचार भी जान सकूँगा। उस समर्थ (रावण) के वचनों के द्वारा एवं उसके मुख-रूपी दूतों के द्वारा उसकी दशा और मन (की दृढता) की भी जानकारी मैं प्राप्त कर सकूँगा।

वाली की मृत्यु, सप्त सालवृक्षों का विनाश, भयप्रद वानर-सेना की अपरिमितता सूर्यकुमार (सुग्रीव) की शक्ति—ये बातें भी (मेरे मुख से सुनने पर) उस नीलवर्ण रावण के हृदय में यथातथ रूप में अंकित हो जायेंगी।

अतः, मैं रावण से मिलूँगा और राम के सामर्थ्य तथा न्यायप्रियता को समझा-कर उसके मन में अंकित कर दूँगा। इसके साथ ही उसकी शेष राक्षसों की सेना को भी धीरे-धीरे, आधे से भी अधिक भाग को मिटाकर लौट जाऊँगा। बस यही मेरा कर्त्तव्य होगा—यह सोचकर हनुमान् आगे चला।

दोनों ओर से राक्षससेना-रूपी समुद्र के उमड़ते हुए, देवेन्द्र को परास्त करने-वाला (इन्द्रजित्), बँधे हुए वृषभ जैसे वीर (हनुमान्) को एक श्वेतच्छत्र से शोभायमान राजा (रावण) के प्रासाद में ले चला।

दूत लोग दौड़े और पूर्वकाल में सब दिशाओं को जीत लेनेवाले (रावण) के निकट पहुँचकर प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! आपके प्रिय पुत्र ने ब्रह्मास्त्र से उस शत्रु वानर को बाँध लिया है।

(यह समाचार) सुनते ही, उमड़ते हुए आनन्द के साथ, रावण ने, चन्द्ररहित (रात्रिकाल के) जैसे अंधकारपूर्ण अपने उस काले वक्ष पर स्थित मुक्ताहार को उतारकर उन दूतों को भेंट किया, जिस वक्ष ने दिग्गजों के दाँतों के आघात को सहा था।

अपार आनन्द के कारण फूली हुई भुजाओंवाले, प्रफुल्ल रक्तकुमुद जैसे नयनों-वाले उस (रावण) ने आज्ञा दी कि तुमलोग शीघ्र जाकर मेरा यह आदेश कहो कि उस वानर को सजीव ही यहाँ ले आवें।

दूतों ने उस आज्ञा को शत्रु नाम को ही मिटा देनेवाले प्रतापी (इन्द्रजित्) को सुनाया। (हनुमान् के बाँधे जाने का) समाचार जब सर्वत्र फैला, तब उस अपवादमुक्त बन्दिनी सीता की क्या दशा हुई—यह अब कहेंगे।

(हनुमान् ने) अब सुरक्षित वन को मिटा दिया। असंख्य राक्षसों को निहत कर दिया। ऐसे समाचार सुनकर आनन्दित होनेवाली सीता को, निष्कलंक चित्तवाली राक्षसी (त्रिजटा) ने चिंतित होकर वीर (हनुमान्) के बाँधे जाने का समाचार दिया, जिसे सुनकर सीता इतनी व्याकुल हुई कि उसे अपने प्राण भी घृणित मालूम होने लगे।

धूलि-धूसर देह से, धुएँ से आवृत चित्र-प्रतिमा-जैसी तथा पुष्प-जैसी कोमल सीता, उस समय उस सुन्दर पंखोंवाली हंसिनी के समान लगती थी, जिसका बच्चा किसी व्याध के हाथ में फँस गया हो। वह (सीता) ये वचन कहने लगीं—

(हे हनुमान्) तुम अपने आकार से अतिविशाल आकाश को भर देनेवाले हो, सकल शास्त्रों में निष्णात हो। ऐसे तुम एक वंचक राक्षस के हाथ में बंदी हो गये। क्या यही धर्म की रीति है ?

तुम समुद्र को पार करके यहाँ आये। तुमने निष्ठुर कंटक-जैसे राक्षसों के बल को मिटाया, फिर भी तुम्हारे प्राणों को कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई। विजयशील पुष्ट भुजावाले हे तात ! तुम यहाँ आकर मुझे और भी अधिक दुःख देनेवाले बन गये।

तुमने (रामचन्द्र की) मुद्रिका लाकर मुझे दिखाई और मेरे प्राणों को बचाया। उसपर मैंने तुम्हें आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें ऐसी चिरायु प्राप्त हो कि तुम प्रलयकाल को भी देख सको। मेरा वह आशीर्वचन सत्य प्रमाणित होगा, किन्तु तुम, पहले अपनी पर्वत-सदृश भुजाओं का बल दिखाकर, अन्त में अमिट अपयश के पात्र बन गये।

मैं आशा करती थी कि मेरे प्राणों की रक्षा करनेवाले तुम मुझे देखने के पश्चात् लौट जाओगे, यहाँतक पहुँचने का मार्ग दिखाकर प्रभु (रामचन्द्र) को लाओगे और

वे युद्ध में रावण को निहत करके मुझे मुक्त करके ले जायेंगे। किन्तु, तुमने अब मेरी वह आशा व्यर्थ कर दी।

इस प्रकार वचन कहकर वह, जो ऐसे पातिव्रत्य की अग्नि से युक्त थी कि स्वयं अग्नि भी उससे जल जाय, यों विकल-प्राण हुई, जैसी वह गाय, जिसका बछड़ा दूसरों के हाथ में बंदी बन गया हो। वह मूर्च्छित हो गई।

उधर, महिमामय तथा बड़े आकारवाले (हनुमान्) को बाँधकर, युद्ध में यश पाया हुआ (इन्द्रजित्) अपने अपूर्व तप से त्रिलोक पर शासन करनेवाले (रावण) के बड़े प्रासाद में जा पहुँचा।

(रावण का) श्वेतच्छत्र, जिससे चारों ओर मुक्ता-मालाएँ लटक रही थीं, इस प्रकार शीतल प्रकाश फैला रहा था, मानों तीनों लोकों में प्रकाश फैलानेवाला कोई द्वितीय चंद्रमा हो। वह (छत्र) उस मनोहर और महान् रजत-पर्वत-जैसा लगता था, जिसे (रावण ने) धरती से गगनतल में उठा दिया हो।

रावण की भुजाएँ ऐसी थीं कि उनपर गरुडध्वज (विष्णु) के चक्रायुध, इन्द्र के वज्र और त्रिनेत्र के त्रिशूल के लगने से घट्टे पड़े हुए थे और मधुस्रावी (पुष्पों से अलंकृत) केशोंवाली सुन्दरियों के कमलकोरक जैसे हाथों के उज्ज्वल करवाल जैसे तीक्ष्ण नखों के क्षत भी शोभायमान हो रहे थे।

(उसके दसों सिरों के) घने, रक्तवर्ण, तथा दीर्घ केशों के जाल चारों ओर, सब दिशाओं में बिखरे थे, जिनसे कांतिमय किरणें छिटक रही थीं। उसके क्रोधपूर्ण निःश्वास से धुआँ निकल रहा था। वह दृश्य ऐसा लगता था, मानों दक्षिण दिशा भी एक वडवाग्नि[1] रखती हो।

(उसके किरीटों में से) मरकत-रत्नों की उज्ज्वल कांति के साथ माणिक्यों की दीर्घ किरणें भी निकल रही थीं, जो नरक-लोक के अमिट अन्धकार को (अंधतम को) भी निगल रही थीं। इससे वह (रावण) ऐसा लगता था, मानों सर्पराज अपने सहस्रों फनों को चारों ओर फैलाये सिंहासन पर विराजमान हो।

उसके कमरबंद में जो चुने हुए विविध प्रकार के अति उत्तम रत्न जड़े थे, वे अपनी कांति बिखेर रहे थे। उसकी सुन्दर भुजाओं पर सर्प की कांति से विशिष्ट आभरण सुशोभित हो रहे थे। वह दृश्य ऐसा था, मानों अति विशाल काला समुद्र ही धरती पर दूर तक व्याप्त रहनेवाले (स्वर्णमय) मेरु-पर्वत को लपेटकर पड़ा हो।

वह सिंदूर-सदृश रक्तवर्ण वस्त्र पहने हुए था, उज्ज्वल मुक्ता-पंक्तियों से जटित उसके आभरण पूर्णचन्द्र का प्रकाश फैला रहे थे। वह देखने में ऐसा लगता था, मानों अन्धकार ही रक्तवर्ण आकाश को अपना कटि-वस्त्र बनाकर, नक्षत्रों को आभरण के रूप में धारणकर, चन्द्र-रूपी छत्र के नीचे बैठा हुआ हो।

वह (रावण) सौंदर्य का, उत्तम वेदों का और गगन से भी अधिक स्थिरता का,

---

१. यह प्रसिद्ध है कि वडवाग्नि उत्तर दिशा में ही रहती है।

अनुपम आवास था। उसके बड़े-बड़े दसों मुख, दसों दिशाओं में जब-जब अपनी दृष्टि बिखेरते थे, तब-तब दिग्गजों-सहित दिशाओं की रखवाली करनेवाले दिक्पाल तथा अंतरिक्ष एवं अधर दिशा (पाताल) के रक्षक देवता (ध्रुव तथा आदिशेष) थर्रा उठते थे।

अनुपम नायक (राम) की देवी (सीता) को जबसे उसने देखा था, तबसे उसे नागलोक से ब्रह्मदेव के आवास सत्यलोक तक में रहनेवाली कलापी-तुल्य सभी सुन्दरियाँ पुरुष के जैसी लगती थीं (अर्थात्, अब उन सुन्दरियों के प्रति रावण के मन में कोई आकर्षण नहीं रह गया था।)

वानर, दोनों श्रेष्ठ देव (हरि और हर अथवा ब्रह्मा और विष्णु), (राक्षसों के द्वारा) नीचकर्मा समझे जानेवाले मनुष्य, कुछ मुनि, इनको छोड़कर अन्य सभी प्रकार के व्यक्ति, मांस-लगे शूल को धारण करनेवाले राक्षसों के साथ (रावण को) घेरकर खड़े थे।

(रावण के दरबार में) तंत्री-रूपी इक्षुखंडों का मधुर नाद-रूपी रस बह रहा था। शास्त्रोक्त विधान से वादित पखावज, शहनाई, डमरू, ताल आदि निरंतर बज रहे थे। देवस्त्रियाँ अमृत-प्रवाह जैसे संगीत के मधुर रस को उस (रावण) के कानों में भर रही थीं।

मेनका उपयुक्त संगीतनाद और मर्दल-वाद्य के अनुकूल अपने चरण, नेत्र, कर आदि अंगों को, जो अपनी सुन्दरता के कारण रक्तकमलों को भी अपनी उपमा के अयोग्य सिद्ध कर रहे थे, परिचालित करती हुई नृत्य कर रही थीं; यदि उस नृत्य को मुनि देख लें, तो वे भी मुक्ति के परमानंद को त्यागकर उस (मेनका) की ओर आकृष्ट हो जायें। उस (मेनका) को देखकर वह (रावण) मंदहास कर रहा था।

(रावण का) एक मुख मान करती हुई किसी रमणी के मुख की मधुरिमा का आस्वादन कर रहा था (अर्थात्, उस रमणी के मुख-सौंदर्य को देख रहा था)। दूसरा मुख अपने साथ मिली हुई किसी रमणी के वदन पर प्रकट हुए आनंद-मधु का पान कर रहा था। तीसरा मुख गायन करती हुई रमणियों के वदन से प्रकट हुए प्रेम-मधु को पी रहा था। चौथा मुख नृत्य करनेवाली सुन्दरियों के वदनों पर प्रकट हुए अभिनय-जन्य शोभा का स्वाद ले रहा था।

पाँचवाँ मुख (अपने अधीनस्थ) देवताओं के साथ संभाषण करता हुआ अपनी प्रभुता दिखा रहा था। छठा मुख तीनों (मंत्री, प्रधान और सेनापति) से मंत्रणा कर रहा था। सातवाँ मुख क्रूर कर्मों का चिन्तन करता हुआ, क्रूरता का भाव प्रकट कर रहा था। आठवाँ मुख शुकी-जैसी जानकी के रूप को (अपने सम्मुख) देखने में व्यस्त था—(भाव यह है कि उसकी आँखों में सीता की छवि घूम रही थी।)

नवाँ मुख सोचता था कि रक्तकुमुद-सदृश कोमल अंगुलियोंवाली सीता के पातिव्रत्य-रूपी सागर को कैसे पार करें? दसवाँ मुख चन्दन से अलंकृत स्तनोंवाली सुन्दरियों के द्वारा दिखाये जानेवाले मुकुर में अपनी छवि देख रहा था।

उसका मन जानकी पर उसी प्रकार मँड़रा रहा था, जिस प्रकार कोई मत्त भ्रमर घने झुरमुट के मध्य-स्थित मधु को प्राप्त करने के लिए आतुर होकर मँड़रा रहा हो।

उसकी भुजाओं पर, (रावण के विरह से) व्याकुलमन, कृशगात्र, छलछलाती आँखोंवाली, सुन्दरियों के नयन-रूपी बरछे आघात कर रहे थे।

मंद, सुगन्धित और शीतल पवन, जो पुष्पों के मकरंद से लिप्त होकर, मधु का पान करके, सुन्दरियों के पुष्प-कोरक-सदृश स्तनों के चन्दन-लेप का आलिंगन करके चल रहा था, मानों (रावण से) बदला लेने के लिए उसके घावों में विषलिप्त तीर जैसे घुसा जा रहा हो।

अर्धचन्द्र-सदृश ललाटवाली तरुणियों के रक्त रेखांकित मनोहर मीनसम नयनों से युक्त वदन-रूपी कमलों के लिए वह (रावण) सूर्य-सदृश था और देवताओं तथा निष्ठुर नेत्रोंवाले दानवों के मुकुलित कर-रूपी कमलों के लिए वह चन्द्र सदृश था।[1]

इस प्रकार आसीन रहनेवाले, अष्ट दिशाओं के प्रभु (रावण) को मारुति ने (दूर से) देखा। उसे देखते ही काले और दीर्घ सर्प को देखकर क्रुद्ध होनेवाले गरुड के समान उत्तप्त हो उठा। उग्र होकर उसने अपने मन में सोचा कि पुष्ट भुजाओं के पाश को तोड़ दूँ और विष-सदृश इस राक्षस पर झपट पड़ूँ।

यह सोचकर कि निद्रित व्यक्ति को मारना अपराध है, इसे मैंने, जब मैं इसके अंतःपुर में गया था, विना मारे छोड़ दिया था। अब इसे स्वर्ण और रत्नों से निर्मित सिंहासन पर आसीन देख रहा हूँ। अब और अधिक क्या सोचना है? इसके सिरों को चूर-चूर कर दूँगा और पातिव्रत्य धर्मवाली पुष्पलता-तुल्य देवी को बंधन से मुक्त करके शीघ्र ही यहाँ से ले चलूँगा—यों हनुमान् ने विचार किया।

(हनुमान् ने यह भी सोचा—) महावीर (रामचन्द्र) की पत्नी को बंदिनी बनी हुई देखकर भी चुप रहनेवाले देवों, दानवों आदि को आकृष्ट करता हुआ, यदि मैं इस पापी के किरीटालंकृत सिरों को न काट डालूँ, तो अब आगे मैं (रामचन्द्र की) क्या सेवा कर सकूँगा?

(सीता का) अन्वेषण करता हुआ एक वानर आया और उसने रावण के मुकुट-भूषित सिरों को चारों दिशाओं में लुढ़का दिया, जिसे देखकर इस (रावण) की सब स्त्रियाँ भयभीत हो भागकर जा छिपीं। वह वानर विजय पाकर आनंद-नृत्य करने लगा—अहो! यह वानर कितना निष्ठुर है?—ऐसे प्रशंसापूर्ण वचन क्या कम होते हैं? (अर्थात, ऐसी प्रशंसा का पात्र बनना बहुत अच्छा है)।

दीर्घ करवाल-सदृश तीक्ष्ण दाँतोंवाले इस राक्षस (रावण) को अपने नेत्रों से देखने की इच्छा लेकर ही मैं अबतक इन प्राणों को शरीर में रखे हुए हूँ। इसे अपने नेत्रों के सामने पाकर यदि केवल कुछ बातें करके ही लौट जाऊँ, तो मुझे अपयश ही प्राप्त होगा। किन्तु (इसके साथ युद्ध करूँ और) मारा भी जाऊँ, तथापि मुझे यश ही मिलेगा, न कि अपयश।

---

१. कंब रामायण में कहीं-कहीं यह उल्लेख मिलता है कि रावण असुर जाति का था और उसने देवों और दानवों को परास्त किया था।—अनु०

जब वह (हनुमान्) इस प्रकार सोच रहा था कि अभी अपनी भुजाओं के बंधन को तोड़कर पर्वत पर झपटनेवाले सिंह के समान इसपर एकदम टूट पड़ूँगा, तभी फिर उसे यह विचार हुआ कि यह कार्य नीति के अनुकूल नहीं होगा।

यह (रावण) ऐसा नहीं है कि (किसी के द्वारा) सरलता से मारा जा सके। इसके राज्य को देखने पर आसानी से इसे जीता भी नहीं जा सकता। जैसे समस्त अंधकार एकत्र हो गया हो, इस प्रकार के काले वर्णवाले इस रावण के बल को एकमात्र रामचन्द्र ही परास्त कर सकेंगे। अन्य कोई इसे हरा नहीं सकता।

मुझे परास्त करना भी इस (रावण) के लिए असम्भव है। इतने बल से युक्त इसे परास्त करना भी मेरे लिए असंभव है। यदि मैं अब युद्ध छेड़ दूँ, तो उसी में अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। अतएव, यह उचित नहीं है कि मैं अब भयंकर युद्ध आरम्भ कर दूँ।

इतना ही नहीं—रामचन्द्र की ऐसी प्रतिज्ञा है कि इस रावण की बलिष्ठ भुजाओं तथा अनेक सिरों को काटकर धरती पर लुढ़का दूँगा और उस कार्य से सप्त लोकों की जनता को आनन्दित करूँगा।

यदि मैं भयानक युद्ध छेड़ दूँ और इसी में समय व्यतीत कर दूँ, तो सुन्दर नेत्र-वाले प्रभु की वह देवी, जिसने प्रभु की सौगंध खाकर यह कहा था कि मैं केवल एक मास के लिए ही जीवित रहूँगी, अपने प्राणों को निश्चय ही त्याग देगी।

अतः, अब युद्ध छेड़ना उचित नहीं है। दूत का कार्य-मात्र करना उचित है। वेदनायक (राम) का विलक्षण साथी हनुमान् यों सोचता हुआ, विजयशील शत्रु उस राक्षस के निकट जा पहुँचा।

पैनाये करवाल-जैसे घातक नेत्रोंवाली स्त्रियों के मध्य आसीन राजा (रावण) के सम्मुख, समुद्र से अमृत निकालकर पिये हुए देवों को परास्त करके उन्हें भगानेवाले (इन्द्रजित्) ने हनुमान् को उपस्थित किया।

जितने लोक हैं, उन सब पर विजय पाये हुए (रावण) को संबोधन करके उस (इन्द्रजित्) ने निवेदन किया—वानर-रूप में रहनेवाला यह प्रतापवान्, शिव और विष्णु के जैसे पराक्रम से युक्त है। यह कहकर अपने करों को जोड़कर खड़ा रहा।

(हनुमान् को) देखनेवाली उस (रावण) की आँखों से जो चिनगारियाँ निकलीं, उनसे प्रशंसनीय हनुमान् की देह के सब रोयें सरसर करके जल उठे। उसके निःश्वासों से निकलनेवाले तप्त धूम ने उस (हनुमान्) की देह को बाँधे हुए नागपाश के समान ही कसकर बाँध लिया।

यम-समान रावण ने, क्रोध से तप्त होकर, देव आदि शत्रुओं को भयभीत करते हुए, हनुमान् से प्रश्न किया—यहाँ तेरे आने का कारण क्या है ? तू कौन है ?

तू चक्रधारी (विष्णु) है ? कुलिशधारी (इन्द्र) है ? दीर्घशूलधारी (शिव) है ? कमलभव (ब्रह्मा) है ? भय-रहित अनेक सिरोंवाला (आदिशेष) है, जो भूमि को धारण करता है ? तू कौन है, जो अपने नाम और रूप को छिपाकर युद्ध करने के लिए यहाँ आया है ?

क्या तू काले रंगवाला यम है, जो निर्भय रहता है और प्राणियों को बाँधकर ले जाता है? क्या तू मुरुगन (सुब्रह्मण्य) है, जिसने अपने भाले से पर्वत को तोड़ दिया था?[1] क्या तू वह मुनि (अगस्त्य) है, जो दक्षिण दिशा में अपना अमित प्रभाव रखता है?[2] या तू दिक्पालकों में से कोई है, जो दिशाओं की रक्षा करता है?

क्या मुनियों ने यज्ञ करके किसी भूत को उत्पन्न किया है, जो तेरे इस रूप में अब यहाँ आया है? अथवा, क्या कमलभव ने एक नये देव की सृष्टि करके सारी लंका का विनाश करने के निमित्त यहाँ भेजा है?

तू कौन है? तेरे यहाँ आने का कारण क्या है? किसने तुझे भेजा है? मेरी आज्ञा है कि तू कुछ भी छिपाये विना सारी वात वता दे।—यों उस राक्षस ने कहा, जिसने देवों के यश को समूल निगल लिया था।

(तब हनुमान् ने उत्तर दिया—) तेरे कहे हुए व्यक्तियों में से मैं कोई नहीं हूँ। मैं तेरे बतलाये उन अल्प बलवालों की आज्ञा माननेवाला भी नहीं हूँ। मनोहर दलों के साथ विकसित रक्तकमल-सदृश नेत्रवाले एक अनुपम धनुर्धारी का दूत बनकर मैं लंका में आया हूँ।

यदि तू यह जानना चाहता है कि वह धनुर्धारी कौन है, तो (मैं बताता हूँ—) वह ऐसा एक महान् कार्य संपन्न करने के लिए अवतीर्ण हुआ है, जिसके बारे में देव, त्रिदेव तथा अन्य जो भी उन्नत व्यक्ति हैं, वे सब सोच भी नहीं सकते।

वह (धनुर्धारी) तुम लोगों के प्रभूत बल को, पूर्वकाल में किये गये तप को, नये-नये एकत्र किये गये शस्त्रों तथा सेना को, देवताओं द्वारा दिये गये उत्तम वरों को, तुम लोगों के बड़प्पन को, तुम्हारे निर्मित कार्यों को तथा तुम्हारे द्वारा संपादित राज्य, संपत्ति आदि—सबको अपने एक वाण से ही समूल विनष्ट करने का निश्चय किये हुए है।

वह कोई देव नहीं है। या कोई असुर नहीं है। कोई दिग्गज नहीं है। कोई दिक्पालक भी नहीं है। सुन्दर कैलास पर रहनेवाला शिव नहीं है। त्रिमूर्त्ति भी नहीं है।

---

१. स्कन्दपुराण में यह वृत्तांत वर्णित है कि सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) और परशुराम में एक बार परस्पर बल की स्पर्धा हुई। तब सुब्रह्मण्य ने क्रौंचगिरि को अपने बरछे के आघात से तोड़ दिया था।—अनु०

२. प्राचीन तमिल-साहित्य के सबसे पुराने व्याख्याता विद्वान् नच्चिनार किनियर है, उन्होंने एक स्थान पर एक कथा लिखी है, जो इस प्रकार है—एक बार कैलास-पर्वत पर शिवजी के सम्मुख सभी देवता और मुनि एकत्र हुए। उस समय उनके भार के कारण उत्तर दिशा नीचे की ओर धँस गई और दक्षिण ऊपर उठ आया। यह देखकर देवताओं और मुनियों ने शिवजी से निवेदन किया कि अगस्त्य ही दक्षिण के संतुलन को ठीक रख सकते हैं। अतः, वे दक्षिण में जायें। शिवजी ने अपनी स्वीकृति दी और अगस्त्य मुनि विंध्याचल के गर्व को भी चूर करते हुए दक्षिण में आये और 'पोदिय मले' नामक पर्वत पर अपना निवास बनाया। वहाँ रहकर उन्होंने तमिल-भाषा का व्याकरण रचा और भाषा का उद्धार किया। उन्होंने गन्धर्व शास्त्र (संगीत) से रावण को बाँध दिया और तमिल देश में आने से उसे रोक दिया।—अनु०

कोई मुनि भी नहीं है। वह समस्त भूतल पर राज्य करने के लिए उत्पन्न एक चक्रवर्त्ती का कुमार है।

ज्ञान, उत्तम ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन, सच्ची तपस्या का आचरण तथा अन्य सभी सद्गुण, वही फल दे सकते हैं, जिन्हें वह (धनुर्धारी) संकल्प मात्र से पा सकता है। यदि इसका रहस्य या कारण तू जानना चाहता है, तो (मैं बताता हूँ—) वह वेदों तथा धर्म-ग्रन्थों में प्रतिपादित सत्यधर्माकार पुरुष है।

यदि तू (उस धर्म-रूप के जन्म लेने का) कारण पूछे, तो बताऊँ—वह अनन्त वेद तथा उपनिषदों के द्वारा भी निरूपण करने में असाध्य, ज्ञान के लिए भी ज्ञान बना हुआ (अर्थात्, सब वस्तुओं को जाननेवाले ज्ञान का भी वह आधारभूत ज्ञान है)। स्वयं नारायण है, जो उस गज की रक्षा करने के लिए दौड़ा चला आया था, जो युद्ध में ग्राह से ग्रस्त होकर पुकार उठा था कि हे सृष्टि के आदिकारण ! (मेरी रक्षा करो)। वही अब देवताओं की रक्षा के निमित्त अवतीर्ण हुआ है।

वह जो (सृष्टि का) आदिकारणभूत है, जो आदि, मध्य और अन्त से रहित है, जो भूत, वर्त्तमान और भविष्य नामक तीन कालों से अतीत है, जो अन्य किसी भी सीमा से (देश, कार्य, गुण आदि से) परिमित नहीं है, वही त्रिशूल, शंख-चक्र, कमंडलु आदि का त्याग कर (अर्थात्, शिव, विष्णु और ब्रह्मा के रूप में न होकर) हाथ में धनुष धारण करके, अपने प्राचीन स्थान—वटपत्र, कमल और कैलास को भी छोड़कर अयोध्या में अवतीर्ण हुआ है।

अपने सुन्दर चरणों की स्तुति करनेवालों को जन्म के बंधन से मुक्त करनेवाला वह (नारायण), सर्वत्र धर्म को स्थिर रखने, वेदों में प्रतिपादित नीतिमार्ग को समझाकर लोगों को उस पर चलाने तथा दुर्जनों का विनाश करके सत्पुरुषों के कष्टों को दूर करने के लिए यहाँ (धरती पर) अवतीर्ण हुआ है।

मैं उन्हीं का दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। सुन्दर ललाटवती देवी (सीता) का अन्वेषण करने के लिए चारों दिशाओं में गये हुए सेनानायकों में से दक्षिण-दिशा में सेना लेकर आनेवाला वालिपुत्र अंगद है। उसी का दूत बनकर मैं अकेला ही यहाँ आया हूँ।

यह सुनकर लंकाधिप ऐसे हँसा, जैसे मेघ के मध्य बिजली कौंध गई हो और बोला—वालिपुत्र से प्रेषित हे दूत ! अति बलवान् वाली सकुशल तो है? उसका राज्य-शासन सुचारु रूप से चल रहा है न?—यह प्रश्न सुनते ही सर्वप्रभु (राम) का दूत हँस पड़ा।

(हनुमान् ने) कहा—हे राक्षस ! डर मत। भयंकर क्रोधवाला वाली कभी का इस धरती को छोड़कर स्वर्ग पहुँच गया। अब लौटकर आनेवाला नहीं है। तभी उसकी पूछ भी मिट गई। वह (वाली) अंजन-सदृश शरीरवाले राम के एक शर से आहत होकर मरा। अब हमारा राजा सूर्यपुत्र (सुग्रीव) है।

रावण ने प्रश्न किया—किस कारण से उस वाली के प्राण तीक्ष्ण-शर से हरण किये गये ? राम नामक वह व्यक्ति अब कहाँ है ? अंगद क्यों उसकी पत्नी का अन्वेषण करने चला है ? वायुपुत्र कहने लगा—

अपनी देवी (सीता) को ढूँढ़ते हुए आये रक्तकमल जैसे नेत्रोंवाले (राम) के साथ हमारे प्रभु सुग्रीव ने ऐसी मित्रता कर ली है कि मानों वे दोनों एकप्राण हो गये हैं। (सुग्रीव के) यह प्रार्थना करने पर कि दुर्निवार्य विपत्ति से वे उसे मुक्ति दें। उन (रामचन्द्र) ने, जो कुशल चित्रकार के लिए भी दुर्लेख्य सौंदर्य से युक्त हैं, सुग्रीव को रूमा (सुग्रीव की पत्नी) के साथ उसके राज्य को भी (वाली से लेकर) देने का वचन दिया। फिर, उन्होंने वाली का वध किया।

वे उस (सुग्रीव) के साथ वहीं चार मास तक रहे। फिर एकत्र हुई वानर-सेना के मध्य आसीन वीर (राम) ने हमें आदेश दिया कि अब तुमलोग जाकर (सीता का) अन्वेषण करो। हम वैसे ही अन्वेषण करते हुए यहाँ आये हैं। यही सारी घटना है।—यों रामचन्द्र के दूत ने कहा। वह सुनकर रावण बोला—

तुम लोगों के कुल के नायक तथा अनुपम प्रभावशाली (वाली) को जिसने कठोर शर से निहत कर दिया, उसके दासत्व को तुमलोगों ने स्वीकार किया है। वाह! अब तुम्हारा यश भी कैसे घट सकता है ? तुम जैसे लोग यदि बने रहेंगे, तो मेघों के कारण संपन्न बनी हुई इस धरती में केवल स्त्रीत्व ही शेष रह जायगा न ? (भाव यह है, तुम जैसे कायरों से धरती का अपमान होता है।)

तुम लोगों के नायक सुग्रीव ने—जिसने अपने अग्रज को मरवाकर उस अग्रज को मारनेवाले के साथ मित्रता कर ली—आदेश दिया, तो उसे मानकर आया हुआ तू हमें क्या बताना चाहता है ? दूत बनकर आये हुए तू ने जो युद्ध किया है, उसका क्या कारण है। तुझे हम मारेंगे नहीं, मन का भय त्यागकर सारी बात कह।

मन से विचार करने के लिए भी दुष्कर, सद्गुणों से पूर्ण (हनुमान्) ने, पुष्प-मालालंकृत (रावण) के कहे सब वचनों को भली भाँति सोचकर, फिर, यह विचार कर कि अब इसे सामान्य नीति मार्ग क्या है, यह बताना उचित होगा—ये वचन कहे :

मेरा यहाँ दूत बनकर आना, सूर्य के कुमार सुग्रीव के कारण ही है। यदि तू सुनने के लिए उद्यत है और उनकी सचाई को पहचान सकता है, तो कुछ दोषहीन हितकारी वचन तुझसे कहूँगा।

तूने अपने संपन्न जीवन को व्यर्थ कर दिया। राजधर्म की किंचित् भी परवाह न की। क्रूर कार्य किया। यद्यपि तेरा विनाश निकट आ गया है, तथापि यदि अब भी तू मेरा यह दृढ वचन सुनकर तदनुसार कर सका, तो चिरकाल पर्यंत अपने प्राणों को बचा सकेगा।

तू ने, अत्यन्त दुःख पाने पर भी अपने पातिव्रत्य से विचलित न होनेवाली, अग्नि-समान पवित्र (सीता) देवी को सताने का महान् पाप किया है। उससे तूने अपनी इन्द्रियों पर विजय पाकर जो अमोघ तप किया था, उसका फल भी खो बैठा है।

सत्य ज्ञानवाले देवों को परास्त करके उससे अधिक गर्व उत्पन्न हो जाने के कारण तेरी अनुपम महिमा मिट गई। शेष कुछ महिमा बच गई थी तो वह भी, आज मिट गई और यदि कुछ थोड़ी महिमा बच भी गई हो, तो वह कल-परसों अवश्य समूल मिट जानेवाली है। क्या वह (तेरी महिमा) स्थायी रूप से रह सकेगी ?

पाप कभी पुण्य को जीत नहीं सकता—इस सत्य को तू ने माना नहीं। विना कुछ विचार किये ही, महान् तपस्या से प्राप्त अपनी पवित्रता को अतिपावन देवी (सीता) के प्रति उत्पन्न कामना के कारण, मिटा दिया।

नीतिरहित काम-वासना से जो भी मोहग्रस्त और भ्रष्टचित्त हुए, वे सब मर-मरकर अधोगति की ओर ही बढ़ते रहे। क्या ऐसे धर्मभ्रष्ट लोग कभी नित्य जीवन को प्राप्त कर सके ?

भयंकर तथा गंभीर समुद्र से आवृत इस धरती में, जो राजा, लोक-रक्षा के कर्त्तव्य को अपनाकर भी, नवयौवना तरुणियों पर मोहित होकर, मार्गभ्रष्ट होते हैं, वे माला-भूषित पुरुष अपने कुकृत्य के कारण मिट जाते हैं। यदि ऐसे पुरुषों की गणना करने लगें, तो क्या उसका अन्त हो सकता है ?

धन-वैभव और इन्द्रिय-विषयों पर उत्तम जन आसक्त नहीं होते और वे यह मानते हैं कि इनसे बढ़कर अन्य कोई अन्धकार (-पूर्ण कार्य) इस संसार में नहीं है। वे मानते हैं कि दान, करुणा, ध्यान तथा विषयों से विरक्ति—इनके अतिरिक्त और किसी के द्वारा सत्य ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं।

वह पुरुष भी क्या सद्गुणों में गिना जा सकता है, जो वासना के वशीभूत होकर, पर-स्त्री पर आसक्त हो। उपहास का पात्र बनकर, लज्जारहित होकर, अपने कांतिमय शरीर को (पर-नारी के विरह-ताप से) सुखाये और अपयश का भागी बनकर पतित बन जाये ?

तरंगपूर्ण समुद्र-जल से घिरी इस धरती में जो राजा गुजर चुके हैं, उनमें तेरे समान नीतिज्ञ कौन थे ? (अर्थात्, कोई नहीं थे)। वेद-विहित न्याय-मार्ग पर चलने-वाला तू क्यों धर्म की सीमा के बाहर जाता है ?

(कोई पुरुष) अपने से घृणा करनेवाली किसी स्त्री पर अनुरक्त होकर उसके धिक्कार प्राप्त करे और फिर भी यदि वह जीवित रहे, तो उसके जीवन की अपेक्षा उस व्यक्ति के जीवन को अधिक सुन्दर कहना उचित होगा, जिसकी मुख के मध्य में उन्नत होकर रहनेवाली नासिका कट गई हो।

यदि लोकों का विध्वंस करने में समर्थ अनेक सुन्दर भुजाएँ हों, सहस्र सिर हों, तो भी क्या उनसे प्राणों की रक्षा हो सकती है ? वे उन सैकड़ों वस्त्रों के समान होंगे, जो गाँव-भर को जला देनेवाली आग की लपटों में फँस गये हों।

तूने अपनी नसों की तंत्री बनाकर जो गान किया था, उसपर प्रसन्न होकर उस शिव भगवान् ने, जिनके क्रोध से त्रिपुर भी अनिवार्य अग्नि-ज्वाला में जलकर भस्म हो गये थे, जो वर दिया, वह भी कदाचित् व्यर्थ हो सकता है। किन्तु, वैदिक धर्म से कभी

च्युत न होनेवाले (राम) का शर कभी व्यर्थ होगा, ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है।

जो गुण सब लोगों में दृढ रूप से रहना चाहिए, वह है 'मान'। तेरा वह मान भी मिट रहा है। अक्षीण राज्य-संपत्ति भी मिट रही है। धर्म-विरुद्ध पथ पर चलकर तू क्यों इतना नीच होता जा रहा है ? तेरे कार्य की प्रशंसा वही करेंगे, जो तुझसे भी अधिक उपहास के योग्य नीच कृत्य करनेवाले हैं।

(संसार में) जन्म पाकर, जिन्होंने ऐसा तप किया है कि वे आगे पुनर्जन्म न पायें, वे और महान् देवों से अधिक श्रेष्ठ देवता श्रीराम को कभी नहीं भूल सकते। यह निश्चित है।

अतः, तू सीता को लौटा दे और अपनी दुर्लभ संपत्ति, अपने बंधुजन तथा अपने प्राणों की रक्षा कर। ज्योतिःस्वरूप (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) ने तेरे लिए इस प्रकार का संदेश भेजा है।—यों (हनुमान् ने) कहा।

(हनुमान् के) यह कहते ही विजय के अतिरिक्त कभी पराजय न प्राप्त करने-वाला (रावण) यह सोचकर कि मुझे ये वचन सुनानेवाला पर्वत पर बसनेवाला एक तुच्छ वानर है—ठठाकर हँस पड़ा। (और बोला—)

वानर (सुग्रीव) का सन्देश और नर का पराक्रम—सब रहने दे। अब तू यह बता कि इस विशाल नगर में जब तू किसी का दूत बनकर आया है, तब तू ने राक्षसों को क्यों मारा ? उसका कारण कह।—यों (रावण ने) प्रश्न किया।

मुझे तुझसे साक्षात् करानेवाला कोई नहीं था। अतः, मैंने तेरे सुरभित उद्यान को उजाड़ा। जो मुझे मारने के लिए आये थे, उन्हें मैंने मार डाला। फिर, विनम्र होकर तेरे समीप इसलिए आया हूँ कि मैं तुझे यह सन्देश दे सकूँ।

(हनुमान् के) इतना कहते ही, विद्युत्-सदृश चमकनेवाले करवाल-जैसे तीक्ष्ण दाँतोंवाले (रावण) ने क्रोधाग्नि को दूर-दूर तक फैलाते हुए आज्ञा दी कि इसे मार डालो। जब अधिक लोग उसे मारने को दौड़े, तब नीतिज्ञ विभीषण बोल उठा—'रुको'।

नीतिमान् (विभीषण) उठकर खड़ा हुआ। उसने अपने दीर्घ करों से महिमा-मय राजा रावण को नमस्कार करके मधुर तथा सत्य वचन धीरे-धीरे कहा—अत्यधिक क्रोध करना उचित नहीं है।

(उसने कहा—) पूज्यवर, हे वेदों में निपुण ! धर्मबल से आदिकाल में सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव को तुमने अपनी तपस्या से संतुष्ट करके वर प्राप्त किया और इन्द्र का कार्य (त्रिलोक का शासन) कर रहे हो। ऐसे तुम क्या उस व्यक्ति को मारोगे, जो अपने को किसी का दूत कहकर यहाँ आया है ?

इस भूतल की सीमा के भीतर और इस अंडगोल के भीतर तथा बाहर, वेदों से सुव्यवस्थित रहनेवाले समस्त लोकों में जो नीतिमान् पुरुष हुए है, उनमें से स्त्री के घातक कोई हो भी सकते हैं ? किन्तु, दूत बनकर आये हुए व्यक्ति को मारनेवाला कोई नहीं हुआ है।

दूत शत्रुओं के निवास में जाकर, भेजनेवाले का सन्देश कहता है, फिर वह क्रोध को शांत करके सत्य वचन कहता है। ऐसे व्रत लिये हुए, उपयुक्त ज्ञान तथा क्रिया से युक्त दूतों को मारने से योग्य व्यक्ति भी उपहास के पात्र हो जाते हैं। हमारे कुल के लिए यह कलंक होगा।

सत्य के आधारभूत सब लोकों पर शासन करनेवाले, हे राजन्, तुम्हारे शत्रु के द्वारा भेजे हुए इस दूत को मारना दोष है। त्रिशूलधारी शिव तथा त्रिमूर्त्तियों के अन्य देवों (ब्रह्मा और विष्णु) के एवं हमारे वैभव को देखकर ईर्ष्या करनेवाले देवों के तुम उपहास-पात्र बन जाओगे।

उन वीर तथा नीतिज्ञ (राम-लक्ष्मण) ने हमारी बहन शूर्पणखा का वध नहीं किया, किन्तु उसकी नाक और कान काटकर यह कहकर भेज दिया कि तू जाकर अपने भाई से समाचार कह। यदि अब तुम इस वानर को मार डालोगे, तो यहाँ आकर इसने जो कुछ देखा है, उसे उन (राम-लक्ष्मण) को यह कैसे सुनायगा ?—इस प्रकार उपयुक्त वचन (विभिषण ने) कहे।

तब रावण ने कहा—हे उत्तम स्वभाववाले ! तुमने ठीक कहा। इसने यद्यपि अनुचित किया है, तथापि इसको मारना दोष है। उसने अपने सैनिकों से कहा—इस (वानर) की लम्बी पूँछ को जड़ से जला दो और नगर-भर में इसे घुमाकर फिर नगर की सीमा से बाहर, यह कहकर भगा दो कि यहाँ का सारा समाचार कहकर यह शीघ्र उन्हें (राम-लक्ष्मण को) यहाँ ले आये। यह सुनकर राक्षस घोर कोलाहल कर उठे।

उस समय देवताओं को युद्ध में परास्त करनेवाले (इन्द्रजित्) ने कहा—ब्रह्मास्त्र के बंधन में रहनेवाले को आग से जलाना उचित नहीं है। मजबूत रस्सियाँ ले आओ और उनसे इस (वानर) की भुजाओं को बाँध दो। फिर उसने (हनुमान् की देह से) ब्रह्मास्त्र का उपशमन कर दिया। (इन्द्रजित् के) इतना कहते ही राक्षसों ने रस्सियों से उस (हनुमान्) को बाँध दिया।

(राक्षसों के घरों में) झूलों को लटकाने की बड़ी-बड़ी रस्सियाँ अदृश्य हो गईं (अर्थात्, हनुमान् को बाँधने के लिए उन्हें खोलकर ले गये)। रथों में बँधी हुई रस्सियाँ अदृश्य हो गईं। सभी अश्व बन्धन की रस्सियों से रहित हो गये। युद्ध के हाथी भी अपने पैरों और कंठ में बँधे रस्सियों से रहित हो गये। अब उस नगर में पड़ी हुई अन्य रस्सियों के संबंध में क्या कहा जाय ?

संसार में पाई जानेवाली सब रस्सियाँ, देवताओं से बलात् छीनकर लाये गये पाश, वरदान में प्राप्त पाश, असंख्य राजाओं से बलात् छीनकर लाये गये पाश तथा दूसरे जो भी पाश दिखाई पड़े, उन सबको लाकर (राक्षसों ने हनुमान् को) बाँध दिया। उस समय केवल वे डोरे ही बचे रहे, जो राक्षसों की स्त्रियों के गलों में मंगलसूत्र बनकर पड़े थे।[1]

वह दोषरहित (हनुमान्) यह सोचकर आनन्दित हो रहा था कि मैं ब्रह्मास्त्र के

---

१. ऊपर के दो पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

बंधन को तोड़ने के अपराध से बच गया। स्वयं राक्षसों ने ब्रह्मास्त्र को हटाकर मेरा उपकार किया। मैं इन (राक्षसों) की विजय को शीघ्र ही पराजय में बदल सकता हूँ। मेरी पूँछ को जलाने की (रावण की) आज्ञा भी कैसी है, मानों इस नगर को जला देने का ही निमंत्रण है।—यों सोचकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करता हुआ (हनुमान्) चुपचाप खड़ा रहा।

(राक्षस) क्षुद्र पाशों से उसे बाँध रहे थे। (हनुमान्) दुर्बल व्यक्ति के जैसे अपनी देह को फुलाता हुआ उनके खींच-खींचकर बाँधने पर भी बिना कुछ घबराहट के इस प्रकार खड़ा रहा, जैसे वह उन बंधनों से मुक्त होने का उपाय ही न जानता हो। वह आर्य (हनुमान्) उस योगी की समता करता था, जो ब्रह्मविद्या को प्राप्त करके भी अज्ञ के जैसे अविद्या को ही सत्य मानने का अभिनय करता है। अच्छी तरह बँधा हुआ हनुमान् राक्षसों द्वारा घसीटा जा रहा था।

वे राक्षस रावण के प्रासाद को पार कर खुले स्थान में जा पहुँचे और वहाँ हनुमान् के चारों ओर खड़े होकर अदम्य उत्साह से बड़ा कोलाहल मचाने लगे। उन्होंने ऊपर उठाई हुई (हनुमान् की) पूँछ में चारों ओर से वस्त्रों को लपेटा। सारी पूँछ को तेल और घी में डुबोया और उग्र अग्नि को उसमें लगा दिया। तब राक्षस इस प्रकार कोलाहल कर उठे कि सारा अंडगोल काँप उठा।

अनेक रस्सियों को एक साथ ऐंठकर बनाये गये अतिदृढ रस्से से हनुमान् को, दोनों ओर से बाँधकर, लाख-लाख राक्षस उस रस्से को पकड़े हुए थे। चारों ओर निगरानी के लिए चलनेवाले शस्त्रधारी वीर दिगंतों तक इस प्रकार फैले हुए थे कि दिशाओं की सीमा पर रहनेवाला व्यक्ति भी उस सेना के छोर को नहीं देख सकता था।

राक्षस, अपने-अपने घरों के द्वार पर खड़े होकर लोगों को समाचार देते हुए चिल्ला रहे थे कि आओ-आओ, देखो-देखो। सुरक्षित उद्यान को उजाड़नेवाले, अक्ष आदि वीरों को मारनेवाले, सीता के साथ बात करनेवाले तथा मनुष्यों के प्रताप को बताने के लिए आये हुए इस वानर की क्या दुर्दशा हो रही है! आकर देखो।

राक्षस इस प्रकार चिल्ला रहे थे, मानों वे ब्रह्मांड के बाहर भी समाचार पहुँचा रहे हों। कोई नगाड़े बजा रहे थे। कोई धमका रहे थे। कोई चारों ओर दौड़-दौड़कर देख रहे थे। कोई जानकी को भी समाचार देने के लिए दौड़े जा रहे थे। जब सीता को यह समाचार मिला, तब वे बहुत व्याकुल हुईं। पसीना-पसीना हो गईं। तड़प उठीं। सिसकियाँ भरने लगीं। गिर पड़ीं। रोईं। आह भरने लगीं।

सीता ने तब अग्निदेव से प्रार्थना की—हे अग्निदेव! मातृ-सदृश करुणामय वायु के मित्र! अतिक्षुद्र, श्वान-सदृश क्रूर राक्षस (हनुमान् को) सता रहे हैं, तो क्या तुम उसपर दया नहीं करोगे? तुम संसार के साक्षिभूत हो। तुम्हें सब कुछ ज्ञात है। यदि मैं पवित्र पातिव्रत्य से युक्त हूँ, तो तुम उसको अपने ताप से न जलाओ। तुम्हें नमस्कार करती हूँ।

धवल वर्ण तथा छोटे-छोटे दाँतोंवाली देवी के इस प्रकार प्रार्थना करने पर

दीप्यमान अग्निदेव ने अपने अन्तर में (उष्णता को) शान्त कर लिया। उस महिमापूर्ण (हनुमान्) की पूँछ में हड्डी तक ऐसी शीतलता व्याप्त हो गई कि उसकी सारी देह पुलकित हो उठी।

अधिक कहने से क्या ? समुद्र की वडवाग्नि, धरती की ज्वालामय अग्नि, अन्य अग्नि, अन्तरिक्षगत अग्नि, मुनियों से रक्षित रक्तवर्ण त्रेताग्नियाँ—(गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण नामक तीन अग्नियाँ) तथा त्रिपुर-दाह करनेवाले विजयी (शिव) की नेत्राग्नि भी शीतल हो गई।

ब्रह्मांड की सीमा के परे रहनेवाले (ब्रह्मा) की हथेली में स्थित अग्नि भी शीतल हो गई। मेघों में स्थित वज्राग्नि भी शीतल हो गई। विजयशील उष्णकिरणों से घने अंधकार को निगल जानेवाला सूर्य-मंडल भी शीतल हो गया। उन नरकों की अग्नि भी शीतल हो गई, जहाँ पहुँचकर कोई नहीं लौटता।[1]

भक्ति के बंधन से कभी मुक्त न होनेवाले मन से युक्त हनुमान् ने अपनी पर्वत-जैसी पूँछ पर जलती हुई अग्नि को शीतल ही पाकर आश्चर्य में पड़ गया। यह समझकर कि चित्र-प्रतिमा के समान जानकी के पातिव्रत्य के प्रभाव से ही यह अद्भुत बात हुई है, वह अनुपम आनन्द से भर गया।

पिछली रात को सारे नगर में घूमकर भी हनुमान् उस नगर के सभी प्रदेशों की स्मृति को अपने मन में दृढ रूप से स्थापित नहीं कर सका था। अब उन मूर्ख राक्षसों ने स्वयं ही उस हनुमान् को सारी लंका में घुमा-घुमाकर सभी स्थानों को दिखाया। उसने भी सब ठीक से देख लिया। ठीक उसी प्रकार, जैसे इन्द्रियों के आगे-आगे चलने पर उनके पीछे-पीछे जानेवाला मन (विषयों का) ज्ञान प्राप्त करता है।

उस लंका नगर को पूरा-पूरा देखकर वह उसकी सीमा पर आ पहुँचा। उसने सोचा कि बंधन तोड़कर जाने का यही उपयुक्त समय है! झट वह (अपने दोनों ओर के) रस्सों को दृढता से पकड़कर इस प्रकार उछल पड़ा कि (उनको पकड़नेवाली) दो लाख भुजाएँ उन रस्सों के साथ ही खंभों के जैसे लटकने लगीं। हनुमान् के साथ ही वे राक्षस भी आकाश में जा पहुँचे।

वे एक लाख राक्षस (जो हनुमान् को पकड़े हुए जा रहे थे) बिखरकर, गिर पड़े और अपनी बाँहों के टूटने के साथ मर मिटे। अपनी विशाल बाहुओं और देह पर बँधी हुई रस्सियों के साथ अन्तरिक्ष में दिखनेवाला हनुमान्, सर्पों से आवृत गरुड के समान लगता था।

तब हनुमान् ने सोचा, प्रभु (राम) की वन्दना करके मैं इन पापी राक्षसों की लंका में आग लगा दूँगा और इस (नगर) को भी जलाकर शत्रुओं के नगरों को जलाने-वाले शिव तथा उनके साथियों को भी लज्जित कर दूँगा। यों सोचकर युद्ध में प्रबल अपने लांगूल को उस स्वर्णनगर की ओर बढ़ाया।

---

१. उपर्युक्त दोनों पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं। —अनु०

रात्रि के समान नील वर्णवाले प्रभु (राम) के दूत की अग्नि-ज्वाला से भरी हुई वह विजयी पूँछ इस प्रकार लगती थी, मानों शिवजी का ज्वालामय युद्ध-कुशल फरसा,[1] यह सुनकर कि उसके प्रभु (शिव) को निष्ठुर राक्षसों ने कष्ट दिया है, उनका और उनके नगर का विनाश करने के लिए जा रहा हो।

उस प्रतापी पूँछ ने उस लंका को, जलमय समुद्र ही जिसकी सीमा है, क्षणकाल में जला दिया। वह (पूँछ) उस शर के समान लगती थी, जिसे प्रवाल-वर्ण भगवान् (शिव) ने, मेरु को धनुष बनाकर, त्रिपुर को लक्ष्य करके, अपने समस्त भुजबल से प्रयुक्त किया था।

युगांत में कालरुद्र सब लोकों को अपने एक नेत्र की अग्नि से ही जला देता है, मानों इस समय वह (हनुमान् के रूप में) प्रलय के पहले ही उस महाविनाश का अभ्यास कर रहा हो—उसी प्रकार, अदम्य बलवान् (हनुमान्) ने गर्व से अपना सामना करनेवाले पापियों के नगर का विनाश करते हुए अपनी पूँछ को दूर तक फैलाया।

दिव्यशिल्पी (विश्वकर्मा) ने रजत, स्वर्ण, विविध उज्ज्वल रत्न आदि को लेकर जिन अपूर्व सुन्दर भवनों का निर्माण किया था, उन सब पर, जलती आग के साथ वह (हनुमान्) उसी प्रकार कूद पड़ता था, जिस प्रकार युगांत में पर्वतों पर महान् वज्र गिरता है।

काले राक्षसों के द्वारा, घृत की आहुति देकर किये जानेवाले यज्ञों को विध्वंस कर दिये जाने के कारण जो अग्निदेव अधिक भूख से पीडित था, अब मारुति की पूँछ का, आश्रय पाकर (सारी लंका को) जल्दी-जल्दी खाने लगा, जैसे युगांत में विषभोजी (शिव) के खिलाने पर समस्त लोकों की हवि को (वह अग्निदेव) खा डालता है। (१–१४०)

●

अध्याय १४

लंका-दहन पटल

(हनुमान् की पूँछ की) दारुण अग्नि ने बड़े-बड़े सुरक्षित भवनों पर लगी हुई ध्वजाओं को जलाकर, वितानों को दग्ध कर, ऊँचे स्तम्भों को चारों ओर घेरती हुई—दीर्घ भित्तियों को आवृत करती हुई, उन सब प्रासादों को भस्मसात् कर दिया।

(महलों के) दरवाजों में लगी आग ने सुन्दर प्रासादों में सर्वत्र फैलकर उन्हें भस्म कर दिया, तो उस नगर के निवासी अस्तव्यस्त होकर झूले पर जैसे इधर से उधर, उधर से इधर झूलते हुए भागने और चिल्लाने लगे।

---

१. हनुमान् शिवजी का अंश माना जाता है। अतः, हनुमान् की पूँछ की उपमा शिवजी के फरसे से दी गई है। —अनु०

रत्नों से निर्मित उज्ज्वल सौधों से ज्वालाएँ पुंजीभूत होकर निकल रही थीं, जिस से वहाँ की मनोहर कंकणधारिणी स्त्रियाँ यह पहचान नहीं पाती थीं कि कहाँ आग लगी है, कहाँ नहीं। और, अत्यन्त पीडित होने लगीं।

मधु-भरे विविध पुष्प जहाँ बिखरे रहते हैं, उस वन में विचरण करनेवाले कलापी-समान मनोहर रूपवाली रमणियाँ, दूर तक ऊपर उठे हुए धूम के गगन में छा जाने से दिग्भ्रान्त हो उठीं और अपने पतियों के जाने के मार्ग को न पहचान कर विलाप करने लगीं।

राक्षस-स्त्रियाँ और राक्षस-वीर बड़ा कोलाहल करते हुए (आग-लगे लोगों के) सिरों पर बहुत-सा जल उड़ेलते थे। किन्तु, उन लोगों के केशों और अग्नि-शिखाओं के एक जैसे[1] होने से यह पहचान नहीं पाते थे कि आग बुझी है या नहीं।

वहाँ के घरों में जलनेवाली अग्नि, जो अबतक रावण के भय से मंद पड़ी हुई थी, अब उसकी आज्ञा का भंग करके अपने वास्तविक स्वरूप को लेकर जलने लगी। जैसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति करनेवाले लोग माया का बन्धन छूट जाने से यथार्थ आत्मस्वरूप को पहचान लेते हैं।

तप्त धूम, उस त्रिविक्रम के समान उठ चला, जो पहले वामन के रूप में आकर (बली से) दान पाने के पश्चात् सब लोकों को अपने चरण से नापने के लिए उठा था।

नील वर्णवाले हाथियों पर अग्नि गिरने से उनका सारा शरीर जल उठा। उनके चमड़े जल जाने पर वे मदमत्त एवं अत्यन्त क्रोधी ऐरावत की समानता करने लगे।

कुहरे के जैसा धूम, उज्ज्वल अग्नि के साथ चारों ओर फैल गया। उससे भय-भीत होकर भैंसे, मेघों के समान दौड़कर समुद्र में जा डूबे। रमणियाँ भी हंसिनियों के समान भागकर (समुद्र में) जाकर बैठ गईं।

चारों ओर उड़नेवाली चिनगारियाँ बिजलियों के समान सर्वत्र जा गिरीं। वज्र-समान गर्जन करनेवाला समुद्र उत्तप्त हो उठा। उससे समुद्र में निवास करनेवाले मीन तथा अन्य जलचर जलकर तड़प उठे और प्राणहीन हो गये।

जल को पी डालनेवाली उग्र अग्नि सर्वत्र फैलने लगी, जिससे (वहाँ के भवनों का) सोना पिघलकर धाराओं में बह चला। ज्योंही वह प्रवाह समुद्र में जाकर गिरता, त्योंही उसका द्रव-रूप मिट जाता और वह बड़ी-बड़ी स्वर्णशिला का रूप धारण कर लेता।

एक शब्द कहने के पूर्व ही (अर्थात्, क्षणमात्र में ही) सब लोकों को खा जाने की शक्ति से संपन्न उस आग में वहाँ के पर्वत-जैसे उन्नत रत्नजटित प्रासाद, बड़े वनस्पतियों के समान ही खड़े नहीं रह सके और जलकर भस्म हो गये। स्वर्णमय होने के कारण वहाँ की धरती भी पिघल गई।

पत्थर से भी घना बनकर धुआँ चारों ओर फैल गया, जिससे स्वर्गलोक में भी अंधकार छा गया। ध्वजाओं से युक्त उन्नत रथ अपने बड़े-बड़े रत्न-खचित चक्रों-सहित जलकर ढेर हो गये।

---

१ राक्षसों के केश अग्नि की ज्वाला के समान लाल रंग के थे। —अनु०

उस समय मधुशालाओं में जो आग जल रही थी, उसने पापी (राक्षसों) के पेय मधु को स्वयं पिया। स्वभाव से निष्ठुर न होनेवाले व्यक्ति भी अपवित्र लोगों के निवास में जाने पर पापी बन जाते हैं।

लंका में लगी हुई वह आग चटचटाहट के साथ ज्वालाएँ फेंक रही थी, जिससे उस नगर के चारों ओर स्थित समुद्र भी उबल उठे। अग्नि-ज्वालाओं के भभककर अंतरिक्ष में बढ़ जाने से आकाश में स्थित बादल भी जल गये।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ आग से जलनेवाले अपने शरीर के साथ अन्तरिक्ष में उड़ गईं और दौड़ते हुए भूत जैसी लगनेवाली मृग-मरीचिका को देखकर उसे वन में बहनेवाली नदी समझकर उसमें जा गिरीं और जल गईं।

मधु-भरे उद्यानों में आग लग गई। तब, निरन्तर मधुवर्षा करनेवाले उत्तम पुष्पों में निवास करनेवाले भ्रमर, अपने समीप में अग्नि-ज्वालाओं की पंक्तियों को देखकर, उन्हें कोई विशाल कमल-वन समझकर उसमें गिर पड़े और झुलस गये।

कुछ राक्षस-पत्नियाँ, जिनकी भौंहें धनुष की समता करती थीं, यह सोचकर कि हमारे प्राणनाथ वानर के हाथ मारे गये, अब हम इस घर से बाहर नहीं जा सकती हैं, यहीं मर जाना हमारा कर्त्तव्य है—घरों के भीतर ही रहकर जल मरीं।

पुष्प जले, पल्लवों से चिनगारियाँ निकलीं। पत्ते और कलियाँ जलीं। डालें भस्म हो गईं। ऊपर के भाग ही नहीं, पेडों की जड़ें भी जल गईं। इस प्रकार पूरा-का-पूरा उद्यान जलकर कोयला बन गया।

अग्नि-ज्वालाएँ इतनी ऊँची उठ रही थीं कि आकाश के मेघ भी उनके मध्य में ही दिखाई पड़ते थे। उनसे अमरावती नगर भी तपने लगा। तब ऐसा लगा, मानों वहाँ के सुनहले कल्पवृक्षों की जड़ें धरती की ओर फैल रही हों।[1]

घनी अग्नि-ज्वालाएँ अंतरिक्ष में बड़ी ऊँचाई तक उठीं। वे आनन्दप्रद, उज्ज्वल कांतिपूर्ण चन्द्रमंडल को छूने लगीं, जिससे चन्द्रमंडल से पिघलकर अमृत बरस पड़ा। उस (अमृत) के स्पर्श से मृत राक्षसों में से कुछ सजीव हो उठे।

सूर्यमंडल को छूती हुई अग्नि-ज्वालाएँ उठीं, तो अन्तरिक्ष के सब मेघ जलकर काले पड़ गये। उनके बीच से सूर्य का प्रकाश पिघलते हुए स्वर्ण के समान लगता था।

घोड़ों को बाँधनेवाली रस्सियाँ आग में जल गईं और उनके साथ खूँटें भी जल गये। उनके साथ ही (घोड़ों के) मुख पर के रोम झुलस गये। अपनी टाँगों को झुकाये हुए सुन्दर घोड़े तड़प-तड़पकर जल मरे।

यम को भी निगल जानेवाले कुछ राक्षस, स्वर्णमय स्वर्गलोक की ओर उड़ चले। किन्तु, ऊपर फैले हुए धूम से घिर जाने से उनका दम घुटने लगा, जैसे वे पानी में डूब गये हों। फिर, वे तड़पकर आग में गिरे और जल मरे।

पीतवर्ण स्वर्णाभरणों तथा समुद्र-जैसे विशाल जघन-तटवाली राक्षस-रमणियों के

१. लंका में उठनेवाली अग्नि-ज्वाला सुनहले कल्पवृक्ष की जड़-सी लगती थी। —अनु०

कटि-वस्त्र में लगी आग, उनके उत्तरीय को जलाकर, उनके सुगंधित केशों को भी जलाने लगी, जिससे वे स्त्रियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं और मर गईं।

मान करनेवाली अपनी पत्नियों के मान-रूपी समुद्र को पार करके उनका संयोग प्राप्त करने के लिए आतुर बने हुए राक्षस और वे राक्षसियाँ, जो ऐसे दाँतवाली थीं कि मानों सेमल के फूल पर रखे हुए मोती हों—दोनों के चाँदनी-जैसे वस्त्र आग में जल उठे और वे मधुर संगम-सुख रूपी समुद्र के पार पहुँचने के पहले ही जल-समुद्र में जा गिरे।

पिंजरे में स्थित हरे रंग के तोते पिंजरों के साथ-साथ जलते हुए तड़प रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस-युवतियों के अंजन-लगे नयनों से निर्झर के जैसे आँसू बहकर उनके स्तन-तट पर गिरकर छितरा रहे थे। वे (आग से बचने के लिए) हाथी-सदृश अपने पतियों से लिपट जाने का प्रयत्न करती थीं, पर वहाँ व्याप्त धूम में इस प्रकार अदृश्य हो जातीं, जिस प्रकार मेघ के बीच बिजली छिप जाती हो। (भाव यह है कि धूम-समूह को अपना पति समझकर राक्षस-युवतियाँ उनसे लिपट जाने की चेष्टा करतीं और इस प्रकार आग में जल जातीं।

पर्वत-सदृश प्रासादों में आग लगने से उनमें से भागकर निकलनेवाली, दोष-हीन स्वर्णभरणों से भूषित स्त्रियाँ, अंतरिक्ष में उड़ जाने का प्रयत्न करतीं। किन्तु, अपार धूम-समूह में फँसकर, झुलसकर, इस प्रकार लगती थीं, जैसी परदे की आड़ में दिखाई देनेवाली चित्र-प्रतिमाएँ हों।

वहाँ के समस्त उद्यान जल गये। उद्यानों के अगरु, सुगंधित चंदन आदि अनेक वृक्षों की सुगंधि सर्वत्र फैल गई। (वे उद्यान इस प्रकार उजाड़ हो गये) जैसे युगांत-कालिक अग्नि से अनेक मीनों से पूर्ण समुद्र जलकर सूख जाता है।

अग्नि की ज्वालाएँ सारी लंका में, बिजलियों के समान सब दिशाओं में फैल गईं; जिससे यह नहीं विदित होता था कि कल्पवनों में कौन-से जल रहे थे और कौन आग से बचे थे। (भाव यह है कि कल्पवृक्ष स्वर्णमय होते हैं, अतः आग-लगे वृक्षों और आग से बचे वृक्षों में कोई अन्तर नहीं दिखता था।)

सर्वत्र व्याप्त होनेवाले धूम ने चारों ओर के समुद्र को इस प्रकार आवृत कर लिया कि वह (समुद्र) अदृश्य हो गया, जिससे ऊँचे पर्वतों के शिखरों से समुद्र-जल को भरने के लिए आनेवाले मेघ-समुदाय भटक गये और समुद्र को न देखकर श्वेत-पुष्पों के जैसे उड़ते हुए जा रहे थे।

बहुत अधिक धूम सर्वत्र फैल गया, जिससे आवृत होकर सुन्दर रजत-पर्वत (कैलास) भी अन्य पर्वतों के जैसा ही (काला) हो गया। हंस काक जैसे हो गये। क्षीर-समुद्र लवणसमुद्र-सा हो गया। अविनश्वर दिग्गज और साधारण गज—दोनों में कोई अन्तर नहीं रह गया।

सब वस्तुओं को भस्म करती हुई आग (राक्षसों की) देह में लग गई, जिससे वे चर्महीन होकर भागे और समुद्र-जल में जा डूबे। उनके लाल केशों तथा रक्त से भरी तरंगों से पूर्ण समुद्र भी जलता-सा दृष्टिगत होने लगा।

राक्षस-स्त्रियाँ एक बच्चे को अपनी गोद में लिये, दूसरे बच्चे को हाथ से पकड़े,

रोते हुए अन्य बच्चों से अनुसृत होती हुई तथा बन्धुजनों से घिरी हुई भाग रही थीं। (भागते समय) उनके केशों में आग सरसर करती लग जाती थी, तो वे अपने केश-पाशों को झट खोलती हुई, बिलखती हुई, नील-समुद्र में जा गिरती थीं।

शस्त्रागारों में धनुष, त्रिशूल, भाले आदि शस्त्र ईन्धन बन गये। कांतिमय शस्त्रों के रूप में स्थित फौलाद पिघलकर, अपने असली रूप में लौहखंड बन गये और महान् चैतन्य का व्यापार दिखाने लगे। (भाव यह है कि एक ही उपादान से नाना रूप में सृष्टि का निर्माण करके महान् चैतन्य-रूपी भगवान्, प्रलयकाल में पुनः सारी सृष्टि को मूल उपादान के रूप में परिवर्त्तित कर देता है। शस्त्रों का लोहा भी उसी प्रकार पहले नाना रूपों में रहकर फिर मूल उपादान लोहे के रूप में परिवर्त्तित हो गया।)

मुखपट्ट-भूषित हाथियों के शरीर में आग लग गई, तो वे अपनी शृंखलाओं और रस्सियों को तोड़कर, भारी खंभों को उखाड़कर, अपने कानों को स्थिर किये, पूँछ को ऐंठकर पीठ पर रखे और अपनी सूँड़ को ऊपर उठाये हुए भागे।

भयानक अग्नि के फैल जाने से, पक्षी आकाश में उड़ने से डरकर काले वर्ण-वाले समुद्र में जा गिरते थे। वे फिर उड़ नहीं पाते थे और मीन आदि उन्हें खा जाते थे। वे (पक्षी) उन व्यक्तियों की समता करते थे, जो करुणाहीन वंचक लोगों की शरण जाते हैं (और नष्ट हो जाते हैं)।

ऊँची उठी हुई वह अग्नि उस प्रलयकालिक ज्वाला के समान थी, जो जल को सोखकर, विशाल धरती में फैलकर, वृक्षों को जलाकर, पर्वतों को तप्त करके, अनुपम मेरु पर्वत को भी जला देती है। वह अग्नि सारे नगर को भस्म करती हुई रावण के प्रासाद में प्रविष्ट हुई।

(रावण के प्रासाद में स्थित) देवस्त्रियाँ तथा अन्य युवतियाँ घबराकर दिशा-शून्य होकर अस्त-व्यस्त भागीं। सेवा करनेवाले देवता चारों ओर बिखर गये। उन देवताओं की वही दशा हुई, जो पूर्वकाल में रावण के द्वारा स्वर्ग विजित किये जाने पर हुई थी।

कस्तूरी आदि का सुगंधित कीचड़, कल्पपुष्प, चंदन, अगरु इत्यादि सब वस्तुएँ जल गईं और उनसे, मधुवर्षा करनेवाले किसी अलौकिक मेघ के जैसा जो धुआँ उठा, उससे दिक्पालकों की देवियों के सहज सुगन्धित केश भी अधिक सुवासित हो गये।

उग्र अग्नि-ज्वालाओं के भड़क उठने से, उस रावण के, जो समुद्र के समान पराक्रमी था और गम्भीर क्रोधयुक्त होने से इतना भयंकर था कि कोई उसके निकट भी नहीं जा सकता था—सप्त प्रासाद इस प्रकार जलने लगे, जिस प्रकार सातों लोक प्रलयकालिक अग्नि में जल रहे हों।

रावण का दोषहीन, पर्वत के जैसा उन्नत, विशाल और ऊँची मंजिलों से युक्त वह महल स्वर्ण से निर्मित था। अग्नि-ज्वालाएँ उसको चारों ओर से घेरकर जलाने लगीं, जिससे वह अग्नि के रूप से एकाकार होकर ऐसा लगता था, मानों दक्षिण दिशा में भी एक मेरु-पर्वत उठ आया हो।

उस समय, रावण तथा उसके अंतःपुर की स्त्रियाँ तथा परिजन, सुन्दर रत्नों से निर्मित पुष्पक विमान पर आरूढ होकर बच निकले। वे सब कामचारी (अर्थात्, अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करनेवाले) होने के कारण वहाँ से उड़ चले। किन्तु, त्रिकूट-पर्वत पर स्थित लंका नगरी उन राक्षसों की तरह कामचारी न होने के कारण जलकर भस्म हो गई।

शासन-चक्र को चलानेवाले उस (रावण) ने क्रोधाग्नि उगलते हुए, राक्षसों को देखकर कहा—क्या सप्त लोकों को जला देनेवाला प्रलयकाल आ गया? या अन्य कोई उत्पात उत्पन्न हो गया है? इस भयंकर अग्नि से लंका के जलने का क्या कारण है?

अपने बंधुजनों को एवं धन-वैभव को खोकर रोनेवाले राक्षसों ने अपने कर जोड़कर निवेदन किया—'हे प्रभो! उस वानर ने तरंगायमान समुद्र से भी दीर्घ अपनी पूँछ में लगाई गई आग से ऐसा कर दिया।' यह सुनकर रावण उबल पड़ा।

आज एक क्षुद्र वानर के तेज से महान् लंकापुरी जलकर भस्म होकर उड़ गई, रक्तवर्ण अग्नि (इस नगर को) खाकर डकार ले रही है। हमारी यह दशा देखकर देवता हँसते होंगे। हमारा युद्ध-कौशल भी धन्य है! अच्छा है!! यह कहकर रावण अट्टहास कर उठा।

देवों को परास्त करनेवाले रावण ने (राक्षसों से) कहा—(लंका को) जलानेवाली अग्नि को बाँधकर ले आओ।

बड़े क्रोध से भरकर रावण ने कहा—यहाँ से बचकर भाग जाने के पहले ही उस विनाशकारी वानर को पकड़कर ले आओ।

उसके आस-पास में खड़े वीर 'जो आज्ञा' कहकर दौड़ चले।

असंख्य धनुर्धारी राक्षस-वीर, जो चिरकाल से अनेक उच्च पदों पर रहते आये थे, क्रुद्ध होकर उन रथियों के साथ दौड़ चले।

युद्धोचित माला धारण किये हुए सात राक्षस-वीर, जलपूर्ण समुद्र के जैसे उमड़ उठे और सेना को सजाकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो चले।

उस सेना ने अकाश और समुद्र से आवृत धरती पर दौड़कर चारों ओर से (लंका को) घेर लिया। उसने उस महिमामय (हनुमान्) को एक स्थान में अकेला खड़ा देखा।

अति उग्र क्रोध से भरकर 'पकड़ो, पकड़ो और मारो, मारो' कहते हुए, उस (हनुमान्) को घेर लिया। तब सर्वज्ञ हनुमान् ने उन्हें देखा।

वे छली राक्षस (हनुमान् के साथ युद्ध करने का) वचन दे चुके थे, अतः अब उन्हें उसका सामना करना पड़ा। उन्होंने अपने हाथों में त्रिशूल आदि लेकर मेघों के समान उमड़कर उसे घेर लिया। हनुमान् ने अपनी जलती पूँछ को लेकर उनका सामना किया।

(मारुति ने) राक्षसों को चारों ओर से अपनी पूँछ से घेर लिया और एक पेड़ को उखाड़कर उससे उन्हें मारना आरम्भ किया। क्रोध के साथ आये हुए राक्षस अपने शस्त्रों-सहित प्राणों को भी खो बैठे।

हनुमान् के मारने से आहत होकर राक्षसों के शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा, जिससे उस नगर को जलानेवाली अग्नि भी बुझ गई और सर्वत्र कीचड़ फैल गया।

उसके सम्मुख स्थित राक्षसों में बहुत-से मर गये। शेष रहनेवाले वीरों ने उसका फिर से सामना किया। किन्तु, सर्वशास्त्रज्ञ (हनुमान्) ने यम से तिगुना पराक्रमी होकर उन्हें निःशेष कर दिया।

मेघ-जैसे आकारवाले, बलवान् हाथ पैरवाले, पचास सहस्र वीर मारे गये। शेष बचे राक्षस भागकर नील जलवाले समुद्र में जा छिपे।

उस समय मारुति ने अपनी पूँछ को समुद्र में डुबोया। यों डुबोने से समुद्र का जल उबल पड़ा, जिससे वहाँ छिपे हुए अनेक राक्षस मिट गये। किन्तु, जो राक्षस वहाँ भी मरने से बच गये थे, उन्होंने पुनः आकर हनुमान् का सामना किया।

उन राक्षसों ने हनुमान् को घेरकर धनुषों से तीर चलाना आरम्भ किया। किन्तु, मारुति ने उन्हें ऐसा मारा कि दुबारा उठकर आये हुए वे वीर भी निहत हो गये।

अंतरिक्ष में चलनेवाले विद्याधर परस्पर कह रहे थे कि अग्नि सीता देवी के निवासभूत उद्यान के पास तक नहीं फटकी—(अर्थात् , उस उद्यान को नहीं जलाया)।

विद्याधरों के यह कहने से पराक्रमी हनुमान् आनंदित हुआ। आश्चर्यचकित हुआ। सोचा कि (पाप से) मैं बचा। वहाँ से उड़ा और जाकर पीतवलय-भूषित सीता देवी के चरणों पर नतमस्तक हुआ।

जानकी ने (हनुमान् को) देखा। देखकर अपने मन के ताप से मुक्त हो प्रशांत हुई। फिर, योद्धा हनुमान् ने यह कहकर कि अब कहने के लिए विशेष क्या है? प्रणाम करके लौट चला।

स्वच्छ ज्ञानवान् मारुति चला गया। तब अग्निदेव भी यह सोचकर कि यदि वंचक राक्षस मुझे देख लेंगे, तो पकड़कर ले जायेंगे, कहीं जा छिपा। (१–६४)

●

अध्याय १५

श्रीचरण-सेवन पटल

हनुमान् ने, यह सोचकर कि मैं अब शीघ्र ही यहाँ से चला जाऊँ, उस लंका में स्थित एक पर्वत के शिखर पर सूर्य के समान जा चढ़ा और सब लोकों को निगलनेवाले विष्णु के जैसे (अर्थात् , त्रिविक्रम के समान) विराट् आकार धारण किया। वह (राम के) कमल-चरणों के प्रति नमस्कार करके, आकाश-मार्ग से त्वरित गति से चल पड़ा।

सूँड़वाले हाथी के सदृश हनुमान्, मैनाक-पर्वत को पहले दिये हुए वचन के अनुसार उसके पास आ पहुँचा और उससे सब समाचार कहा। फिर, एक क्षणकाल में,

पुष्पभार से लदे, मधुवर्षा करनेवाले पुन्नाग वृक्षों से आवृत उस महेन्द्र-गिरि पर कूद पड़ा, जहाँ बड़े-बड़े पर्वतों को भी उखाड़ने में दक्ष (अंगद आदि) वानर-वीर उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वे वानर-वीर, जो (हनुमान् के बारे में सोचते हुए आशंकाओं से) व्याकुल होकर खड़े थे, अब हनुमान् को देखते ही यह जानकर कि उसका कार्य सिद्ध हुआ, अपूर्व आनन्द से भर गये ; जैसे घोंसले में रहनेवाले विहग-बाल अपनी माता के, घोंसले में आ पहुँचने पर आनन्द से भर जाते हैं।

कुछ वानर (आनन्द के कारण) रो पड़े। कुछ (हनुमान् के) सामने खड़े होकर घोर शब्द करने लगे। कुछ उसके समीप आकर प्रणाम करने लगे। कुछ उछल-उछलकर नाचने लगे। कुछ हनुमान् को इस प्रकार घेरने लगे, जैसे उसे यों ही उठाकर खा जाना चाहते हों। कुछ उसका आलिंगन करने लगे और कुछ ने उसे (अपने कंधों पर) उठा लिया।

कुछ वानरों ने (हनुमान् से) कहा—हे महिमामय ! तुम्हारे प्रसन्न मुख ने हमें यह समाचार दे दिया है कि तुमने (सीता) देवी के दर्शन किये हैं। तुम्हारे लिए हमने पहले से ही मधु, कंद मूल, शाक आदि चुन-चुनकर इकट्ठा कर रखे हैं। उन्हें खाकर अपना श्रम दूर कर लो—यह कहकर खाद्य पदार्थों को लाकर उसके सामने रखा।

(हनुमान् के) पैरों, भुजाओं, वक्ष, सिर और विशाल हाथों में, करवाल, त्रिशूल, शर आदि के आघात से उत्पन्न उन क्षतों की संख्या संसार की उत्पत्ति से अबतक व्यतीत हुए दिनों की संख्या से भी अधिक थी। उनको देख-देखकर वे वानर वेदना से इस प्रकार निःश्वास भरने लगे, जैसे उनके प्राण ही निकल रहे हों।

(हनुमान् ने) पहले वालिपुत्र (अंगद) को प्रणाम किया। फिर ऋक्षनायक (जांबवान्) के चरणों पर नत हुआ। उसके पश्चात् सब वानरों का यथायोग्य आदर-सत्कार करके बैठा और फिर कहने लगा—लोकनायक (राम) की देवी ने यहाँ स्थित सब वानरों को मंगल-वचन कहे हैं।

(हनुमान् के) इतना कहते ही सब वानर उठ खड़े हुए और आनन्द से भरकर अपने करों को जोड़कर बड़ी नम्रता से प्रार्थना करने लगे—हे पराक्रमी ! यहाँ से प्रस्थान करने से लेकर फिर लौट आने तक जो-जो घटनाएँ घटीं, उन सबका सविस्तर वर्णन करो। तब मारुति ने सब वृत्तांत सुनाया।

तब पौरुषवान् (हनुमान्) ने (सीता) देवी के आंतरिक तप के बारे में विस्तार-पूर्वक कह सुनाया। उनके दिये अभिज्ञान-चूडामणि के बारे में कहा। किन्तु, बड़े शस्त्र-धारी राक्षसों के साथ युद्ध करके जो विजय पाई थी, उसके बारे में तथा लंका जलाने के संबंध में, आत्म-श्लाघा होने के कारण कुछ नहीं कहा।

वानरों ने हनुमान् से कहा—तुम्हारे घावों से हमने जान लिया कि राक्षसों के साथ तुम्हें युद्ध करना पड़ा था। तुम्हारे आगमन की रीति से हमने जान लिया कि तुमने वहाँ विजय पाई है। ऊपर उठनेवाले धूम को देखकर हमने जान लिया था कि तुमने लंका में आग लगाई है। और, (सीता) देवी तुम्हारे साथ नहीं आईं—इससे हमें ज्ञात हो गया

कि वे राक्षस कितने बलवान् हैं। सब बातें हमने ठीक-ठीक जान लीं। अब बताओ, आगे हमें क्या करना है?

हनुमान् ने कहा—अब कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम महावीर (रामचन्द्र) को यह समाचार शीघ्र पहुँचा दें कि उनकी देवी को हम देख आये हैं और उन प्रभु के दुःख को शांत करें। हनुमान् के यह कहते ही सब झटपट उठ चले।

विवेकशील वे वानर-वीर, उमंग के साथ गगन-पथ में इस प्रकार उड़ चले, जिस प्रकार रघुपुंगव (रामचन्द्र) के धनुष से निकले हुए बाण चलते हैं। जब उष्णकिरण आकाश के मध्य में पहुँचा, तब वे वीर मधुवन में जाकर ठहरे।

वानरों ने हनुमान् से निवेदन किया—हमें मृत्यु से बचाकर रक्षा करनेवाले हे वीर! हम लोगों के मन को यह बात व्याकुल कर रही है कि हमारे लौटने की अवधि कभी की व्यतीत हो चुकी है। तबसे हमने कुछ भोजन भी नहीं किया है। अतः, हमें भोजन देने की कृपा करो। तब हनुमान् ने उत्तर दिया—हम सब जाकर वालिपुत्र (अंगद) से निवेदन करें।

सब वानरों ने अंगद के समीप जाकर अपने-अपने करों को जोड़कर विनती की—सुरभित हारों से अलंकृत वक्षवाले! आपकी यह वानर-सेना अधिक प्यास के कारण शिथिल होकर अत्यन्त कष्ट पा रही है। अतः, आप इन्हें मधुच्छत्रों से बरसनेवाला मधु दीजिए।

अंगद ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया। वानर-वीर समुद्र को भी भय-विकंपित करते हुए गरज उठे और मधु के छत्तों के भार से झुके हुए वन में जा पहुँचे। वे चढ़ा-ऊपरी करते हुए छत्तों पर झपटने लगे। (शाखाओं को) तोड़ने लगे। मधु पीनेवाले भ्रमरों के समान मधुरस को खूब पीकर मत्त हो गये।

एक वानर अपने मुख में रखने के लिए मधु उठाता, तो दूसरा कोई वानर बिना प्रयास ही उसे पीकर भाग जाता। एक के हाथ में रखे हुए मधु को दूसरा कोई छीनकर ले भागता। वे एक दूसरे के गले लगते। एक दूसरों पर चढ़कर 'खुशी', 'खुशी'—कहकर चिल्ला उठते।

जब यह सब हो रहा था, तब उस मधुवन के रक्षक, क्रोध से अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए आ पहुँचे और उमंग से उछलनेवाले उन वानरों को धमकाकर कहने लगे—तुम लोगों ने अनेक दीर्घ उष्णकिरणोंवाले (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) की आज्ञा का उल्लंघन किया है। क्या सोचकर तुमने ऐसा किया है? अब तुम्हारे प्राणों का अन्त निकट आ पहुँचा है।

तुम्हारी इस हरकत के कारण हमारे नायक दधिमुख हमपर नाराज होंगे—यह कहकर उन राक्षसों ने दधिमुख के पास जाकर विनती की कि विशाल कपिसेना फल-समृद्ध मधुवन को उजाड़ रही है। हम उन शत्रुओं को दबाने से असमर्थ हैं।

उनके वचन सुनकर दधिमुख कह उठा—मधुवन को उजाड़नेवाले कौन हैं?

दिखाओ मुझे। तब उन रक्षकों ने निवेदन किया—जब वालिपुत्र आदि बानर उद्यान में आकर ठहरे, तब अंगद की आज्ञा से वह वानर-सेना मधु के छत्तों से लदी शाखाओं को तोड़ने लगी।

तब, हे शासन में समर्थ वीर ! हमने विजयी सुग्रीव के आदेश का पालन करने के लिए, उन वानरों को रोका। किन्तु, उन वानरों ने हमें दुर्वचन कहे और अपने हाथों से मारा-पीटा, जिससे हम बहुत पीडित हुए।—यों रक्षकों के कहते ही, दधिमुख कह उठा—कदाचित् वालिपुत्र ने अपने बलवान् पिता की मृत्यु का समाचार नहीं सुना है।

यों कहकर अग्नि के समान वह भड़क उठा और बड़ा कोलाहल करता हुआ दो करोड़ वीर-कंकणधारी वानरों की सेना को साथ लेकर मनोहर मधुवन में प्रवेश किया। उसी समय मधु पिये हुए पवित्र कर्मवाले वानर श्रीरामचन्द्र का जय-जयकार करते हुए अंगद के चरणों पर आकर गिरे।

दधिमुख ने अंगद से कहा—हे मंदर-सदृश कंधोंवाले ! यह उद्यान इन्द्र के द्वारा वालि को प्रदान किया गया था और मैं इसकी इस प्रकार रक्षा करता आया हूँ कि आकाश में संचरण करनेवाले देवता भी इसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। किन्तु, मेरी रक्षा को तुमने तोड़ दिया। तुम सूर्य-पुत्र (सुग्रीव) की शक्ति से परिचित हो न ? तुम्हारा जीवन-काल आज ही समाप्त होनेवाला है।

तुमने इस प्रकार मधुवन को उजड़वाया है—यह कहकर दधिमुख ने वालिपुत्र पर एक बड़ा पत्थर उठाकर फेंका। अंगद ने उस पत्थर को उल्टे हाथ से रोककर क्रोध से दधिमुख को पकड़कर घूँसों से मारा।

अंगद ने अपनी मुष्टि से उस (दधिमुख) को ऐसा मारा कि उसके मुख से रुधिर बह चला। फिर, यह कहकर कि तुम भागो और जाकर सूर्यपुत्र से यह समाचार कहो, दधिमुख को वहाँ से भगा दिया। फिर, क्रोध से आग उगलते हुए अपनी सेना को आज्ञा दी कि दधिमुख के सैनिकों को पकड़कर अच्छी तरह पीटो।

(अंगद की सेना के वानरों ने दधिमुख के सैनिकों को) पकड़कर लताओं से बाँध दिया। फिर, अपने बलिष्ठ हाथों से उन सैनिकों को आगे और पीछे की ओर से खूब पीटा। वे वीर असह्य पीडा से तड़प उठे। तब अंगद ने उनसे कहा—भागो यहाँ से। तुम भी जाकर (सुग्रीव से) कहो। वे वीर भयभीत होकर वहाँ से भाग गये।

जैसे तरंग-भरे जल में गोते लगाते हैं, वैसे ही उन वानरों ने मधु में गोते लगाये। अपने नायकों को मधुर मधुफल इत्यादि लाकर दिये। इस प्रकार, अपनी थकावट मिटाकर मेरु की परिक्रमा करनेवाले रथ से युक्त सूर्य के आतप के कम होने की प्रतीक्षा करते हुए उस उपवन में (विश्राम करते) रहे।

ज्ञान-रूपी (राम) के दूत (हनुमान्) के त्रिशूलधारी रुद्र के लिए भी असंभव कार्य पूराकर के लौट आने तक की घटनाओं का हमने वर्णन किया। अब हम श्रीराम के सम्बन्ध में कहना चाहते हैं।

सूर्यपुत्र पंकज पर आसीन लक्ष्मी (-सदृश सीता) का अन्वेषण करने के लिए

वायुपुत्र आदि वानरों को चारों दिशाओं में भेजकर, प्रभु (राम) को सांत्वना देता रहा।

आरक्त नेत्रवाले (राम) जब-जब (वियोग की पीडा से) मूर्च्छित हो जाते थे, तब-तब सुग्रीव मधुर वचनों से उन्हें सांत्वना देता था। तब राम इस प्रकार सचेत हो उठते थे, जैसे बार-बार नये प्राण पा रहे हों।

तीन दिशाओं (पूर्व, उत्तर और पश्चिम) में गये हुए वानरों ने उस देवी को नहीं देखा। यह वचन उन्हें अधिक कष्ट पहुँचा रहा था। किन्तु, रामचन्द्र अति बलशाली हनुमान् के विषय में सोचते हुए अपने शरीर में प्राणों को रोके रहे।

आर्य (राम) ने दारुण दुःख-सागर में मग्न होकर सुग्रीव से कहा—हमारा प्रयत्न सफल होनेवाला नहीं है। मुझे अति क्षुद्र और अवारणीय अपयश प्राप्त हुआ है। वे फिर कहने लगे—

हमारी निश्चित की हुई अवधि बीत गई है। फिर भी, दक्षिण दिशा में सुरभित केशवाली देवी का अन्वेषण करने के लिए गये (वानर) अबतक नहीं लौटे हैं। वे कदाचित् मृत्युग्रस्त हो गये हैं या उनपर और कोई विपदा आ गई। न जाने क्या हुआ ?

कदाचित् वह (सीता) मर गई। अतः, यह सोचकर कि इस दुःखद समाचार को उन्हें (राम-लक्ष्मण को) देने की अपेक्षा हमें मर जाना अच्छा है, वे शोकमग्न हो मर गये। या अभी तक (सीता का) अन्वेषण करते फिर रहे हैं।

या राक्षसों को देखकर क्रोध उमड़ आने से कदाचित् उन वानरों ने भयंकर युद्ध छेड़ दिया होगा और राक्षसों की माया से (युद्ध में मरकर) वीर स्वर्ग में पहुँच गये होंगे। अथवा (राक्षसों के द्वारा) सदा के लिए ऐसे बंधन में डाल दिये गये होंगे, जहाँ से मुक्त होना असंभव है।

या यह सोचकर कि निश्चित अवधि के भीतर हम अपने स्थान को वापस नहीं पहुँच सके, अब लौटकर जाने में हमारा कुशल नहीं है, कदाचित् वे सुख-दुःख के द्वन्द्व से मुक्त हो तपस्या करने लग गये हैं। नहीं तो उन्हें और क्या हो गया ? कहो। (यों राम ने सुग्रीव से कहा।)

जब राम इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे, तब दधिमुख सिर से बहते हुए रुधिर के सहित सुग्रीव के सामने आ खड़ा हुआ। उसने दोनों कर जोड़कर, पहाड़ के जैसे नीचे गिरकर नमस्कार किया।

फिर, उठकर उसने (सुग्रीव से) निवेदन किया, हे प्रभो ! सुनो। आज सारा मधुवन मिट गया। उसके यह कहते ही सुग्रीव ने उसके रक्त से भरे मुख को देखकर पूछा—ऐसा करनेवाला कौन है ? कहो।

दधिमुख ने उत्तर दिया—नील, कुमुद, दीर्घ पर्वत-सदृश जांबवान्, (धरती को) आवृत-सी करती हुई चलनेवाली (विशाल) वानर-सेना वहाँ पहुँचकर मधुवन को उजाड़ने लगी तब—

उद्यान के रक्षकों ने उन लोगों को वैसा करने से रोका। किन्तु, अंगद ने उन्हें

मारकर भगा दिया और आपके प्रति निंदा के वचन भी कहे। हमने उसके निंदा के वचनों से क्रुद्ध होकर एक चट्टान को तोड़कर—

वालिपुत्र की पुष्ट देह को क्षण-मात्र में ही मिटा देने के उद्देश्य से उसपर फेंका, तो उसने उलटे हाथ से उस चट्टान को रोक लिया और बाँस में लगी हुई आग-जैसे भड़क उठा। फिर, मुझे पकड़कर इस प्रकार घूँसे लगाये कि मेरे प्राण तड़प उठे और 'यह समाचार सूर्यपुत्र सुग्रीव से जाकर कहो'—यह कहकर उसने मुझे भगा दिया।

यह सुनकर सूर्यपुत्र आनन्दित हो उठा और शेषशयन (विष्णु के अवतार राम) को नमस्कार करके कहा—(अंगद का) यह कार्य इस बात की सूचना दे रहा है कि पीत-स्वर्ण के कंकणों से भूषित देवी, उत्तम पातिव्रत्य के साथ अभी तक जीवित हैं।

हे प्रभो! मधुर गान-सदृश बोलीवाली उन (देवी) के दर्शन उन वानरों ने पाये हैं। इसी से उत्पन्न आनन्द के कारण भ्रमरों से पूर्ण मधुवन को उजाड़कर उन्होंने मधु पिया है। अब आप दुःख से मुक्त हो जायँ—यों सुग्रीव ने कहा।

दक्षिण दिशा में गये हुए वानर लौट आये हैं—यह सामाचार पाकर रामचन्द्र अपने मन में सोचने लगे कि न जाने, वे क्या समाचार लाये हैं—यह सोचकर वे मन में दुःखी होते हुए उनकी प्रतीक्षा करने लगे। तब सुग्रीव ने दधिमुख को देखकर पूछा—

उस वन में आये हुए वानर कौन हैं? बताओ। (दधिमुख ने कहा—) मारुति, वालिपुत्र, मैन्द, जांबवान् आदि सत्रह शक्तिशाली सेनापति अपने कोलाहल से लज्जित करनेवाली सेना के साथ आये हैं।

इस प्रकार, जब उस (दधिमुख) ने उत्तर दिया, तब फिर रविपुत्र (सुग्रीव) ने बलवान् दधिमुख को देखकर कहा—तुम्हें एक बात कहना चाहता हूँ। वालिपुत्र (अंगद) नीच कार्य करनेवाला नहीं है।

विजयी प्रभु (राम) की आज्ञा को सिरपर धारण कर स्वच्छ तरंगों से पूर्ण समुद्र से आवृत भू-प्रदेश में सीता का अन्वेषण करके राक्षसों का विनाश करके वे लौटे हैं। ऐसे कार्य करनेवालों के बारे में तुम किस प्रकार यह कहते हो कि उन्होंने अनुचित कार्य किया है?

इतना ही नहीं, वालिपुत्र युवराज भी है। उससे वैर करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे विपरीत बुद्धिवाले! तुमने कुछ भी नहीं समझा है। यदि अपना भला चाहते हो, तो लौटकर उस (अंगद) की शरण में जाओ—सुग्रीव ने इस प्रकार कहा।

सुरभित हार-भूषित दधिमुख, सिर नवाकर, मुख ढककर, द्रवितचित्त होकर, अपने सैनिकों के साथ अपनी देह को सिकोड़े हुए पुनः मधुवन में आया।

अंगद (दधिमुख) को देखकर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने सोचा—भागा हुआ यह (दधिमुख) यदि पुनः मेरे साथ लड़ाई छेड़ेगा, तो मैं इसके प्राण हरण कर लूँगा। किन्तु, दधिमुख यह कहता हुआ कि हे प्रभो, मैं आपका दास हूँ, हाथ जोड़कर उसके सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

'मेरे बड़े अपराध को क्षमा करो'—यह कहता हुआ वह अंगद के चरणों पर

गिर पड़ा। वालिपुत्र ने तुरन्त उसे उठाकर गले से लगा लिया और सांत्वना देते हुए कहा—'तुम्हारे प्रति मैंने जो अपराध किया है, उसे क्षमा करो।'

फिर अंगद ने हनुमान् से कहा—हमलोग निश्चित अवधि व्यतीत हो जाने पर लौटे हैं, इससे हमें जो भय उत्पन्न हुआ है, उसे दूर करने के लिए तुम पहले जाकर कमलनयन (राम) के दुःख को दूर करो।

उन वानरों को जब यह विदित हुआ कि अति प्रतापवान् सुग्रीव का क्रोध शान्त हो गया है, तब सूर्य की धूप कम होने पर, अपराध से मुक्त हुए वे सब वानर (सुग्रीव के निकट) चल पड़े।

इधर रामचन्द्र ने सूर्य के पुत्र से प्रश्न किया—क्या ये वानर मुझसे कहेंगे कि उन्होंने पातिव्रत्य पर दृढ रहनेवाली देवी को देखा? या यह कहेंगे कि वह (सीता) सतीत्व-धर्म से परे चली गई है? मुझसे कहो।

इसी समय, हनुमान् भी इस प्रकार दिखाई पड़ा, मानों सूर्य दक्षिण दिशा में उदित हुआ हो। स्वर्ण का दान करनेवाले (उदार) हस्तयुक्त रामचन्द्र ने प्रेम से उसकी ओर देखा।

हनुमान् (राम के) निकट आ पहुँचा। पहुँचकर उसने महिमामय (राम) के बलिष्ठ वीर-वलयधारी चरणों को प्रणाम नहीं किया। किन्तु, उस दक्षिण दिशा की ओर, जिस दिशा में कमल पुष्प पर निवास करनेवाली देवी, अपने पंकजासन को त्यागकर रहती थीं (अर्थात्, लक्ष्मी का अवतार सीता रहती थीं) मुख करके हाथ जोड़े और फिर वैसे ही धरती पर दंडवत किये पड़ा रहा।

इंगित को समझनेवाले राम ने अतिबलशाली हनुमान् के व्यापार को देखकर यह समझ लिया कि भ्रमरों से अलंकृत कुंतलोंवाली देवी (सीता) सकुशल है। इसने उस देवी के दर्शन किये हैं और उसका सतीत्व भी अचंचल है।

तब राम ने अनुमान से ही हनुमान् के किये व्यापारों को जान लिया। उस आनन्द से उनकी भुजाएँ फूल उठीं। कमल-दल जैसे उनके नेत्र छलछला उठे। उनका अपूर्व दुःख भी शांत हो गया। और (सीता के प्रति) उनका प्रेम उमड़ उठा।

हनुमान् ने रामचन्द्र से निवेदन किया—मैंने अपनी आँखों से उस सतीत्व के अलंकार स्वरूप देवी को देखा, जो अब स्वच्छ तरंगों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका में (बंदिनी बनकर) रहती हैं। हे देवों के देव! आप अपनी आशंकाओं से मुक्त हो जायँ और दुःख का त्याग करें—यह कहकर वह आगे कहने लगा—

प्रभो! मेरे लिए पूज्य वह आपकी देवी, आपकी पत्नी बनने योग्य हैं। आपके पिता की पतोहू कहलाने योग्य हैं तथा मिथिलापति जनक महाराज की पुत्री होने के अनुकूल महिमा से पूर्ण हैं। और भी सुनिए—

स्वर्ण के समान स्वर्ण ही है, अन्य कुछ नहीं। वैसे ही वह क्षमामयी देवी अपने समान स्वयं ही हैं। उनका उपमान अन्य कोई नहीं है। उन देवी ने आपको ऐसा यश दिया है कि उनके पति होने के कारण अपनी समानता करनेवाले आप स्वयं ही हैं, अन्य

कोई नहीं। मुझे भी उन्होंने ऐसा महत्त्व दिया है कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है।

मेरी माता, उन देवी ने आपके कुल को आपके योग्य रखा है (अर्थात्, आपके कुल को कलंकित नहीं किया है)। स्वयं महान् यश का भागी बनकर अपने कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर उस (कुल को) भी उपकृत किया है। अपने को (पति से, अर्थात्, आपसे) अलग करनेवाले (रावण) के कुल को यम के लिए प्रदान किया है। देवों के कुल को जीवित रखा है एवं मेरे कुल की भी प्रतिष्ठा बढ़ने का कारण बनी हैं। अब उन्हें और क्या करना शेष रह गया है ?

धनुर्धारी विशाल बाहुओं से सुशोभित हे वीर! मैंने त्रिकूट-गिरि पर स्थित, समुद्र से घिरी लंका में महान् तपस्या करनेवाली स्त्री को नहीं देखा; किन्तु कुलीनता, क्षमा और पातिव्रत्य नामक तीनों गुणों को एक साथ आनन्द-नृत्य करते हुए देखा।

आप उन देवी के नयनों में रहते हैं, उनके मन में रहते हैं, उनकी वाणी में रहते हैं, उनके स्तन पर मन्मथ के बाणों से उत्पन्न अमिट घावों में रहते हैं, तो यह वचन कैसे सत्य हो सकता है कि आपसे वह देवी बिछुड़ी हुई हैं।

हे स्वामिन्! समुद्र-मध्यस्थित लंका नामक नगर के एक कोने में, गगनोन्नत, स्वर्णमय कल्पवृक्षों के घने उद्यान में, जहाँ उदय और अस्त नहीं दिखाई पड़ता, आपके भाई द्वारा निर्मित पवित्र पर्णशाला में वह देवी रहती हैं।[1]

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने (रावण को एक) शाप दिया था कि यदि तुम किसी स्त्री का स्पर्श करोगे, जो तुमसे प्रेम नहीं करती, तो तुम्हारे सिर के असंख्य टुकड़े बनकर बिखर जायेंगे। अतः, पवित्र देवी की देह का स्पर्श करने से डरकर वह (रावण) भूमिखंड के साथ ही उन (देवी) को ले गया है।

उसने उन (सीता) देवी का स्पर्श नहीं किया—यह बात आप इन्हीं लक्षणों से जान सकते हैं कि अबतक ब्रह्मांड बिना टूटे स्थिर रहता है। शेषनाग के फन (जिनपर यह धरती खड़ी है) फटे नहीं हैं। समुद्र उमड़कर तटों को लाँघ नहीं गये हैं। (रवि, चंद्र आदि) ज्योतिष्पिंड टूटकर गिरे नहीं हैं। वेद तथा (उनके प्रतिपादित) कर्म मिटे नहीं हैं।

वियोग-दुःख से पीडित वह देवी पातिव्रत्य-धर्म से च्युत नहीं हुई, जिससे सारा स्त्रीकुल ही पूजनीय हो गया है। देवों की स्त्रियाँ भी इसी कारण से पूजनीय हो गई हैं।

शिव के अर्धांग में रहनेवाली देवी (पार्वती) भी अब उन भगवान् के वाम पार्श्व में रहने योग्य ही नहीं, किन्तु सिर पर रहने योग्य हो गई हैं। पंकजासना (लक्ष्मी) भी विष्णु के वक्ष पर नहीं, किन्तु उनके सहस्रों सिरों पर आसीन होने योग्य बन गई हैं।

सारी लंका में ढूँढ़ता हुआ मैं रावण के अंतःपुर में गया। वहाँ कर्णाभरणों से भूषित सब स्त्रियों को देखता हुआ अन्त में लहलहाते हुए शीतल उपवन में जा पहुँचा। वहाँ अश्रुओं के तरंगायित सागर में स्थित लक्ष्मी-समान देवी को देखा।

---

१. पहले कवि ने यह कह दिया है कि रावण पंचवटी से सीता को पर्णकुटी-सहित ही उठा लाया था। अशोकवन में लक्ष्मण-निर्मित उसी पर्णशाला के भीतर सीता रहती हैं। —अनु०

भूतों के दल को भी भयभीत करनेवाली असंख्य राक्षसियाँ घनी होकर वहाँ खड़ी थीं और उनकी रखवाली कर रही थीं। इस दशा में, अपने भय को आपके स्मरण से ही दबाये, वह देवी इस प्रकार बैठी थीं, मानों करुणा ही स्त्री रूप में वहाँ बैठी हुई हो।

सहजात उत्तम गुणों से भूषित, उज्ज्वल ललाटवाली उन साध्वी देवी के अनुपम प्रेम को अपने नेत्रों से देखने (अर्थात्, उनके प्रेम का अनुभव करने का) सौभाग्य केवल आपको है। इस विशाल संसार में पुरुष-जन्म पाकर आप धन्य हुए हैं।

हे प्रभो! प्राचीरों से घिरी प्राचीन नगरी लंका में नित उसास भरती हुई, मुमूर्षु बनी हुई रहनेवाली कलापी-तुल्य अप्सराएँ, यद्यपि पहले से उन देवी को नहीं जानती थीं, तथापि उनके सतीत्व की महिमा को पहचानती हैं।

हे स्वामिन्! देवी के सम्मुख पहुँचकर प्रणाम करने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ मैं वहाँ खड़ा रहा। उस समय विजयमाला से भूषित शूलधारी लंकाधिप वहाँ आया और देवी के प्रति प्रार्थनापूर्वक कुछ वचन कहे। देवी के कठोर वचन कहने पर क्रुद्ध होकर वह उन्हें मारने को उद्यत हुआ।

देवी का सतीत्व, आपकी करुणा और पवित्र धर्म ही उन (सीता) की रक्षा करते रहे हैं। तब रावण वहाँ स्थित राक्षसियों को यह आज्ञा देकर कि जाकर उसे सताओ, वहाँ से चला गया। वे राक्षसियाँ मेरे उच्चारित मंत्र के प्रभाव से निद्रामग्न हो गईं।

उस समय, देवी अपने प्राण त्यागने का प्रयत्न करने लगीं। एक लता को वृक्ष से लटकाकर उससे अपने गले को बाँधने जा रही थीं कि श्वान-जैसा यह दास उन्हें रोककर आपका नाम लेकर उनके चरणों पर नत हो खड़ा हो गया।

अश्रुवर्षा करती हुई वह देवी पहले अपने मन में यह आशंका कर उठीं कि कदाचित् यह भी वंचक राक्षसों की माया है। फिर मुझसे बोलीं—तुम बड़े कृपालु हो, जब मैं मरने जा रही थी, तब तुमने कालवर्ण प्रभु (राम) का नाम लेकर मेरी रक्षा की।

हे मेरे प्रभु! मैंने जो अभिज्ञान बताये, उन सबका उन्होंने ठीक-ठीक विचार किया। उन्होंने यह पहचान लिया कि मेरे मन में कुछ भी छल नहीं है। अन्त में मैंने आपकी दी हुई अँगूठी उन्हें दी। वह (उनके लिए) मरणकाल में जीवन-दान करनेवाली सँजीवनी के समान थी।

हे ऐश्वर्ययुक्त! एक ही क्षण में मैंने दो विस्मयकारी दृश्य देखे। उन देवी ने उज्ज्वल रत्नांकित अंगूठी को अपने स्तनतट पर ज्योंही रखा, त्योंही उनके तन के ताप से तपकर वह अँगूठी पिघल गई। किन्तु, तुरंत ही आनन्द के कारण जो शीतलता बढ़ी, उससे वह (अँगूठी) ठंडी होकर यथारूप बन गई।

उन्होंने उस अँगूठी को, वंचक राक्षसों के नगर में आने के कारण अपवित्र हुई जानकर मानों अपने आनन्दाश्रु के सहस्रों कलशों के जल से अभिषिक्त किया। मन-ही-मन सब अनुभव करती रहीं, किन्तु मुख से एक शब्द भी नहीं निकाल सकीं। उनकी कृश देह फूल उठी और वे आश्चर्य-विमुग्ध हो गईं। वे अपलक खड़ी रहीं और आह भरने लगीं।

हे प्रभो ! इस दास ने, उन देवी को उनके बिछुड़ने के पश्चात् आपकी जो दशा हुई, वह सब सुनाकर कहा—हे देवी ! तुम्हारे रहने का स्थान का ज्ञान न होने से तुम्हारी खोज करने में इतना विलंब हुआ। फिर, आपके दुःख के बारे में बताया। मेरे वचन सुनकर वह स्वस्थप्राण हुई।

मुझसे यहाँ के सारे समाचार को सुनकर, उन्होंने वहाँ (लंका में) घटित हुए वृत्तांत कहे। फिर, यह कहकर कि मैं अभी एक मास पर्यंत जीवित रहूँगी। यदि उन (मेरे पति) का मन मेरे प्रति अनुरक्त न रहे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह कहकर आपके वीर-कंकणधारी चरणों को लक्ष्य करके उन्होंने प्रणाम किया।

प्रणाम करने के उपरान्त, अपने वस्त्र में बाँधकर रखी हुई, रत्नों में श्रेष्ठ चूडामणि को खोलकर मेरे हाथ में दिया। हे ज्ञानस्वरूप ! अपने रक्तकमल-सदृश नेत्रों से इस मणि को देखिए—यों कहकर उस हनुमान् ने, जिसका उत्तम यश वेदों तथा शास्त्रों के स्थिर रहते समय तक अमिट रहेगा, उस चूडामणि को (राम के हाथ में) दिया।

श्रीरामचन्द्र के मन में प्रेम उमड़ उठा। उससे उनके मन का ताप तथा देह की शिथिलता दूर हो गई। अपने हाथ में उस चूडामणि को देख उनको ऐसा अनुभव हुआ, मानों वे अग्नि के सम्मुख अपने सुन्दर कर में सीता देवी का पाणिग्रहण कर रहे हों।

उन्हें रोमांच हुआ। अश्रु उमड़-उमड़कर बहे। वक्ष और भुजाएँ फूल उठीं और फड़कने लगीं। स्वेदबिन्दु निकल आये। सुन्दर मुँह प्रफुल्ल हो उठा। श्वासों के शीघ्रता से चलने के कारण उनकी देह फूल उठी। अहो ! उनकी उस दशा को समझनेवाले कौन हैं ?

उस समय अन्य वानरों के साथ अंगद आदि सेनापति भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राम तथा सुग्रीव को नमस्कार किया। कार्य में सफलता प्राप्त होने के आनन्द से वे यों प्रफुल्लवदन हुए, जैसे आकाश मध्य-स्थित पूर्णचन्द्र का विशाल बिम्ब हो।

वहाँ स्थित सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने (राम से) कहा—हे प्रभो ! सुनो, अब हम देवी को अनायास ही देख सकते हैं। तब राम ने कहा—अब विलंब क्यों करते हो, यों ही क्यों बैठे हो ? (यह सुनकर) स्तम्भ-सदृश पुष्ट कंधोंवाला सुग्रीव झट उठकर चला गया।

(सुग्रीव ने) आज्ञा दी कि 'अरे', शब्द कहकर पुकारने के पूर्व ही सब वानर-सेनाएँ एकत्र हो जायँ। ढिंढोरा पीटनेवाला सर्वत्र ढिंढोरा पीट-पीटकर सबको सावधान करने लगा। तब अपार वानर-वाहिनी उमड़कर दक्षिण दिशा में इस प्रकार फैली, मानों तरंगायमान समुद्र अपनी वेला को लाँघकर उमड़ चला हो।

चक्रधारी राम ने नील को देखकर यह आज्ञा दी कि शत्रु आकर कहीं हमारी सेना को बाधा न दें, इसलिए मत्तगज-सदृश वीरों को आगे करके उनके पीछे-पीछे सेना को चलने दो और तुम ठीक मार्ग दिखाते हुए आगे-आगे चलो।

अब रामचन्द्र इस प्रकार (नील को) आज्ञा देकर उठे, तब मारुति ने अपने दोनों कर जोड़कर निवेदन किया—हे प्रभो ! मुझे क्षुद्र कार्य करनेवाला एक वानर समझकर मेरा तिरस्कार न करें। किन्तु, मेरे कंधों पर आरूढ होने की कृपा करें। यों कहकर अपना

सिर धरणी पर रखकर उसने दंडवत किया। प्रभु भी हनुमान् के कंधे पर आरूढ हो गये। तब अति बली वालिपुत्र (अंगद) ने लक्ष्मण को प्रणाम करके निवेदन किया—

हे अकलंक! आप अब मेरे कंधों पर बैठ जाइए। यह कहकर वह (अंगद) अपने कर से अपना मुख ढके बड़ी नम्रता के साथ खड़ा रहा। श्रीरामचन्द्र के अनुज भी उस प्रार्थना को स्वीकार करके उसके कंधे पर बैठ गये। तब वानर-सेना बिना किसी प्रतिरोध के अपने मार्ग पर बढ़ चली।

वायु के पुत्र (हनुमान्) के कंधे पर श्रीरामचन्द्र और अंगद के विजयमाला-भूषित कंधे पर लक्ष्मण—दोनों अभीष्टप्रद वीर, गरुड तथा वृषभ पर आरूढ हरि तथा हर के सदृश ही जा रहे थे। कांतिमय स्वर्गलोक के निवासी, निर्मल ज्ञानप्रद देवताओं ने उनका जय-जयकार करके स्वर्णमय दिव्य पुष्पों की वर्षा की।

राघव ने यह सोचकर कि यदि वह बलवान् तथा विशाल वानर-सेना स्थल-मार्ग पर चलेगी, तो पृथ्वी के निवासी मनुष्य कष्ट पायेंगे, उस सेना को मधुर आदेश दिया कि वह पर्वत-मार्ग से चले। वह सेना, जिसका कहीं कुछ प्रतिरोध नहीं हो सकता था, फलों, कंद-मूलों, मधु इत्यादि से पूर्ण मनोहर तथा बड़े-बड़े पर्वतों पर से होकर जाने लगी।

विशाल वीर-कंकणधारी हनुमान् सुनाता जा रहा था कि त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका की, विजयशील और कालवर्ण राक्षस लोग किस प्रकार सभी थके बिना कड़ी रखवाली करते रहते हैं। उनका वैभव कैसा है और उनका दुर्ग कैसा है। शीघ्रगामी वानर-वीर यह सब कथा सुनते हुए दीर्घ पथ को अनायास ही पार कर चले।

इस प्रकार, वानरनायक (सुग्रीव) और सन्मार्गचारी वीरों (राम-लक्ष्मण) का अनुसरण करके चलनेवाली उस वानर-सेना ने मनोहर तथा विशाल वनों से भरे पर्वतों पर से होकर, ग्यारह दिन व्यतीत होने पर, बारहवें दिन दक्षिण में स्थित समुद्र को देखा। (१—६३)
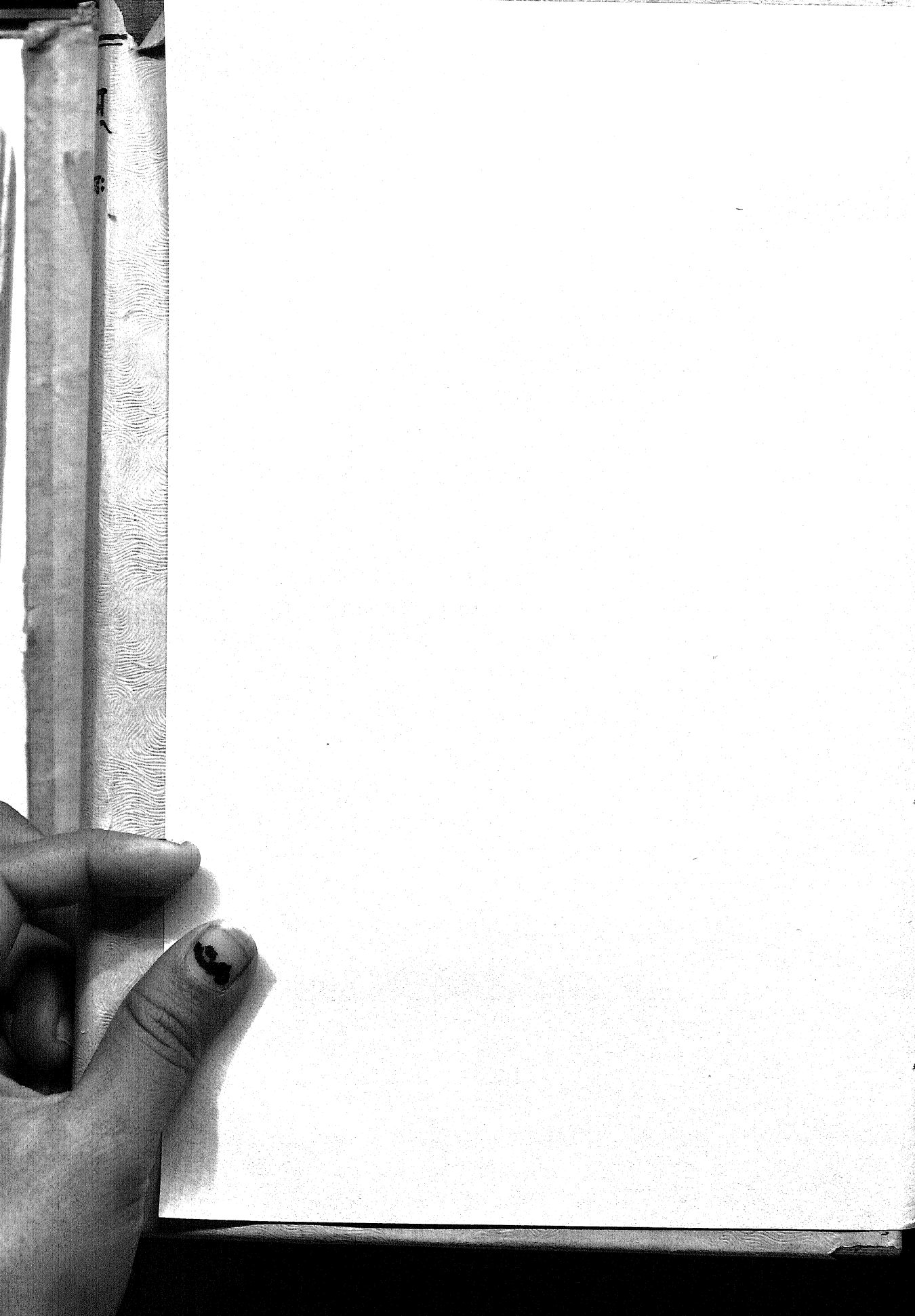
कंब रामायण

युद्धकाण्ड
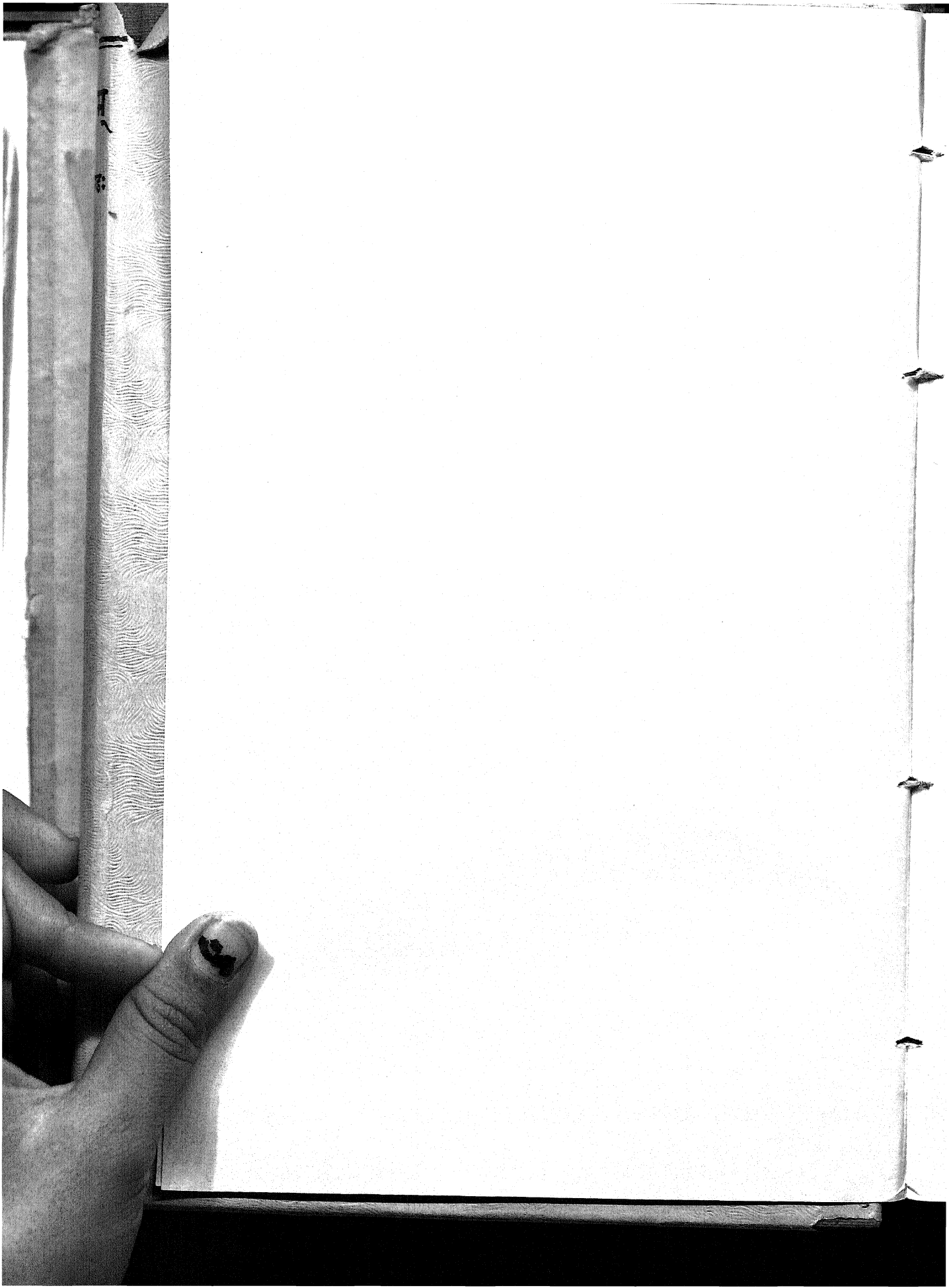
मंगलाचरण

वह परमतत्त्व ऐसा है कि यदि कहा जाय कि वह एक है, तो वह एक है। यदि कहा जाय कि वह अनेक है, तो वह अनेक है। यदि यह कहा जाय कि वह किसी वस्तु के जैसा नहीं है, तो वह वैसा नहीं है। यदि कहा जाय कि वह अमुक-जैसा है, तो वह वैसा ही है। यदि 'नहीं है' कहा जाय, तो नहीं है। 'है' कहा जाय, तो वह है—अहो, उस भगवान् की अवस्थिति भी विचित्र है। हम जैसे लोगों के लिए उसे जानना और उत्तम जीवन (अर्थात्, मोक्षपद) पाना कैसे संभव हो सकता है ?

(भाव यह है कि भगवान् के तत्त्व को समझना हमारे लिए असंभव है। जबतक भगवान् अपनी कृपा से हमारा उद्धार न करें, तबतक मोक्ष पाना भी हमारे लिए संभव नहीं। उपनिषद् का यह वाक्य यहाँ स्मरणीय है—'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः'—अर्थात्, यह (भगवान्) जिसको स्वयं चुन लेता है, उसके लिए स्वयं ही अपना ज्ञान प्रकाशित कर देता है।)

●

अध्याय १

समुद्र-दर्शन पटल

सत्तर 'वेल्लम्'[1] संख्यावाली वह वानर-सेना जब दक्षिण दिशा के समुद्र पर जाकर ठहरी, तब युगांत में भी न हिलनेवाले उन्नत पर्वत (हिमालय आदि), समुद्र

---

१. वेल्लम्—आठ अक्षौहिणी का एक एकम्, आठ एकम् की एक कोटि, आठ कोटि का एक शंख, आठ शंख का एक विन्द, आठ विन्दों का एक कुमुद, आठ कुमुद का एक पद्म, आठ पद्म का एक देश, आठ देश का एक समुद्र तथा आठ समुद्रों का एक 'वेल्लम्' होता है।

और पृथ्वी, उत्तर की दिशा के गगन पर उठ गये और दक्षिण दिशा का समुद्र, पृथ्वी आदि नीचे की ओर झुक गये।

शंख के समान (परिशुद्ध) स्वभाववाली (सीता) देवी से वियुक्त होने के पश्चात् रामचन्द्र की आँखें; जिन (आँखों) की समता करनेवाले कमलपुष्प भी जब बन्द हो जाते थे, रात्रि के समय भी निद्रा नहीं करती थीं—ऐसे उन राम ने उमड़कर फैली हुई विशाल सेना के बाहर तथा (अपने) अन्तर में भी उमड़नेवाले समुद्र को देखा। (भाव यह है कि वानर-सेना समुद्र के तट पर फैली हुई थी। रामचन्द्र ने उस सेना के पार विशाल समुद्र को देखा। समुद्र को कैसे पार किया जाय और रावण को युद्ध में कैसे परास्त किया जाय—ऐसी चिन्ता-रूपी समुद्र को भी अपने अन्तर में उमड़ते हुए देखा।)

वीचियों से लहरानेवाला वह समुद्र, उस समय ऐसा लगा, मानों यह विचार कर कि विष्णु भगवान्, चिर काल से (समुद्र की शेष-शय्या को छोड़कर) घूमते रहने के पश्चात् अब पुनः यहाँ आये हैं और अब निद्रा करेंगे, बहनेवाले दक्षिण-पवन के द्वारा विष्णु की शय्या पर पुष्प-समान फेन और मुक्ताओं को बिखरवा रहा हो और उस शय्या को झाड़-पोंछकर पुनः बिछवा रहा हो।

मंद मारुत के आघात से मुक्ता आदि को बिखेरनेवाली समुद्र-वीचियों से जो जलबिंदु बिखर पड़ते थे, वे (जलबिंदु), अश्रु बहानेवाली लता-समान सीता के दुःखी रहने के कारण प्राप्त अपयश एवं मन्मथ के शर, दोनों के लक्ष्य बने हुए (राम) की मनोहर भुजाओं को इस प्रकार जलाने लगे, जिस प्रकार भाथी की हवा पाकर लुहार की भट्ठी से ऊपर उठनेवाली चिनगारियाँ हों।

उन रामचन्द्र को, जो ऐसे पीडित थे कि लगता था कि उनका कल का (सुन्दर) शरीर आज (कृश होकर) कुछ दूसरा ही हो गया है, देखकर किंचित् भी दया से रहित समुद्र, अकेला रहकर बड़ा घोष करता हुआ उनकी पीडा को बढ़ा रहा था। उस समुद्र के मध्य उठनेवाली, एक दूसरे से गुँथ जानेवाली वीचियों पर से बहनेवाला मंद मारुत भी मधुस्रावी 'पुन्नै' पुष्पों की सुगन्धित रज को उनके शरीर पर लगाये बिना नहीं चलता था।

वियोग के कारण राम का शरीर पीडित होकर कृश हो गया था, इसीसे पर्वत धनुर्भूषित कंधे का उपमान कुछ-कुछ हो सका (अर्थात्, जब राम पीडित नहीं थे, तब उनके पुष्ट कंधों का उपमान पर्वत नहीं हो सकता था)। प्रवाल की लता, सप्त लोक में प्रशंस्यमान पातिव्रत्यवाली सीता देवी के अरुण अधर का दृश्य उनके सम्मुख उपस्थित करके उनके प्राण पीनेवाला यम बनी थी।

हे मुक्ताओ ! मयूर-समान सीता का स्थान अब समीप आ जाने से उन देवी के पास शीघ्र जाने के लिए अधिक कातर होनेवाले मन को, वीरता को प्रकट करनेवाले धनुष से रक्षित अभिमान रोकता रहा। इस प्रकार, दिन-दिन क्षीण होते रहनेवाले राम के प्राणों को

(उनके सामने) सीता देवी के दाँतों का दृश्य उपस्थित करके तुम क्यों पीना चाहती हो ? क्या क्रूर राक्षसों के साथ तुम्हारा कुछ बंधुत्व है ?

समुद्र की वीचियों का उमड़कर राम के कमल-चरणों पर आकर गिरना ऐसा लगता था, मानों समुद्र यह सोचकर कि 'चंद्र-समान ललाटवाली सीता अब अति कठोर दुःख भोग रही है, मेरी पुत्री,[1] पातिव्रत्य से युक्त इस देवी को क्या ऐसा दुःख भोगना उचित है ?—बहुत दुःखी हो गया हो और मुक्ता-समान आँसू बहाता हुआ राम से प्रार्थना कर रहा हो।

आदिशेष पर स्थित पृथ्वी (चंदन घिसने का) लोढ़ा थी। तुषार-बिंदु थोड़ा-थोड़ाकर जल छिड़क रहे थे। मरोड़ी हुई वीचियों का जल पीसने का पत्थर था। और, मानों समुद्र धवल फेन-रूपी चंदन को घिस-घिसकर विरह-ताप से पीडित राम की देह पर लगा रहा था।

बड़ी-बड़ी तरंगों से भरा हुआ समुद्र ऐसा लगता था, मानों कोकिलबयनी तथा सुन्दर स्तनोंवाली सीता के दुःख को दूर करने तथा देवों के भय मिटाने के लिए अपने मनोहर कर में धनुष एवं कंधे पर तूणीर लेकर शत्रुओं से युद्ध के हेतु जानेवाले, गंगा से सिंचित कोसल देश के अधिपति रामचंद्र को देखकर वह अत्यन्त आनन्दित हो गया हो तथा अपने करों को उठाकर दौड़ता हुआ हर्षध्वनि कर रहा हो।

ऐसे अंजनवर्ण समुद्र के पास पहुँचकर, उस समुद्र से भी सातगुना अधिक मान, दुःख तथा प्रेम से भरकर रामचंद्र आगे के कर्त्तव्य के बारे में सोचने लगे। अब उधर लंका में क्या हुआ, इसका वर्णन करेंगे। (१—११)

●

अध्याय २

रावण-मंत्रणा पटल

(हनुमान् के द्वारा लंका विध्वस्त हुई थी। अतः,) दिव्य शिल्पी मय, कमल-भव ब्रह्मा को साथ लेकर सुन्दर लंका में आया और उस लंका को त्रिलोकों के सब नगरों से अधिक सुन्दर नगर बना दिया, जिसको देखकर देवता आश्चर्य से स्तब्ध रह गये।

वीर-कंकणधारी रावण ने स्वर्ण तथा नवरत्नों से निर्मित अति मनोहर लंका नगर को देखा तथा स्वर्ग को भी देखा और लंका को (जलने के) पहले से भी अब अधिक सुन्दर बना हुआ देखकर वह (रावण) आनन्दित होकर अपना क्रोध भूल गया।

त्रिमूर्त्तियों में प्रथम उल्लेखनीय सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) ने दिव्य शिल्पी को सौंदर्य की

---

१. सीता लक्ष्मी का अवतार हैं। क्षीरसागर के मंथन के समय अमृत आदि वस्तुओं के साथ लक्ष्मी भी समुद्र से निकली थी। इसीलिए सीता को समुद्र की पुत्री कहा गया है।—अनु०

पराकाष्ठा दिखाई थी और उसका निर्माण करने की शक्ति भी प्रदान की थी। अनेक बार यह सुन्दर सृष्टि रचकर, मिटाकर, पुनः-पुनः रचते रहने से जिस (ब्रह्मा) को अति अद्भुत कौशल प्राप्त हो गया था, उसके लिए कौन-सी रचना अपूर्व हो सकती है ?

युद्धोचित वीर कंकणधारी रावण ने अपनी सुन्दर लंका नगरी का अवलोकन किया। फिर, (उसके पुनर्निर्माण पर संतुष्ट होकर) उसने दिव्य शिल्पी (मय) को अनेक पुरस्कार दिये और ब्रह्मा की यथाविधि पूजा की और उस (ब्रह्मदेव) को वहाँ से विदा किया।

उस समय रावण, अनेक सहस्र उज्ज्वल किरणोंवाले पद्मराग से जटित स्तंभों से युक्त अति सुन्दर मंडप में सिंह की प्रतिमा से युक्त एक उन्नत आसन पर (मंत्रणा करते हुए) आसीन था।

उसके दोनों ओर अप्सराएँ चामर डुला रही थीं। उसके वक्ष पर पुष्पमालाएँ हिल रही थीं। वह अनेक वर प्राप्त किये हुए बन्धुओं, मंत्रणा में निपुण (मन्त्रियों) तथा सेनापतियों से घिरा हुआ उस सभा-मंडप में आसीन था।

रावण ने अपने मन की बात पर विचार करने के उद्देश्य से आज्ञा दी कि इस सभा-मंडप से मुनि, देव तथा यक्ष, अन्य लोगों के आथ अलंकृत केशोंवाली स्त्रियाँ एवं बच्चे भी चले जायँ।

रावण ने अपने प्रभाव को दिखाते हुए भ्रमरों के साथ पवन को भी वहाँ से हटा दिया और विद्वान्, चिरकाल से परिचित, बन्धु तथा उससे कभी पृथक् न होनेवाले मंत्रियों को ही वहाँ रहने को कहा।

उसके उत्तम बंधुजनों में भी, विस्तृत शास्त्रज्ञान, युद्ध में प्रदर्शित वीरता तथा उसके प्रति प्रेम—इनसे युक्त होने पर भी, जो लोग उसकी संतान या भाई नहीं थे, उन सब को सभा-मंडप से उसने अलग भेज दिया।

(रावण ने) ऐसे वीरों को, जो सारे संसार को एक ही साथ पीस सकते थे, सभा-मंडप की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में खड़ा किया। इससे वेग से उड़नेवाले पक्षी, मृग, कीड़े-मकोड़े भी उस सभा-मंडप के निकट चित्र-लिखित जैसे, हिलने से भी डरकर, अचंचल खड़े रहे। तो, अब और क्या कहा जाय ?

रावण ने मन-ही-मन सोचा—मेरी प्रतिष्ठा एक वानर के कारण कुंठित हुई। अब इससे भी अधिक अपमानजनक बात और क्या हो सकती है ? अहो ! मेरा राज्य और सेना की व्यवस्था भी बहुत सुन्दर है ! फिर, उसने मंत्रियों से कहा—

एक वानर ने लंका को अग्नि से विध्वस्त कर दिया। विजय-ध्वजाओं से शोभायमान यह नगर मिट गया। उस अग्नि-ज्वाला से मेरे मित्र तथा बंधु जल मरे। यों वानर से उत्पन्न अपमान की वार्त्ता सर्वत्र फैल गई है। मेरा शरीर केवल इस आसन पर पड़ा रहा।

कुओं में जल के बदले रक्त उमड़ रहा है। हमारी लंका नगरी में पहले (वानर के द्वारा) जो अग्नि सुलगाई गई थी, वह अबतक शांत नहीं हुई है। अगरु-धूम से सुरभित

होनेवाले स्त्रियों के केशों से आग जलने की दुर्गंध अबतक सर्वत्र फैल रही है। अबतक हम सब वीर सुख भोगते थे, किन्तु अब—

कुछ बड़ा कार्य नहीं कर सके। (जन्म का कुछ लाभ न पाने के कारण) जन्म लेकर भी हमारी दशा जन्म न लेने के समान ही है। 'हम पर आक्रमण करनेवाला वानर मरा'—ऐसी वार्त्ता हमने नहीं सुनी। हम अपयश में डूब गये हैं। अब हमें क्या करना चाहिए ?

रावण के यों कहते ही वीर-कंकणधारी सेनापति मन में व्यथित हो उठा और प्रणाम कर कहने लगा—हे राजन्! आपसे एक निवेदन करना है। मेरी बात पूरी सुनने की कृपा करें। फिर, विचारपूर्ण चित्त से उसने कहा—

(सब विषयों को) समझने की शक्ति रखनेवाले, हे राजन्! मैंने पहले ही निवेदन किया था कि मनुष्यों को वंचित करके, उज्ज्वल ललाट तथा रूई जैसे चरणों से युक्त कलापी-तुल्य रमणी (अर्थात् सीता) का हरण करना कायरतापूर्ण कार्य है। आपने मेरा वह वचन ग्राह्य नहीं समझा।

कदाचित् आप इससे व्याकुल हैं कि जिन (राम-लक्ष्मण) ने खर आदि को मारा, खुले केशों के साथ रोती हुई आपकी बहन की नाक काट डाली तथा हमारे लिए अपयश उत्पन्न करनेवाला कार्य किया, उसको अभी तक मारा नहीं गया, जिससे आपका राज्य कलंकित हो गया है।

संसार के रक्षक राजा भी क्या दंडनीय अपराध करनेवाले को देखकर सहन कर चुप रह सकते हैं ? हे भ्रमरों से युक्त पुष्पमाला धारण करनेवाले! शत्रुओं को परास्त करनेवाला पराक्रम क्या उनको नमस्कार करके जीने में ही है ?

आप त्रिभुवन में प्रथम वीर माने जाते हैं, तो क्या वह एक साथ विरोध में उठनेवाले देवों तथा दानवों को परास्त कर उनके पराक्रम और शक्ति को मिटा देने के कारण है या उन्हें क्षमा कर देने के कारण है ? यह बताइए।

हे कुल को प्रकाशित करनेवाले राजन्! हमें चाहिए कि शत्रुओं के प्राण मिटाकर विजयी होकर आयें। किन्तु, वैसा न करके यदि हम सुख भोगते रहेंगे, तो एक वानर ही क्या, एक मशक भी हम को परास्त कर देगा।

लंका को जलाकर चले जानेवाले वानर का पीछा करके उसे यहाँ भेजनेवालों के प्राण पीकर हमें आनन्द मनाना चाहिए, ऐसा न करके मुँह से निंदापूर्ण वचन कहते हुए दुःखी चित्त के साथ जीवित रहने से हमारी बलहीनता ही प्रकट होगी। इस प्रकार, सेनापति ने कहा।

सेनापति के यह कहने के पश्चात् पर्वत-समान कंधोंवाले महोदर नामक राक्षस ने जलती आँखों से घूरकर देखते हुए कहा—हे राजन्! हमारा कर्त्तव्य वही है। मेरा निवेदन है कि—

आपसे देव दब गये। यक्ष भाग गये। बलवान् असुर भी गर्वहीन हो गये। सबसे नमस्कार पानेवाले त्रिमूर्त्ति भी कहीं दुबक गये।

कितने भी ऊँचे जीव क्यों न हों, उनका हरण करनेवाला यम भी आपको, अपना प्राणहारी मानता है और आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके स्वीकार करता है। आपकी महिमा को प्रमाणित करने के लिए और क्या चाहिए ?

आपने रजत-पर्वत (हिमाचल) को, उसपर स्थित ऋषभवाहन (रुद्र) के साथ गगन तक उठा लिया था और महान् ध्वनि में सामगान किया था। ऐसे पराक्रम से युक्त, हे राजन्! पेड़ की शाखाओं में वास करनेवाले मर्कट के पराक्रम की तुलना में भी क्या आपका पराक्रम छोटा है ?

पृथ्वी, स्वर्ग एवं अन्य सब लोकों में कौन ऐसा है, जो बड़े पराक्रम से युक्त होकर तुम्हारी दृष्टि में नहीं आया हो। हे नायक! विचार कर देखें, तो बड़े पराक्रमी लोगों के विषय में जैसी मंत्रणा (आवश्यक) होती है, वैसी मंत्रणा इन क्षुद्र मनुष्यों के विषय में करना भी व्यर्थ है।

अब हम अपनी विपदा की बात ही क्यों करें ? आप अभी मुझे भेज दें। मैं सारे वानर-कुल का समूल नाश करके अविजेय समझे जानेवाले उन मनुष्यों (राम-लक्ष्मण) को विजित करके आप के लिए उनसे बदला लेकर लौट आऊँगा।

यों महोदर नामक सेनापति ने कहा। तब 'वज्रदंत' नामक सेनापति उदीयमान सूर्य के समान, रक्तवर्ण नयनों से युक्त होकर कह उठा—ये मनुष्य अधिक सन्नाह[1] के भी योग्य नहीं हैं।

'अभी जाकर पृथ्वी के मनुष्यों और वानरों को अपने हाथों से पीसकर खा डालो।' हमें ऐसी आज्ञा न देकर आप व्यर्थ मंत्रणा क्यों कर रहे हैं ? क्या हमारे पराक्रम के संबंध में (आपको) शंका है ?

चाहे किसी भी लोक में क्यों न हो, आपकी आज्ञा न माननेवाले शत्रुओं को मैंने मिटाया है। फिर भी, क्या मुझसे आज्ञा का उल्लंघन हो जाने की आशंका से आप यह कार्य मुझे नहीं सौंप रहे हैं ?

तब 'दुर्मुख' नामक सेनापति उस (वज्रदंत) से 'बस! बस!' कहकर फिर रावण की ओर देखकर बोला—इस समय आप एक सामान्य व्यक्ति के समान क्यों बात कर रहे हैं ? फिर प्रणाम करके ये वीरतापूर्ण वचन कहे—

आपके पराक्रम के सम्मुख आठों दिग्गज भी बलहीन हो गये थे। देवता निर्बल हुए थे। त्रिनेत्र शिव का कैलास बलहीन हुआ था। अब ये मनुष्य और वानर ही यदि आपके सम्मुख पराक्रमशाली लगते हों, तो सचमुच रावण का पराक्रम भी आश्चर्य-जनक है ?

तटस्थता के साथ विचार करने पर विदित होता है कि मंत्रणा का कार्य बलहीन व्यक्ति ही करते हैं। यदि हम अपने शत्रुओं को बलवान् समझने लगें, तो हे शब्दायमान वीर-कंकणधारिन्! क्या हम अपने प्राणों के प्रेम से दबकर जी सकेंगे।

हे राजन्! पृथ्वी के मनुष्य, वानर तथा अन्य प्राणी हमारा भोजन बनने को

१. सन्नाह—हथियारों से लैश होकर युद्ध के लिए तैयार होना।

उत्पन्न हुए हैं। यदि हम, अपने भोजन बननेवाले उन प्राणियों से डरें, तो भला, बलवान कहलानेवाले हमसे बढ़कर मानसिक दृढता रखनेवाले और कौन हो सकते हैं ? अब क्या ऐसी मंत्रणा भी करने योग्य ही है।

एक वानर था, जो यहाँ आया, लंका-भर में आग लगाई और अपना सामना करनेवाले सब को मारकर लौट गया। क्या हम राक्षसों को अपना निवास छोड़कर बाहर निकलना भी कठिन है ?

अबतक कौन ऐसे हुए हैं, जो हमारे नगर में आकर इसकी व्यवस्था को, इसके बल को, हमारी भयंकर सेना की विशालता को तथा हमारे पराक्रम को पहचान कर अपने प्राणों के साथ निकल गये हों।

अब हम अपने लिए योग्य कार्य का विचार करें, या अपने मुख्य जीवन-लक्ष्य का विचार करें, या विजय उत्पन्न करनेवाले कार्य को सोचें, या किसी भी प्रकार के कार्य की सफलता का विचार करें, सब प्रकार से यही हमारा कर्त्तव्य है कि राम-लक्ष्मण के निवास पर जाकर उन्हें मार डालें।

फिर 'महापार्श्व' नामक सेनापति दुर्मुख को अपने हाथों के संकेत से चुप करके बोल उठा—अब हमारा क्या पराक्रम रह गया है ? क्रोध और पराक्रम तो अब वानरों में ही रहते हैं !

इसके पूर्व (वानर के साथ हुए युद्ध में) कुछ राक्षस मारे गये—इस कारण से ही क्या राक्षसों की सब शक्ति भग्न हो गई ? या वानर के द्वारा लंका जब जलाई गई, तब क्या लंका के साथ राक्षसों का प्रताप भी जल गया ?

आज्ञा देकर (वानर को) यहाँ भेजनेवाले थे दो नर। यहाँ आकर आग उगलनेवाला था एक वानर और अब उस कार्य से चिन्तित होनेवाले हैं त्रिलोकी-वीर राक्षस-सेनापति। तो अब और क्या-क्या होगा—इसका अनुमान कौन कर सकता है ?

क्या हमें चुपचाप बैठकर ऐसी बातें करनी चाहिए ? हमारा कर्त्तव्य यही है कि नरों और वानरों को पकड़-पकड़कर खा जायें और उन्हें समूल विनष्ट कर दें।—यों पराक्रमी तथा नेत्रों से क्रोधाग्नि उगलनेवाले महापार्श्व ने कहा।

फिर, वीर-कंकणधारी, अग्नि के-से रूपवाले 'पिशाच' नामक राक्षस ने कहा—हमारे नायक ने भयभीत होकर करणीय कार्य के बारे में प्रश्न किया। (जब हमारा नायक ही भयभीत हुआ है, तब हमारे यहाँ रहने से कुछ न होगा) हम दिशा-दिशा में जाकर अपने जीवन को समाप्त कर लें।—यों विरक्ति के साथ उसने कहा।

तब 'सूर्यशत्रु' नामक एक राक्षस ने कहा—हमसे भी बड़े रावण की यह दशा हो गई है और हम नर तथा वानर को परास्त करने के लिए इस प्रकार मंत्रणा कर रहे हैं। विचार करने पर लगता है कि नर ही श्रेष्ठ हैं। हम उनसे गये-बीते हैं।

तब 'यज्ञहा' नामक राक्षस ने कहा—यदि हमारी इस मंत्रणा का विषय मनुष्यों के साथ का युद्ध है, तो राक्षसों के पराक्रम को घटानेवाला इससे बढ़कर और कौन कार्य हो सकता है ? यों कहकर वह अपनी दुर्दशा पर लज्जित हुआ।

तब 'धूम्राक्ष' ने कहा—जब अग्नि-ज्वाला के समान रुद्र के साथ युद्ध करने जाना भी हमारे लिए परिहास-योग्य कार्य है तब अब वानरों के झुंड के साथ खड़े रहनेवाले मनुष्यों पर आक्रमण करने जाना कम उपहास-योग्य कार्य नहीं है। यह कहना आवश्यक नहीं है। यदि वही हम पर आक्रमण करें, तो उनसे लड़ना हमारे लिए उचित होगा।

उसके पश्चात् अन्य राक्षसों ने भी, बाँबी के साँप के समान पीडित होनेवाले हृदय के साथ कहा—बस यही कार्य है और कुछ विचार करना आवश्यक नहीं।

तब 'कुंभकर्ण' नामक राक्षस ने अन्य राक्षसों को यह कहकर रोका कि जो करतब नहीं दिखा सकते हैं, उन्हें मौन रहना चाहिए। फिर रावण के निकट जाकर बोला—यदि तुम मुझे अपना भाई समझकर मेरी बात मानोगे तो मैं कुछ कहूँगा।

ब्रह्मा जिस वंश का आदिपुरुष है, ऐसे इस वंश में तुम एक अनुपम वीर उत्पन्न हुए हो। सहस्र शाखाओंवाले सामवेद का अर्थ जानकर उत्तम ज्ञान से संपन्न हो। फिर भी तुम, जैसे अग्नि को देखकर उसके रंग से मुग्ध होकर उसे पकड़ने लगे। नियति-वश होनेवाले कार्य क्या ऐसे ही होते हैं?

चित्र के समान अति सुन्दर लंका जब जल गई, तब अपने राज्य के विनाश पर तुम बहुत दुःखी हुए। किन्तु, हमारे कुल से भिन्न सूर्यकुल में उत्पन्न एक व्यक्ति की पत्नी को चाहकर उसे बंदी बनाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? ऐसे कार्य से बढ़कर और गर्हणीय पाप और क्या हो सकता है?

तुम लज्जित हो कि तुम्हारा यह सुन्दर नगर जल गया। किन्तु, जब तुम्हारी देवियाँ तुम पर प्राण-समान प्रेम से अनुरक्त हैं, तब परनारी के सुन्दर चरणों पर बार-बार झुकना और उसके निषेध-वचन सुनना—क्या ये सब तुमको यश देनेवाले हैं?

जिस दिन तुम ने वेदमार्ग के विरुद्ध अन्य पुरुष की पतिव्रता पत्नी को करुणा-हीन होकर कठोर कारावास में रखा, उसी दिन राक्षसों का सारा यश मिट गया। हे प्रभु! क्या यह कहना बुद्धिमत्ता होगी कि नीच कृत्य करनेवाले यश पायेंगे?

(हम) दोषहीन परनारी को कारागार में रखते हैं। दोषहीन यश भी पाना चाहते हैं। अपने मान (प्रतिष्ठा) की बात करते हैं। किन्तु, काम का पोषण करते हैं। मनुष्यों से संकोच करके हम पीछे हटते हैं। अहो! हमारी विजय भी बहुत अच्छी है।

तुमने बड़े लोगों के जैसा कार्य नहीं किया है। कुल की अप्रतिष्ठा के कारणभूत कार्य ही किया है। हे राजन्! यदि इस समय मधुस्रावी पुष्पों से भूषित सीता को मुक्त कर देंगे, तो उससे हम उपहास के पात्र होंगे। इसलिए, यदि सीता के कारण मनुष्यों से युद्ध करके हम उनसे निहत भी हो जायें, तो वह भी हमारे लिए अच्छा ही होगा।

उस नर ने (अर्थात्, राम ने) वृक्षों से भरे घने वन में अकेले ही अपने धनुष से खर की सब सेना को भस्म कर दिया और उस खर को भी मार डाला। उस (राम) का वह कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ है। अब हमारा कर्त्तव्य अपना प्रताप दिखाना ही है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अन्त में मनुष्य ही विजयी हों, तो भी उनके स्थान में ही जाकर उनका सामना

करके उनको दारुण कष्ट दिये बिना यदि हम ऐसे ही बैठे रहेंगे, तो देवता भी उन मनुष्यों से मिल जायेंगे। सप्तलोक भी उन (मनुष्यों) से मिल जायेंगे।

उत्तरोत्तर बढ़कर आनेवाली उस (मनुष्यों और वानरों की) सेना के यहाँ पहुँचने के पूर्व ही हम एक दिन में ही वीची-भरे समुद्र को पार कर जायें और नरों और वानरों का समूल नाश कर दें। अब हमारा यही कार्य है।—इस प्रकार कुंभकर्ण ने कहा।

तब रावण ने कहा—हे तात ! तुमने ठीक कहा। मेरा भी यही विचार है। अब और कुछ सोचना व्यर्थ है। हम सब शत्रुओं को मारकर लौटेंगे। अतः विजयध्वजा से युक्त अपनी सारी सेना को लेकर जाना ही उचित है।

रावण के यह कहने पर उसके पुत्र इन्द्रजित् ने कहा—हे राजन् ! (जब हम जैसे लोग हैं तब) क्या आप अपनी सारी सेना लेकर क्षुद्र मनुष्यों के साथ युद्ध करने जायेंगे और उनपर विजय पाकर लौटेंगे ? हमारी वीरता भी बहुत सुन्दर है !—यह कहकर वह (इन्द्रजित्) हँस पड़ा। फिर बोला—

शिव तथा कमलासन (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये विचित्र प्रभाववाले पाश आदि शस्त्रों से युक्त अनेक राक्षस हैं। मैं भी तो धिक्कार के योग्य एक (तुच्छ) व्यक्ति हूँ।

त्रिलोक के निवासी भी त्रिदेवों के साथ एकत्र होकर हमारे विरुद्ध आयें, तो भी मैं विजय तुम्हारी बना दूँगा। यदि ऐसा न हो, तो आप मेरे जनक नहीं हैं और मैं आपका पुत्र नहीं।

हे क्रोधी प्रभु ! वानर मिटेंगे। भूमि कबंधों के नृत्य का रंग-स्थल बनेगी। नर विपन्न होंगे। सीता लोगों की दया के योग्य कष्ट भोगेगी। मैं अपने विरोधी उन दो नरों (राम-लक्ष्मण) के सिरों को पर्वत के शिखरों की तरह ले आऊँगा। आप देखेंगे।

पर्वतों को भेदनेवाले, वज्र से भी अधिक भीषण, मेरे धनुष से प्रकट होनेवाले शरों से डरकर, सिकुड़े हुए मुँहवाले मर्कट दाँत दिखाते हुए, एक शब्द भी कहने के लिए रुके बिना अति शीघ्र भागने लगेंगे। आप उस दृश्य को देखकर विजय का आनन्द प्राप्त करेंगे।

(उनके पास) हाथी नहीं, घोड़े नहीं, पदाति-सेना नहीं, पूर्वजन्मकृत पुण्य भी कुछ नहीं है। क्या ऐसे हमारे शत्रु (राम-लक्ष्मण) झुकी पीठवाले क्षुद्र वानरों को लेकर ही हमें जीतनेवाले हैं ? अहो ! ऐसे मनुष्यों से व्याकुल होनेवाले हम राक्षसों की वीरता भी धन्य है !

जल, पृथ्वी, वायु, उन्नत आकाश तथा इस विशाल संसार में स्थित सब पदार्थों को एक दिन में अस्त-व्यस्त करके नर और वानर—इन जातियों का समूल विनाश करके विजयी हुए बिना मैं कदापि नहीं लौटूँगा।

यों कहकर रावण के चरणों को नमस्कार करके इन्द्रजित् बोला—हे प्रतापी ! मुझे आज्ञा दें। तब पापों का नाशकर तत्त्व-ज्ञान पाये हुए लोगों के समान सद्ज्ञान पाया हुआ विभीषण क्रुद्ध होकर अपने उज्ज्वल दाँतों से ओठ चबाता हुआ बोल उठा—

हे समय के अनुकूल वचन कहने का विचार रखनेवालो! तुमलोग शास्त्रों के सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त किये हुए बड़े ज्ञानी के जैसे बातें करते हो; किन्तु तुमलोग समय को और भावी परिणाम को समझने की बुद्धि से हीन बालक हो। ऐसे वचन कहना क्या तुम्हारे लिए उचित है?

बालपन के कारण कर्त्तव्य को न जाननेवालो! तुम्हारे वचन ऐसे हैं, जैसे कोई अंधा और कल्पना से हीन व्यक्ति चित्र खींचता हो। उत्तम गुणवाले तथा कर्त्तव्य के ज्ञान से संपन्न वृद्ध लोगों की मंत्रणा-सभा में क्या तुम रहने योग्य हो?

सदा पवित्र आचरण करनेवाले नीति से पूर्ण पुराने देवों की बात छोड़ दो। उनसे भिन्न राक्षस भी तो सदाचरण करने पर देवों के समान उन्नत दशा को प्राप्त करते हैं। यह उन्नति क्या झूठी है या बलात्कार से प्राप्त हुई है?

धर्म को छोड़कर तुम देवों को जीतने का पराक्रम दिखाते हो। विचार करने पर ज्ञात होगा कि तुम्हारा यह पराक्रम भी यथाविधि किये गये तप के कारण प्रसन्न हुए देवों के द्वारा प्रदत्त वरों का ही प्रभाव है?

पाप-स्वभाववाले राक्षस धर्म को अपनाकर त्रिमूर्त्तियों को भी दबाते हैं। धर्म को अपनाने से गर्व बढ़ जाने पर पुनः पाप-कर्म करते हुए विनष्ट होते हैं। इस प्रकार स्वयं विनष्ट होने के अतिरिक्त देवताओं को कौन मिटा सका है?

प्राचीन काल में तथा उसके पश्चात् भी जो मुनि तथा देवता तपस्या और त्याग से मोक्ष प्राप्त कर गये हैं, उनकी गणना नहीं है। उनमें कौन ऐसा था, जो पाप करनेवाला रहा हो? (अर्थात्, मोक्ष पानेवालों में पाप करनेवाला कोई नहीं था)

तुम अज्ञ बालक हो, इसीलिए ऐसी बातें कही हैं।—इस प्रकार, इन्द्रजित् का धिक्कार करके विभीषण ने रावण से कहा—यदि मेरी बात का तिरस्कार नहीं करोगे, तो मैं अपने विचार तुमको बताऊँगा।

तुम मेरे पिता के समान हो। मेरी माता हो। मेरे ज्येष्ठ भाई हो। तपस्या से साक्षात् करने योग्य वंदनीय देवता भी तुम हो, मेरे लिए संसार का सर्वोत्कृष्ट अर्थ तुम्हीं हो। मुझे यह दुःख हो रहा है कि तुम इन्द्रभोग को खो रहे हो। अतएव, मैं ये बातें कह रहा हूँ।

हे बलशाली! अधिक विद्या का ज्ञान मुझमें नहीं हो सकता है। वर्त्तमान घटना का संपूर्ण रूप से विवेचन कर समझने की शक्ति मुझमें नहीं हो सकती है। मैं दूसरों की मंत्रणा के तत्त्व को समझने में अशक्त हो सकता हूँ, फिर भी पहले मेरी बात को पूर्णतया सुनो और चाहो, तो उसके पश्चात् क्रोध करो।

जानकी नामक लोकमाता के पातिव्रत्य से ही सारी लंका और तुम्हारी विजय जल उठी। यह समझना ठीक नहीं कि एक वानर ने (लंका को) जलाया।

ध्यान से कोई विचार करे, तो उसे स्पष्ट हो जायगा कि यदि किसी का आकाश तक उन्नत अधिकार-पद भी मिटता है, तो वह परनारी के मोह के कारण ही, या तो

अधिक राज्य की लालसा से होता है। इनके अतिरिक्त इस तरह की हानि के कारण और कुछ नहीं हैं।

मधुपूर्ण पुष्पों की विजयमाला धारण करनेवाले! लोक में जो कथन प्रचलित है कि 'मकरों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका के राजा (रावण) का तपःफल से प्राप्त पराक्रम एक मानव की स्त्री के कारण मिटनेवाला है,' क्या वह अब प्रमाणित होनेवाला है?

जब तुमने बड़ी तपस्या की थी, तब इन मनुष्यों को, जो अब बलवान् मालूम होते हैं, जीतने का वर सर्वज्ञ भगवान् से नहीं माँगा। अतः, अब उन (मनुष्यों) पर अपजय के विपरीत तुम्हारी विजय ही होगी, यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है?

इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहना है? मनुष्यों के कारण तुम्हारी हानि हो सकती है। तुमने अकेले सप्त लोकों को विजित किया था। फिर भी, पूर्वकाल में तुम सहस्र करोंवाले कार्त्तवीर्य अर्जुन से पराजित हुए थे। अब अधिक क्या कहा जाय?

हे अपार शक्ति-संपन्न! जब तुमने गगनोन्नत कैलास को उखाड़कर उठा लिया था, तब चतुर्भुज नन्दि ने तुमको शाप दिया था कि पूँछवाले वानरों से तुम्हें पराभव होगा। वह बात वालि के प्रसंग में कैसे प्रमाणित हुई—यह हमने देखा है। (अर्थात्, वालि से तुम्हारा अपमान हुआ)।

वेदवती नामक शीलवती ने अग्नि में अपने प्राण त्यागते समय जो वचन कहा था, उसको विफल करनेवाला कौन है? उसने कहा था कि मैं तुम्हारे विनाश का कारण बनूँगी। क्षीरसागर में उत्पन्न लक्ष्मी के अंशभूत यह सीता वह वेदवती ही है।[1]

दशरथ नामक यशस्वी वीर ने सारे संसार में अपना आज्ञाचक्र चलाया था। गगनतल में शंबर नामक असुर के साथ युद्ध करके उसे मार डाला था और देवेन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर देवों की सहायता की थी।

जिस ककुत्स्थ महाराज ने, वृषभ रूप धारण किये हुए इन्द्र के ककुद् पर आसीन होकर राक्षसों के साथ युद्ध करके उनका विनाश किया था, जिस पृथु चक्रवर्त्ती ने धरती को यह आज्ञा दी थी कि लोगों को तुम सब संपत्तियाँ प्रदान करो, जिन सगर-पुत्रों ने समुद्र

---

१. उत्तरकांड में यह कथा वर्णित है कि पूर्वकाल में कुशध्वज नामक मुनिवर जब वेदपाठ कर रहे थे, तब उन वेदमंत्रों से एक कन्या प्रकट हुई। उसका नाम उन मुनि ने वेदवती रखा। देवताओं ने वेदवती से विवाह करना चाहा, किन्तु कुशध्वज ने उन्हें यह कहते हुए वापस कर दिया कि वेदवती भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और किसी का स्मरण तक नहीं करेगी। एक दिन शंप नामक असुर ने कुशध्वज को मार डाला। तब कुशध्वज की पत्नी सती हो गई। उसके बाद वेदवती यवन-वन में तपस्या करने लगी। रावण कैलास-पर्वत को उठाते समय उसके नीचे दब गया, किन्तु शिवजी की कृपा हुई और वह मुक्त होकर लंका को लौट चला। राह में वेदवती को देखकर वह उसपर आसक्त हो गया और उसे बलात् पकड़कर उठाने लगा। तब वेदवती ने शाप दिया कि ब्रह्मदेव से प्राप्त वर के गर्व से तुमने मुझे अनुचित वचन कहकर छुआ है, अतः तुम्हारी लंका का एवं तुम्हारा विनाश मेरे कारण से ही होगा। यह शाप देकर वह (वेदवती) अग्नि में प्रवेश करके जल मरी। वही पुनः सीता के रूप में अवतीर्ण हुई।—अनु०

उत्पन्न किया था, जिस भगीरथ ने गंगा नदी को धरती पर बहाया था, उन्हीं के वंश में दशरथ उत्पन्न हुआ था।

संसार के झूठे राजाओं को युद्ध में मिटाकर, जिसने अपने भाले पर घी का लेप करके कोश में बंद कर रख दिया था (अर्थात्, उस भाले का उपयोग करने का अवसर ही फिर नहीं आया) और जो अनुपम नीतिमार्ग पर स्थिर रहकर शासन करनेवाला था, उस दशरथ ने, काजल की रेखा से युक्त चंचल नयनोंवाली कैकेयी को दो वर दिये और अपना वचन सत्य करते हुए (उन वरों को देने के कारण) प्राण-त्याग कर देवों के लिए भी दुष्प्राप्य मोक्षलोक प्राप्त किया।

हे हमारे महिमामय नायक ! उस दशरथ के पुत्र ही हैं ये, जो तुम्हारे शत्रु हैं। यदि उनके बारे में जानना चाहो तो (सुनो—) उनके उपमान और कोई नहीं हैं। उनके तत्त्व को ऋषि, देवता तथा अन्य ज्ञानी भी नहीं पहचानते (अर्थात्, वे परमात्मा के अंशभूत हैं। वैसे वे दोनों, संसार के कर्मफल के कारण ही मनुष्य-रूप में उत्पन्न हुए हैं।

हे प्रभु ! जो कौशिक पहले एक बार कमलभव ब्रह्मा की सृष्टि की जैसी प्रति-सृष्टि करने लग गया था, उसने शिवजी से प्राप्त किये हुए, क्षणकाल में ही समस्त लोकों के सब प्राणियों को मिटा सकनेवाले अस्त्रों को उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को दिया है।

वामनरूप मुनि (अगस्त्य) ने उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को वह धनुष दिया है, जिसे पूर्वकाल में अति बलशाली राक्षसों के साथ युद्ध करते समय में गरुड पर आरूढ विष्णु ने धारण किया था। साथ ही वह बाण भी दिया है, जिसे शिव ने त्रिपुरों के असुरों पर प्रयुक्त किया था।

राम के बाण-रूपी सर्प अपनी जीभ से सब लोकों को चाटनेवाले हैं। सब दिशाओं को नापनेवाले हैं। नित्य विष उगलनेवाले हैं। उज्ज्वल कांति उगलनेवाले दाँतों से युक्त हैं। उन वीरों के तूणीर-रूपी बाँबी में निवास करनेवाले हैं। सत्य ज्ञानवाले सज्जनों का अपकार करनेवाले पापियों के प्राण ही उनके भोजन हैं।

वे धनुष ऐसे हैं कि राम-लक्ष्मण के अतिरिक्त कोई भी नहीं डिगा सकता। हमारे धनुषों के जैसे वे कभी लज्जित और बल-रहित नहीं होते। हमारे धनुष यद्यपि बड़े हैं, तथापि उनके उन धनुषों को तोड़ने की शक्ति इनमें नहीं है। वे धनुष क्या कल्पवृक्ष, बाँस या भूमि को धारण करनेवाला मेरु है ? नहीं। वे तो सब पर्वतों को पिंडीभूत करके बनाये गये हैं।

राम के बाण से, क्षीरसमुद्र को मथनेवाले वालि का वक्ष प्राणहीन हुआ। भूमि को ढकनेवाले सप्त सालवृक्ष ढह गये। खर, विराध आदि के पर्वताकार सिर कटकर गिर गये। यदि अब आगे भी युद्ध होगा, तो उसमें उनके शत्रुओं के मिटाने के अतिरिक्त और क्या परिणाम निकलेगा ?

प्रशंसा के योग्य उत्तम वरों को प्राप्त किये हुए सब मुनि यह जानकर कि प्रताप की सीमा बनी हुई भुजाओं से युक्त राम-लक्ष्मण ही समस्त संसार को जीतनेवाले हैं तथा राक्षसों का समूल नाश करनेवाले हैं, उनके आश्रय में आ पहुँचे हैं।

यहाँ के राक्षस (जानकी को बंदी बनाकर यहाँ रखने से) मन में चिंतित हैं। किन्तु तुमसे, कुछ कहने से डरते हुए दिन-रात मन-ही-मन दुःख भोगते हैं। देवता यह विचार कर कि जानकी-रूपी घोर विष का आहार करनेवाले ये राक्षस मिट जायेंगे, हमसे अब नहीं डर रहे हैं।

पहले हमसे भयभीत होकर, अन्य शरण के अभाव में दीन और हास-रहित होकर जीवन-मात्र धारण किये रहने के कारण देवताओं के मुख दिन में क्षीणप्रकाश चन्द्र के समान दीखते थे। अब (देवों के वे मुख) राका-निशा के पूर्णचन्द्र के उपमान बने हुए हैं।

समुद्र से आवृत इस लोक से परे जाकर, कहीं अन्यत्र अपना मुँह छिपाये रहनेवाले यम आदि देव, मुनि, यक्ष, किन्नर आदि यह सुनकर कि चन्द्र के समान मुखवाली जानकी हमारे निवास-स्थान में बंदी बनी है, भय से मुक्त होकर, बार-बार लंका की दीन दशा को देखकर दुःखी हो रहे हैं।

कैसे-कैसे बुरे शकुन सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं, यह कहना कठिन है। हमारे शत्रु देवों तथा असुरों के द्वारा युद्ध में छोड़े गये अश्व तथा गज आजकल अपनी दाहिनी टाँग को पहले रखकर हमारे घरों में प्रवेश करते हैं।

राक्षसों के मुँह में तथा दाँतों में पानी सूख जाता है। भूतों से भी अधिक भयंकर शृगाल हमारे नगर में सर्वत्र विचरण कर रहे हैं। प्रासादों में रहनेवाली हमारी स्त्रियों के केशपाश तथा हमारी शिखाएँ अकस्मात् ही जल उठती हैं। इनसे भी बढ़कर बुरे शकुन और क्या हो सकते हैं?

देवों के बल को मिटानेवाले खर, त्रिशिर, हरिण-रूपधारी मारीच तथा वालि भी राम से निहत हुए। हे प्रभु! क्या हरिण को कर में धारण करनेवाला शिव, चक्रधारी विष्णु तथा अन्य कोई भी देव ऐसे वीरों की समता कर सकता है?

मेरे प्रभु! मैं और एक बात कहता हूँ। कान देकर सुनो। इन दोनों मनुष्यों के साथी बने हुए हैं हमारे चिरशत्रु देव, जो अभी वानर-रूप धारण किये हुए हैं। अतः अब इनसे विरोध करना हमारे लिए उचित नहीं है। यह विचार भी उचित नहीं कि हमें अपने कार्य (जानकीहरण आदि) पर दृढ रहना है।

तुम्हारी कीर्त्ति, संपत्ति, उत्तम कुल का चारित्र्य—ये सब मिट न जायँ, तुम्हें अपयश, पतन आदि प्राप्त न हों, तुम अपने बंधु-सहित नहीं मिट जाओ, इसलिए दृढ पातिव्रत्य से युक्त सीता को मुक्त कर दो। इससे बढ़कर हमें विजय प्रदान करनेवाला कार्य और कोई नहीं।—इस प्रकार विभीषण ने कहा।

विभीषण के ये वचन सुनकर पौरुषशाली रावण ने हाथ-पर-हाथ मारा।[1] उसके दसों मुखों से अर्धचन्द्र के जैसे दाँतों की कांति बिखर पड़ी। उसकी आँखों से अग्नि निकल पड़ी। वह यों हँस पड़ा कि उसका वक्ष, वक्ष पर का मुक्ताहार तथा उसकी भुजाएँ हिल उठीं। फिर, यों कहने लगा—

१. हाथ-पर-हाथ मारना—ललकारना या गर्व करना।

तुमने हमारे लिए प्रिय और हितकारी वचन कहना आरंभ किया। पर, उन्मत्त-से वचन कहे। तुमने कहा कि मेरे महान् बल को क्षुद्र नर परास्त करेंगे। हे तात! तुम्हारा यह कथन भय के कारण है, या उन (शत्रु) के प्रति प्रेम के कारण ?

तुमने मेरा उपालंभ किया कि मनुष्य-रूपी पशुओं पर विजय पाने का वर मैंने नहीं माँगा। क्या मैंने अष्ट दिशाओं के दिग्गजों को परास्त करने का वर माँगा था ? या अग्निनेत्र शिव के हिमाचल को उठाने का वर माँगा था ?

मन में विचार किये विना तुमने निरर्थक वचन कहे। देवों की क्रुद्ध सेनाएँ युद्धरंग में मेरा क्या बिगाड़ सकीं ? मेरी बात रहने दो। मेरे सहोदर भ्राता होकर उत्पन्न तुमको मनुष्य कैसे अधिक बलवान् लगते हैं ?

तुम नहीं जानते हो कि कैसे वचन कहना चाहिए। देव अनेक बार मुझसे पराजित हुए। एक बार भी मुझपर विजय नहीं पा सके। मैं उन देवों के स्वर्ग को भी उठा सकता हूँ। क्या यह भी कोई उचित वचन है कि युद्ध में मुझे और मेरे बंधुजनों को वे हरा देंगे ?

हे अनुज! यदि तुम समझते हो कि देवों से प्राप्त वर के प्रभाव से ही मैं शक्तिशाली बना हूँ, तो यह कैसे संभव हुआ कि त्रिमूर्त्तियों में वृषभवाहन (रुद्र) को एवं चक्रधारी (विष्णु) को मैंने युद्ध में हराया ? यह किसके दिये वर का प्रभाव था ?

यदि तुम कहो कि नन्दि के दिये शाप के कारण एक वानर हमें परास्त करेगा, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे शाप अनेक मिलते रहते हैं। इन्द्र आदि देवों, सिद्धों तथा यक्षों में हमें शाप न देनेवाले कौन हैं ? उन शापों ने हमें क्या किया है ?

मैंने यह नहीं जाना था कि कनकमय सभा में तांडव करनेवाले शिव से वालि नामक वानर ने वर प्राप्त किया था। अतः, वालि से युद्ध में मुझे पीडित होना पड़ा। इससे यह कहना कैसे उचित होगा कि अन्य सब वानर मुझे हरा देंगे ?

वालि के सम्मुख यदि नीलकंठ (शिव) और चक्रधारी विष्णु भी आकर युद्ध करते, तो उनका आधा बल उस (वालि) को प्राप्त हो जाता। यह जानकर ही उस नर ने (अर्थात्, राम ने) उस वालि के सम्मुख न जाकर, छिपे रहकर, उसपर बाण चलाकर उसे मार डाला।

जिसने एक जीर्ण धनुष को तोड़ा, टूटे हुए वृक्षों को गिराया, एक कुबरी के षड्यंत्र से राज्य खोकर वन में आ रहा, मेरे किये षड्यंत्र से अपनी पत्नी को खोया और फिर भी अपने प्यारे प्राणों को ढोता हुआ फिर रहा है, वैसे मनुष्य के पराक्रम की, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रशंसा करेगा ?

तुम इन विषयों का विवेचन करने में असमर्थ हो।—यों कहकर रावण फिर बोला—ठीक है। हम युद्ध के लिए जायेंगे। सब लोग चलो। उस समय घनी पुष्पमाला-धारी विभीषण मौन न रह सकने के कारण रावण के निकट जाकर यों कहने लगा—

वह उपमारहित भगवान्, जिसका आदिकारण और कोई नहीं है, देवों की प्रार्थना से हमारा विनाश करने के लिए ही मनुष्य के रूप में इस धरती पर अवतीर्ण हुआ है। क्या

उससे युद्ध करने के लिए जाना उचित होगा ?—यह कहकर विभीषण ने रावण के चरणों पर गिरकर उसे नमस्कार किया।

यह वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम कहते हो कि वह नर स्वयं विष्णु है। वह शक्तिहीन विष्णु कितनी ही बार युद्ध में हार चुका है। वह अनादि भगवान् क्या अबतक मूर्च्छित पड़ा था ?

जब मैंने इन्द्र को बंदी बनाया, जब मैंने दिग्गजों के दाँत तोड़ डाले, जब मैंने विष्णु को परास्त किया और जब मैंने देवलोक की विजय की थी, तब तुम्हारा तथाकथित वह भगवान् क्या छोटी आयु का था ? (अर्थात्, वह क्या तब बच्चा था ?)

मैं शिव, चतुर्मुख तथा विष्णु एवं अन्य देवता, सबको दबाकर त्रिलोक का शासन करता आ रहा हूँ—यह क्या तुम्हारे तथाकथित उस भगवान् के न रहने से संभव हुआ या वह तब शक्तिहीन था ?

अति बलशाली वह भगवान्, क्या यही सोचकर कि सहस्र भुजाओं और सहस्र सिरों का विराट् रूप, सारी धरती जिसके चरणतल में समाई थी, छोटा है—हमारा भोजन बननेवाले क्षुद्र मनुष्य का रूप धारण करके आया है ?

उन्मत्त कहलानेवाले शिव और विष्णु मेरा नाम सुनकर काँप उठते थे और वृषभ एवं गरुड पर सवार होकर भागते थे, उस समय उस वृषभ और गरुड की पीठ पर मेरे जो बाण, पर्वत पर बिजली के समान, गिरे थे, वे अभी तक वैसे ही (चुभे) हैं।

भयंकर युद्ध में हमारे साथ तुम मत आओ। प्राचीरों से आवृत यह नगर अति विशाल है। तुम यहीं निर्भय छिपे रहो, डरो मत।—यों (विभीषण से) कहकर रावण समीप में खड़े हुए राक्षसों की ओर देखकर हाथ-पर-हाथ मारकर, बिजली के समान गरजता हुआ हँस पड़ा।

तब विभीषण ने पुनः कहा—हे तात! तुमसे भी अधिक बलवान् लोग पूर्वकाल में हुए थे और इस विष्णु के क्रोध के कारण बंधुसहित मिट गये थे। मुझे और भी कुछ निवेदन करना है। हिरण्य (अर्थात्, हिरण्यकशिपु) नामक असुर का वृत्तांत सुनो।—यों कहकर विभीषण हिरण्य का वृत्तांत सुनाने लगा। (१–११८)

●

अध्याय ३

हिरण्य-वध पटल

वह हिरण्यकशिपु ऐसा था कि स्वयं ब्रह्मदेव ने उसे वेदों में प्रतिपादित सब विषयों का ज्ञान दिया था। उस असुर ने उस ब्रह्मा से सोचे जानेवाले सब वर प्राप्त किये थे और उसमें पाँचों भूतों की समस्त शक्ति इस प्रकार एकत्र थी कि प्रलयंकर रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा भी उसका अन्त नहीं देख सकते थे।

शाश्वत सत्तावाले विष्णु, ब्रह्मा एवं घनी जटाधारी रुद्र, इनके द्वारा क्रमशः रचित सृष्ट और विनष्ट होनेवाले एक ब्रह्मांड में ही नहीं, किन्तु इस ब्रह्मांड के परे भी असंख्य अंडों में उसका नाम प्रसिद्ध था। यों वह असुर जीवन बिताता था।

वह असुर विशाल दिशाओं को सँभालनेवाले, पुष्ट एवं रंध्र से युक्त सूँड़ोंवाले बलशाली दिग्गजों को पकड़कर एक दूसरे से टकराता था। अथाह सप्त समुद्रों को अपने दोनों पैरों से परिमेय करता हुआ लाँघ जाता था।

मिट्टी से भरी, स्वच्छ वीचियों से पूर्ण नदियों के जल को 'अल्प', कहकर उसमें वह नहीं नहाता था। मेघों से बरसनेवाले पानी को 'पर्याप्त शीतल नहीं है', कहकर उसमें भी नहीं नहाता था और अति पुरातन, स्वच्छ तरंगों से युक्त समुद्र के जल को 'खारा है', कहकर उसमें भी नहीं नहाता था। किन्तु, उस ब्रह्मांड में छेद करके इस ब्रह्मांड के बाहर (इस ब्रह्मांड को) आवृत कर रहनेवाले महासमुद्र के जल को बहा लाकर उसमें नहाता था।

इस प्रकार, महासमुद्र के जल में स्नान करता, नागलोक में जाकर नाग-कन्याओं के साथ अमृत-समान भोजन करता, सबके द्वारा प्रशंस्यमान देवेन्द्र के यहाँ जाकर दिन का समय व्यतीत करता और रात्रिकाल में ब्रह्मलोक में जाकर ठहरता।

वह असुर चन्द्र के विमान पर चढ़ जाता और उस (चन्द्र) के उपमाहीन पद पर रहकर उसका शासन स्वयं चलाता। सूर्य के रथ पर चढ़कर सूर्य का अधिकार स्वयं अपने हाथ में ले लेता। उन्नत मेरु-पर्वत पर (ब्रह्मा के समान) बैठकर राज्य करता।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—इन भूतों के, जो अनादिकाल से सृष्टि में रहते आये हैं, देवताओं को (उनके पद से) हटा देता। स्वयं, निरन्तर बहनेवाली वायु तथा अन्य भूतों का (अधिष्ठाता) देव बन जाता। वरुणदेव का कार्य (वर्षा करना) भी स्वयं करता।

सभी लोकों में, रक्तकमल जैसे विशाल नेत्रोंवाले विष्णु भगवान् के शुभनामों के स्थान पर अपना ही नाम प्रचलित करता। मुनि यज्ञकुंडों में, धूमयुक्त अग्नि में देवों को उद्दिष्ट करके जो हवि डालते, उसे स्वयं हरण कर खा जाता।

(उसके कारण) त्रिदेव भी सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य ठीक-ठीक नहीं कर सकते थे। तब और कौन अपना कार्य पूरा कर सकता ? योगी, अपने योग-प्रभाव से प्राप्त शक्तियों को खो बैठे थे। सबके द्वारा वंदित होनेवाले देव भी उस हिरण्य के चरणों की वंदना करने लगे थे।

सुगंधित कमलपुष्प में उत्पन्न ब्रह्मा, रुद्र आदि सब देव उस (हिरण्य के) पुरोहितों के द्वारा शिक्षित होकर हिरण्य का नाम ही जपते रहते थे। चारों वेद भी कहने लगे थे कि 'अनादि' शब्द में छिपा रहनेवाला भगवान् 'हिरण्य' ही है : 'ओं हिरण्याय नमः'।

पूर्वकाल में जिस मंदर-पर्वत को देवों और असुरों ने क्षीरसागर को मथने के लिए लिया था, उस पर्वत को हिरण्य ने अपना दंडायुध बनाना चाहा। फिर, उसको अपने पुष्ट हाथों के बल के अयोग्य तथा क्षुद्र मानकर छोड़ दिया।

मंडलाकार सूर्य जिन पर्वतों पर उदय और अस्त पाता है और जो (पर्वत) मन के

(विचार के) लिए भी अस्पृश्य हैं, ऐसे वे दोनों पर्वत हिरण्याक्ष के बड़े भाई हिरण्य-कशिपु के कानों में कुंडल बन जाते थे, तो अब उस असुर के बल के बारे में और क्या कहना है ?

कभी न थकनेवाला हिरण्य जब अपने अरुण चरण पृथ्वी पर रखता था, तब तीक्ष्ण दंतों एवं सहस्र फनों से युक्त आदिशेष का शिर (जो पृथ्वी का भार वहन करता है) भार से कंपित हो जाता था। जब वह (असुर) उठकर खड़ा होता था, तब ब्रह्मांड के ऊपर के ढक्कन कैसे उसका शिर टकराता था। जब वह इधर-उधर संचरण करता था, तो पंचमहाभूत अस्तव्यस्त होकर उसके साथ खिंचे चलते थे।

उसने ऐसा वर पाया था कि किसी स्त्री से, पुरुष से, नपुंसक से, प्राणवान् पदार्थ से या निष्प्राण पदार्थ से, किसी से भी उसकी मृत्यु संभव नहीं थी। आँखों को दिखाई पड़नेवाले या मन से सोचे जानेवाले किसी भी पदार्थ से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। वह न धरती पर मर सकता था और न आकाश में ही।

वह देव, गगन-संचारी कोई जीव या वचनों के परे स्थित त्रिदेव तथा और किसी से भी मरनेवाला नहीं था। इतना ही नहीं, कोई उसके बल को भी कुंठित नहीं कर सकता था।

वह न जल में मर सकता था, न अग्नि में, न पवन में, न पृथ्वी या इसके ऊपर के लोकों में ही मरनेवाला था। सर्वज्ञ ऋषियों तथा और किसी के भी शाप उसकी कुछ हानि नहीं कर सकते थे।

वह घर के भीतर या बाहर मरनेवाला नहीं था। कोई नाशहीन दिव्य आयुध उसे नहीं मार सकता था। वह रात्रिकाल में मरनेवाला नहीं था। न दिन में ही मरने-वाला था। यम के द्वारा भी उसके प्राण नहीं हरे जा सकते थे।

पंचभूतों के बने किसी पदार्थ से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। चारों वेदों के मंत्रों से भी उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। यदि उसका जनक उसे मारना चाहे, तो भी उसकी मृत्यु असंभव थी। किसी भी लोक में वह शक्तिशाली था। उस (हिरण्य) की यह दशा थी।

इस प्रकार के असुर के एक अपूर्वजन्मा पुत्र था, जो (पुत्र) ज्ञानियों में बड़ा ज्ञानी था। सब पवित्र पदार्थों तथा वेदों से भी अधिक पवित्र था। भगवान् के ज्ञान से युक्त था। धर्म-शील से युक्त था। सब प्राणियों पर माता से भी अधिक प्रेम रखता था।

कल्प-परिमाण काल से भी अधिक आयुवाला, चतुर्दश भुवनों के निवासियों के द्वारा वंदित चरणोंवाला तथा अति प्रभावशाली राज्यवाला हिरण्य, अपने पुत्र को देखकर बहुत आनन्दित हुआ और प्रेम से कहा—मेरे राज्य के योग्य हे पुत्र! तुम वेदों का अध्ययन करो।

यों हिरण्य ने प्रह्लाद को एक ब्राह्मण के अधीन सौंपकर उस (ब्राह्मण) से कहा—'तुम इसको वेद पढ़ाओ'। वह ब्राह्मण एक स्थान पर रहकर प्रह्लाद को वेद पढ़ाने लगा।

शिक्षा देनेवाले ब्राह्मण ने प्रह्लाद से कहा—तुम अपने पिता का नाम लो

(अर्थात्, 'ओं हिरण्याय नमः' जपो)। तब प्रह्लाद ने अपने दोनों कानों को हाथों से बंद कर लिये और कहा—हे वृद्ध गुरो! आपके इस कथन के अनुसार करना उचित नहीं है। और, उसने फिर वेदों के शिखरभूत, उपनिषदों में प्रतिपादित भगवान् का शुभ-नाम लिया (अर्थात्, 'ओं नारायणाय नमः' कहा।)

तत्त्वज्ञानी प्रह्लाद, 'ओं नमो नारायणाय' कहकर द्रवितचित्त हो, स्वयं अंतर्लीन हो, दोनों हाथ शिर पर रखे हुए, स्थिर रह गया। तब उसकी कमल-समान आँखों से अश्रु बह चले और उसकी देह पर पुलक छा गई, जिसे देखकर वह गुरु (डर से) काँप उठा।

उस ब्राह्मण ने कहा—हे मिटनेवाले पापी! मुझे भी तुमने मिटाया। स्वयं भी मिट गये। कोई देव भी जिस शब्द को नहीं कह सकता है, वह मूलभूत शब्द तुम्हारी बुद्धि में कैसे आया? आश्चर्य है! तुमने यह क्या कर डाला?

तब प्रह्लाद ने कहा—मैंने (यह नारायण का नाम लेकर) अपना उद्धार किया, अपने पिता का उद्धार किया, तुम जैसे गुरु बननेवाले का उद्धार किया और इस संसार के प्राणियों का उद्धार किया और इस संसार के प्राणियों का उद्धार करने के लिए वेदों के प्रथम पद प्रणव से वाच्य भगवान् (नारायण) को कहा। इसमें क्या अपराध है, बताओ।

तब उस गुरु ने कहा—तुम्हारा पिता सब देवों तथा त्रिमूर्त्तियों का भी प्रभु है। उसके शुभनाम को जपनेवाला मुझसे भी क्या तुम अधिक ज्ञानी हो? हे तात! इस नाम को दुबारा कहकर मेरा विनाश न कर देना?

वेदों के ज्ञाता उस ब्राह्मण के यह कहते ही दोषहीन प्रह्लाद ने कहा—सबके आदि कारणभूत भगवान् को छोड़कर अन्य किसी का नाम कहना मैं नहीं जानता हूँ। इससे बढ़कर और कुछ भी मुझे पढ़ना नहीं है। मेरे इस ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। फिर आगे कहा—

पुरातन वेदों से प्रतिपादित होनेवाले, सकल अर्थों के अंतिम तत्त्व बननेवाले भगवान् (नारायण) मेरे अन्तर में आकर बस गये हैं। अब उस भगवान् के नाम के अतिरिक्त और कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि आप कुछ ऐसा विषय जानते हों, जो मुझे अज्ञात हों और जो नीति के विरुद्ध न हों, तो मुझे सिखाइए।

जिसको, अपूर्व वेदों को जाननेवाले ब्राह्मण 'भगवान्' कहते हैं, जिसको उपनिषदें स्पष्ट रूप में प्रतिपादित करती हैं, देव तथा मुनि जिसके नाम को जपते रहते हैं, उसे कहे विना आप और क्या उत्तम ज्ञान दे सकते हैं?

महात्माओं, वेदों, उत्तम यज्ञों, ज्ञान तथा अन्य सब उपायों के द्वारा साधना करते हुए जिस उत्तम नाम को प्राप्त किया, उसे मैंने कहा। आपने इतना अध्ययन कर जिस परमतत्त्व को पहचाना है, क्या वह कोई और है?

वनवास करते हुए, मेघों के आवासभूत पर्वत में रहते हुए, मृगचर्म धारण किये हुए, सिर मुड़ाये हुए या जटा धारण किये हुए, अनेक साधनाएँ करके मोक्ष पानेवाले के उपाय से भी बढ़कर सुलभ उपाय को, अत्युत्तम संपत्ति को, मैंने पाया है। अब इससे बढ़कर मुझे और क्या प्राप्त करना है?

अपने पाद से पृथ्वी को नापनेवाले भगवान् के दासों की सेवा करनेवाले भक्त, भले ही अपने कानों से अनेक शास्त्रों को नहीं सुनते हों ; तथापि वे देवों को हविर्भाग देनेवाले (अर्थात्, देवों को हवि देते समय, उच्चरित होनेवाले मंत्रों से पूर्ण) चारों वेदों के गूढार्थ को एवं प्रकट अर्थ को जानते हैं; वे तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं।

हे वेदज्ञ ! मेरे तथा चतुर्मुख देव (ब्रह्मा) के प्रभु, जो सर्वज्ञ होनेवाले स्वयं के लिए भी अजेय महिमा से पूर्ण है (अर्थात्, उस भगवान् की महिमा इतनी अपरंपार है कि वह सर्वज्ञ होते हुए भी स्वयं उसे नहीं जानता—ऐसा नारायण) मेरे मन में प्रविष्ट हुआ है। सब तत्त्व मुझे विदित हो गये। आपको भी इस तत्त्व को जानने के अतिरिक्त और कुछ हितकर नहीं है। यों प्रह्लाद ने कहा।

ज्योंही उस ब्राह्मण ने (प्रह्लाद के) ये वचन सुने, त्योंही कुछ उत्तर दिये विना, अति व्याकुल होकर, यह सोचते हुए कि अब मेरे बचने का कुछ उपाय नहीं है, मेरे विनाश का समय निकट आ गया है, अत्यन्त अधीरता से वहाँ से भागकर हिरण्य के निकट जा पहुँचा और उससे इस प्रकार कुछ कहने लगा, जैसे कोई स्वप्न देखकर उसका वृत्तांत सुना रहा हो।

हे मेरे स्वामी ! सुनिए। आपका पुत्र ऐसा अनुचित वचन कह रहा है, जो इह और पर—दोनों लोकों के फलों के लिए उपयुक्त नहीं है। यह कहता है कि मेरे पिता का स्मरण करने से क्या होगा ? वह मुझसे कुछ नहीं सीखता है।

उसे सुनकर हिरण्य ने कहा—हे ब्राह्मण ! उस मेरे पुत्र ने ऐसा वचन क्यों कहा, जो हमारे योग्य नहीं है ? हमारे पूर्वजों की परम्परा में नहीं आया है और उस (प्रह्लाद) ने अपनी बुद्धि से नये रूप में कहा ?

असुरराज के यह पूछने पर उस ब्राह्मण ने भय से हाथ सिर पर जोड़कर कहा—हे बलशाली ! वह वचन कानों में सर्प के समान प्रविष्ट होनेवाला है। यदि मैं आपसे निवेदन करूँ, तो मैं नरक में जाऊँगा। मेरी जिह्वा जल जायगी।

तब अतिक्रूर असुर ने अपने दासजनों को आज्ञा दी—अतिशीघ्र प्रह्लाद को मेरे निकट ले आओ। उत्तम बुद्धि से रहित उन सेवकों ने जाकर प्रह्लाद को उसके पिता की आज्ञा सुनाई। अपना उपमान न रखनेवाला भगवान् ही जिसका साथी है, उस प्रह्लाद ने अपने पिता के निकट पहुँचकर उसको प्रणाम किया।

हिरण्य ने नमस्कार करनेवाले अपने पुत्र का यों आलिंगन किया कि उसके सुन्दर वक्ष का सुगंध-लेप प्रह्लाद के वक्ष पर लग गया। फिर, अपने पार्श्व में बिठाकर उसे भली भाँति देखकर (हिरण्य ने) पूछा—तुमने ऐसा क्या कहा, जो तुम्हारे गुरु से सुना भी नहीं जा सकता था ? वह कहो।

तब प्रह्लाद ने कहा—मैंने सबसे अनुपम प्रभु भगवान् के उस नाम को कहा, जो वेदों के आरम्भ में उच्चरित किया जाता है। यही नाम जानने, ध्यान करने तथा श्रवण करने योग्य है। जन्म के दुःख से मुक्ति इसी नाम से हो सकती है। इससे बढ़कर और कोई उत्तम नाम नहीं है।

देवोचित सत्त्वगुण से पूर्ण प्रह्लाद ने जब यों कहा, तब हिरण्य ने सोचा—निर्दोष ब्राह्मण तो योग्य वचन ही कहनेवाला है (अर्थात्, ब्राह्मण ने इस प्रह्लाद को उचित रूप में ही उपदेश दिया होगा, किंतु इसने उसे स्वीकार नहीं किया होगा। अथवा ब्राह्मण ने इस प्रह्लाद का जो दोष बताया, वह सत्य ही होगा) जो भी हो, यदि पुत्र का वचन अनुचित हो, तो उसके बारे में पश्चात् सोचेंगे, फिर उस (हिरण्य) ने (प्रह्लाद से) कहा—वह नाम क्या है? सुनाओ, सुनाओ।

भगवान् का वह नाम सब पुरुषार्थों को देनेवाला, त्रिवर्गों की (अर्थात्, धर्म, अर्थ और काम) दशा को पार करने पर शाश्वत मोक्षपद देनेवाला और रक्तवर्ण अग्नि में घी आदि की प्रभूत आहुति देकर किये जानेवाले यज्ञों के द्वारा प्राप्त होनेवाले स्वर्ग आदि भोगों को देनेवाला है। वह नाम है—'नमो नारायणाय'।

भूमि से लेकर ऊपर रहनेवाले ब्रह्मदेव के सत्यलोक तक के समस्त लोकों के निवासों में जो चर-अचर पदार्थ हैं, उनके अन्तर की प्रज्ञा का विषय है यह अष्टाक्षरी मंत्र (अर्थात्, 'ओं नमो नारायणाय') और कुछ नहीं।

त्रिनेत्र (शिवजी) और चतुर्मुख (ब्रह्मा) से साधारण मष्नुयों तक में जो व्यक्ति इस शुभ नाम को (अर्थात्, 'नमो नारायणाय' मंत्र को) भूल जाते हैं, वे मरे हुए हैं। इस मंत्र की महिमा का विस्तृत वर्णन करना असंभव है। जो पक्षपात से हीन होकर विवेचन करनेवाले ज्ञानी हैं, वे इस मंत्र की महिमा को पहचानते हैं। जो वैसे ज्ञानी नहीं हैं (अर्थात्, संकीर्ण पक्षपात से युक्त हैं), वे इसकी महिमा को नहीं पहचानते।

यह नाम, जन्म-रूपी गंभीर समुद्र के प्रारब्ध कर्म-रूपी भौंर से प्राणियों को बचाकर मोक्ष के तट पर पहुँचानेवाली उत्तम नौका है। सब प्राणियों को आभरण के जैसे शोभा प्रदान करनेवाला है। यह अत्युत्तम मंगलकारक है। बड़े तपस्वियों के द्वारा प्रशंस्यमान और वेदों के शिखर उपनिषदों का सिद्धांतभूत तत्त्व है। इस नाम से बढ़कर और कुछ नहीं है।

आपकी आत्मा का, मेरी आत्मा का तथा संसार के सब प्राणियों का महान् हित करनेवाला यह नाम ही है। ठीक विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है।—इस प्रकार ज्ञानियों में अति उत्तम उस प्रह्लाद ने कहा। तब बिजली के समान चमकनेवाले बरछे से युक्त हिरण्यकशिपु ने आँखों से अग्निकण उगलते हुए उसे घूरकर देखा।

मेरा जन्म होने के दिन से अबतक, जो कोई भी यह (नाम) कह दे, या मन से भी उसका स्मरण करे, उसको मेरी आज्ञा की प्रभावशाली ज्वाला विध्वस्त करती रही है। तुमको यह नाम किसने कहा? किससे तुमने यह नाम सीखा? शीघ्र बताओ। —यों हिरण्य ने क्रोध के साथ कहा।

सबसे उत्तम देव, त्रिमूर्त्ति तथा अन्य देवता, त्रिलोक के सब निवासी, मेरे ही चरणों का ध्यान करते रहते हैं। मेरे ही नाम का गान करते रहते हैं। अतः, उनमें से कोई भी तुमको यह नाम बताने का साहस करनेवाला नहीं है। हे पुत्र! तुमने यह नाम किससे सीखा?

तुमको किसने यह उपदेश दिया कि जो (विष्णु) मेरे साथ बड़ा युद्ध करने के लिए कई बार आया, फिर शब्दायमान विशाल पंखों से युक्त गरुड पर सवार होकर भाग गया और शब्दायमान वीचियों से पूर्ण क्षीरसागर में घुसकर अबतक सोया पड़ा है, उसका नाम निःश्रेयस् प्रदान करनेवाला है ?

समुद्र की सिकता के कणों को गिनना संभव भी हो, तो भी उस विष्णु के द्वारा हमारे कुल के जो लोग मारे गये हैं, उनको गिनना असंभव है। यदि नकुल, अपने जन्मशत्रु सर्प का नाम निरन्तर जपता रहे, तो उससे उसका क्या हित होगा ? हे दुर्बुद्धि ! तुम ही कहो।—यों हिरण्य ने क्रोध से कहा।

मेरे उस भाई (हिरण्याक्ष[1]) को, जो इतना असंदिग्ध बलशाली था कि चतुर्दश भुवनों को अपने उदर में छिपा सकता था, उसको उस विष्णु ने वराह का रूप लेकर दाँत से आहत करके मार डाला। उस विष्णु का नाम जपने के लिए ही, क्या मैंने तुम जैसे पुत्र को पाया है ?

फिर हिरण्य ने कहा—हे जीवन-रहित ! सब चर और अचर पदार्थों का एवं सब लोकों का ईश्वर मैं ही हूँ। सृष्टि, रक्षा एवं विनाश—ये सब मेरी आज्ञा से ही होते हैं। इन कार्यों को देखकर (अर्थात्, इस प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर) मुझको भगवान् मानना चाहिए। ऐसा न करके (इस सृष्टि के) अन्य किसी कारण का अनुमान करना, किस वेद का सिद्धान्त है ?

वेदों का यह कथन ठीक ही है कि उत्तम कार्य करनेवाले उन्नति पाते हैं। नीच कर्म करनेवाले पतित होते हैं। विचार करने पर यह सत्य ही सिद्ध होता है। सृष्टि में कोई भी वस्तु (प्रकृति से) बड़ी नहीं है, तो छोटी भी नहीं है।

हरि, ब्रह्मा और रुद्र—तीनों अपने पूर्व तप के प्रभाव से ही उन्नत पद पाकर रहते थे। किन्तु, जब मैंने उनसे भी अधिक तपस्या करके यथार्थ प्रभुत्व प्राप्त किया, तबसे वे अपना महत्त्व खोकर, अपना कार्य (सृष्टि, रक्षा और संहार के कार्य) छोड़कर मेरे ही शासन में आ गये हैं।

मैंने यह विचार करके कि यज्ञ, तपस्या आदि साधनाओं के द्वारा कोई भी शत्रुओं को दबाने की शक्ति प्राप्त कर सकता है, उन सब (यज्ञ आदि) कार्यों को निषिद्ध कर दिया है। शास्त्रों का अध्ययन रोक दिया है। अतः, वे त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र) स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं कर पा रहे हैं, तो और किसी का क्या उद्धार करेंगे ?

हे अबोध बालक ! मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा कर देता हूँ। पुनः कभी इस प्रकार के व्यर्थ वचन न कहना। तुम्हारे गुरु जो-जो कहें, उन उपदेशों को हितकारी मानकर सीख लो, जाओ।—इस प्रकार समस्त संसार में उन्नत पद पाये हुए हिरण्य ने प्रह्लाद से कहा।

---

१. हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु का छोटा भाई था। वह एक बार, सारी पृथ्वी को लपेटकर समुद्र के भीतर डूब गया। तब देवों की प्रार्थना से विष्णु भगवान् श्वेत वराह का रूप धारण करके गये और हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को दाँत पर उठाकर जल के ऊपर ले आये।

तब प्रह्लाद पुनः बोल उठा—हे सुगंधित पुष्पमाला से विभूषित ! मेरा एक निवेदन है। मैं जो कहना चाहता हूँ वह वेदों और यज्ञों का अंतिम परिणामभूत सिद्धांत है और सब शिक्षाओं के भी परे है।

हे प्रभु ! कोई ऐसा वृक्ष नहीं है, जो बीज के बिना ही (बिना किसी कारण के ही) उत्पन्न हुआ हो। यदि आप अपना विपरीत ज्ञान छोड़ दें और सत्य का विवेचन करें, तो आप जान सकते हैं। यदि आप मेरे कथन को सावधान होकर सुनें और उसे चिन्तन करने योग्य समझें, तो (वह ज्ञान) आपको हस्तामलक के समान स्पष्ट हो जायगा।

वह अनुपम आदिकारणभूत भगवान् अपने में से सब लोकों को उत्पन्न करता है। उन सब पदार्थों में स्वयं रहता है। इतना ही नहीं, सब (पदार्थों) के अन्तर में सर्वत्र (तिल में तेल के जैसे) फैला रहता है। उसका आगा और पीछा नहीं है। वह कभी परिवर्त्तित नहीं होता। ऐसे भगवान् की उस चिरंतन स्थिति का यथारूप वर्णन कौन कर सकता है ?

अति विस्तृत अनेक पदार्थ-समुदायों को पृथक्-पृथक् विश्लेषण कर उनके तत्त्वों का विवेचन करने के दो मार्ग हैं—एक सांख्य और दूसरा योग।[1] उन मार्गों का ज्ञान पानेवालों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उस आदि भगवान् की सर्वोत्तम स्थिति को नहीं समझ सकते हैं।

अपूर्व वेदों ने उसे (भगवान् को) ज्ञानस्वरूप परमतत्त्व कहा है। उस तत्त्व को वही ज्ञानी पहचान सकते हैं, जो अपने आत्मस्वरूप को स्पष्ट देख सकते हैं। इन सच्चे ज्ञानियों के अतिरिक्त ऐसे लोग भी हैं, जो उस भगवान् को पृथक्-पृथक् रूपों में मानते हैं। ऐसे लोग मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते।

उस परमतत्त्व को (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि) प्रमाणों के द्वारा निरूपित नहीं किया जा सकता। वह हमारे ज्ञान से परे रहता है। उपनिषदों के शब्दों का अर्थ भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, उसकी माया को कौन समझ सकते हैं ? उस परमतत्त्व के यथावस्थित स्वरूप को किसी ने नहीं देखा है।[2]

---

१. सांख्ययोग में सृष्टि को चौबीस तत्त्वों में बाँटा गया है। भगवान् इनसे परे रहनेवाला है, जो पच्चीसवाँ तत्त्व है। क्रमशः वे तत्त्व हैं–कर्मेन्द्रिय पाँच, ज्ञानेन्द्रिय पाँच, पाँच भूत। उन भूतों की पाँच तन्मात्राएँ, मन, गुणात्मक मूल प्रकृति। इन सबके परे रहनेवाला है पुरुष। योग शब्द से पतंजलि के द्वारा प्रतिपादित राजयोग लिया जाता है। उसमें १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारण, ७ ध्यान और ८ समाधि इन आठ अंगों से युक्त योग का प्रतिपादन हुआ है। रामानुजीय विशिष्टाद्वैत वेदान्त में इन सांख्य और योगमार्गों का ग्रहण हुआ है और उनकी उपासना-पद्धति राजयोग की पद्धति जैसी होती है।

इस पद्य में सांख्य तथा योग शब्दों से भगवद्गीता के तृतीयाध्याय में प्रतिपादित सांख्ययोग (जो ज्ञानयोग था बुद्धियोग भी कहा गया है) एवं कर्मयोग का अर्थ भी लिया जा सकता है।

२. इस पद में, माया का अर्थ केवल यही है, छल या पकड़ में न आनेवाला तत्त्व। इसका अर्थ अद्वैत वेदांत में प्रतिपादित 'माया' के समान मानना उचित नहीं।—अनु०

वह भगवान् तीन लोकों के रूप में परिणाम पाता है। तीन गुणों (अर्थात्, सत्त्व, रज और तम) के रूप में परिणत होता है। महत् और अमहत् वस्तुओं (अर्थात्, चैतन्ययुक्त प्राणिसमूह और अचेतन पदार्थ) के रूप में परिणत होता है। यों नानात्व को पाकर भी स्वयं सब के अतीत हो अद्वितीय (अर्थात्, जिसका दूसरा नहीं है, वह एक ही है, ऐसा) बना रहता है। देवता और मुनि भी उस परमात्मा के कार्य को नहीं समझ सकते।

कर्म, कर्म का फल, उस फल को देनेवाला आदिकारणभूत भगवान्, जीवात्मा इत्यादि के तत्त्व समझनेवाले लोग ही 'इह' और 'पर' रूपी (संसार और स्वर्ग-रूपी) समुद्र के पार पहुँच सकते हैं (अर्थात्, दोनों से परे रहनेवाले मोक्षपद को पा सकते हैं)।

मंत्र, उत्तम तपस्या, इनका फल, इनके अधिष्ठाता देव, चारों वेदों के विधानानुसार होमाग्नि में दी जानेवाली हवि, इन सबके रूप में वही भगवान् होता है।

वह भगवान् हमारे पहले किये कर्मों का फल पहले, और पश्चात किये कर्मों का फल पश्चात् देता है।[1] हमारे कर्मों का फल कभी अपना क्रम छोड़कर (अस्त-व्यस्त हो) नहीं आते। इस तत्त्व को बहुत-से लोग माया[2] के कारण नहीं समझ पाते।

हमारा कृत कोई एक कर्म कोई एक ही फल देता है। एक कर्म से अनेक फल नहीं होते। किन्तु, भगवान् की करुणा तो ऐसी है कि किसी भी फल को दे सकती है। उस भगवान् की महिमा को सिद्ध करने के लिए इससे बढ़कर और क्या प्रमाण चाहिए?

यथाविधि यज्ञों को करनेवाले, अंत में आदिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु भगवान् को एक आहुति देते हैं।[3] वेदों में कहा गया है कि वह अंतिम आहुति समस्त चर और अचर पदार्थों को प्राप्त होती है।

उस परमात्मा ने मूल प्रकृति के कार्य के रूप में इस सारी सृष्टि को बनाया है। सभी पदार्थ उसी मूल प्रकृति के विकार हैं। वह परमात्मा कर्म के स्पर्श से इस संसार

---

१. प्रह्लाद की हिरण्य के प्रति इस उक्ति में यह ध्वनि है कि हिरण्य अब जिस अधिकार और वैभव से युक्त है, वह पूर्वकृत तपस्या का फल है। तपस्या के पश्चात् किये गये अत्याचारों का फल इस वैभव को भोगने के पश्चात् उसे भोगना पड़ेगा।

२. इस पद में 'माया' शब्द का अर्थ अद्वैतवाद की माया के जैसा नहीं है। रामानुजाचार्य ने माया की व्याख्या की है—'वह विपरीत ज्ञान की जननी है।' (विपरीतज्ञान : मैं भगवान् का शेषभूत हूँ—इसके विपरीत मैं स्वतंत्र कर्त्ता हूँ, ऐसा ज्ञान)। यह संसार मेरा भोग्य है—ऐसी बुद्धि को उत्पन्न करती है। वह हमारी देह एवं इन्द्रिय बनकर सूक्ष्म रूप में रहती है, त्रिगुणमयी है। तिल में तेल के समान, काठ में अग्नि के समान व्याप्त रहती है। क्षण काल में बह जानेवाली है। अतः, उसका विवेचन कर देखना दुस्साध्य है। चेतन में अचेतन की-सी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाली यह माया हमारे चिरकालिक कर्मों के कारण प्रवृत्त रहती है। इस माया के बंधन से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है, भगवान की शरण में जाना।

३. होम करते समय अन्यान्य देवताओं को आहुति देने के पश्चात् अन्त में 'श्रीविष्णवे स्वाहा' कहकर विष्णु को आहुति दी जाती है। उसी का उल्लेख इस पद में आया है। इससे यह सिद्ध किया जाता है विष्णु ही परमतत्त्व है।—अनु०

में उत्पन्न नहीं होता। (जीव तो अपने किये कर्मों के अनुसार जन्म लेता रहता है) तत्त्व-ज्ञान से हीन लोग उसे समझ नहीं सकते।

अपार विभाजनों आदि से युक्त सब जीव, उस भगवान् के चित्र समान (अति सुन्दर) नाल से युक्त, अनेक दलों से शोभायमान एवं सुगन्ध के आवासभूत (नाभि) कमल के अवर्णनीय मूल (या जड़) के एक अंश में अंतर्भूत होते हैं।

वह हमारी प्रज्ञा के परे रहता है। उपमान-रहित है। उसके गुणों और कर्मों के (द्वारा) निर्दिष्ट नहीं हो सकता है। देखनेवालों की आँखों में छिपा रहता है। उसके स्वरूप को जानकर उसका वर्णन करने का प्रयत्न करनेवाले ज्ञानियों के मन में रहता है। पृथ्वी, आकाश तथा अन्य भूतों में अंतर्यामी बनकर रहता है।

वह भगवान् प्राणियों के चिन्तन और कर्मों में निहित तथा वचनों में व्याप्त रहता है। उनकी इन्द्रियों में रहता है। वेदों के आरम्भभूत प्रणवाक्षर (अर्थात्, ओंकार) के रूप में होकर (उस ओंकार में अन्तर्भूत) अकार, उकार और मकार, स्वयं तीनों अक्षर बनकर तथा तीनों के मिलने से उत्पन्न दो संधियाँ भी बनकर रहता है।

अपनी शरण में आनेवालों के काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को तथा उनके परिणामों को जो मिटा देता है, उस भगवान् के शुभनामों की महिमा का बखान कौन कर सकता है? (भगवान्) के, सब जीवों को दुःख से मुक्त करके उनकी रक्षा करने के कार्य का वर्णन कौन कर सकता है?

जैसे एक छोटे बीज में वटवृक्ष का विशाल रूप छिपा रहता है, वैसे ही वह (भगवान्) अपने सूक्ष्म रूप में अति महान् विभव को छिपाये रहनेवाला है। वही काल है, स्थान है, (कार्यों का) साधन है, फल है। उन फलों का अनुभव करनेवाला जीव है, सदाचरण है एवं उस सदाचरण से उत्पन्न होनेवाला ऐहिक एवं पारलौकिक आनन्द भी वही है।

उस भगवान् की स्थिति, अनुपम स्पष्टता से युक्त नादवाली वीणा से उत्पन्न होनेवाली, मन तथा प्रज्ञा से मधुर जानी जानेवाली जो सूक्ष्म ध्वनि होती है उसके समान है, वह सब पदार्थों में बहिरन्तः व्याप्त रहता है। किन्तु, किसी से लिप्त नहीं होता है। उसका स्वरूप ऐसा है कि अकाट्य वेदों को भी उसे जानने में भ्रम-सा होता है।

वह (भगवान्) ओंकार के एकाक्षर के अन्तर्गत प्रथम स्वर (अर्थात्, अ, उ, म—इस तीनों में से प्रथम अकार) का वाच्य है। वह ज्ञान का ज्ञान है (अर्थात्, ज्ञान-स्वरूप आत्मा की भी आत्मा है।) अति विशाल तीनों लोकों में, धूम और अग्नि के समान एक साथ सर्वत्र व्याप्त रहता है।

उचित काल में खिले हुई विविध पुष्पों से बनी घनी माला में स्थित पुष्पों के

---

१. विशिष्टाद्वैत के अनुसार आत्मा और परमात्मा में शरीर-शरीरी भाव होता है। अर्थात्, शरीर में जैसे जीव, उस शरीर का आधार बनकर रहता है, वैसे ही जीवात्मा में परमात्मा उस (जीवात्मा) का आधार बनकर रहता है।

समान ही अनेक मतों के वाद-विवाद होते हैं और उनमें विभेद दीख पड़ता है। किन्तु, जिस प्रकार एक ही समुद्र में अनेक तरंगें उठ-उठकर उसी में मिलती रहती हैं, उसी प्रकार उस एक भगवान् में भी विभेद नहीं होता। अर्थात्, भगवान् के संबंध में होनेवाले विभिन्न मत उसी में अन्तर्लीन हो जाते हैं।

इस प्रकार के अनुपम स्वरूप से युक्त नारायण की निन्दा करके आप अपनी आत्मा की अवनति कर रहे हैं और अपने वैभव एवं आयु का विनाश कर रहे हैं। यही विचार कर मैंने भगवान् (नारायण) का नाम जपा है।—यों प्रह्लाद ने हिरण्य से कहा।

सम्मुख खड़े हुए प्रह्लाद के वचन कहते ही, हिरण्य का सकल लोक-भयंकर क्रोध अपने अनुकूल (निष्ठुर) वचनों के साथ ऐसे उमड़ उठा, जैसे प्राचीन काल में क्षीरसागर का मंथन करते समय हलाहल उमड़ उठा था। उस क्रोध को देखकर ज्योतिष्पिंड (सूर्य, चन्द्र आदि) तथा ऊपर के लोक भय-कंपित होकर चक्कर खाने लगे। पृथ्वी के विस्तृत प्रदेश काँप उठे। हिरण्य की आँखें रक्त उगलने लगीं। उनसे अग्नि बरस पड़ी और उस अग्नि की शिखाओं के समान (उन आँखों से) धूम निकल पड़ा।

तब हिरण्य ने अपने सेवकों से कहा—अब इससे बढ़कर मेरा वैरी और कौन हो सकता है? ऐसा धोखा हुआ है कि मेरे ही उदर से ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है। अब इस पुत्र के मनोभाव को और परखने की आवश्यकता नहीं है। मुझसे अमिट वैर रखनेवाले विष्णु के प्रति यह प्रेम रखता है। इसे मार डालो। यह सुनते ही मारने की क्रिया में निपुण अनेक असुरों ने प्रह्लाद को पकड़ लिया।

चमकती हुई, भयहीन दृष्टियों से युक्त वे असुर हाथी के बच्चे को आ घेरनेवाले क्रोधी सिंहों के समान आये और (प्रह्लाद को) पर्वत-समान रत्नमय राजप्रासाद के द्वार पर ले गये और यह कहते हुए कि इसे सजीव ही खा डालेंगे, बिजली के समान धमकी देते हुए सहस्रों फरसों को एक साथ ही उसपर फेंका।

किंचित् भी पुण्य कार्य से रहित उन असुरों ने, सब प्राणियों पर दया करनेवाले प्रह्लाद पर एक बार 'ऐ' कहने के समय के अन्दर ही (अर्थात्, क्षणकाल में) उस (प्रह्लाद पर परसे खड्ग आदि शस्त्र फेंके। किन्तु, पवित्रमूर्त्ति नारायण को अपना साथी बनाकर रहनेवाले उस अनुपम ज्ञानी (प्रह्लाद) को वे (शस्त्र) उसी प्रकार कुछ नहीं कर सके, जिस प्रकार पुण्यहीन विरोधियों के शापवचन (निष्फल) होते हैं।

फेंके गये (भाले आदि), प्रयुक्त किये गये (तीर आदि), आघात करनेवाले (खड्ग आदि), चुभनेवाले (बरछे, शूल आदि) तथा चीरनेवाले शस्त्र भी प्रह्लाद पर लगकर चूर-चूर हो जाते थे। और, प्रह्लाद की देह पर अपने गिरने के चिह्न तक नहीं उत्पन्न कर सकते थे। प्रह्लाद, परमतत्त्व-रूप विष्णु के अरुण चरणों का ध्यान करता हुआ ही खड़ा रहा।

तब वे असुर (हिरण्य) के निकट गये और निवेदन किया कि हे बलशाली! हमारे पास जो शस्त्र थे, वे सब समाप्त हो गये। किन्तु, उन (शस्त्रों) से आपके पुत्र की किंचित् भी हानि नहीं हुई। अब हम और क्या करें? तब हिरण्य ने कहा—प्रह्लाद

माया करने में चतुर-सा लगता है। अतः, उसने शस्त्रों को रोक दिया है। शीघ्र अग्नि प्रज्वलित करके उसमें उसे डाल दो। वे असुर-वीर अग्नि प्रज्वलित करने लगे।

एक बड़े गड्ढे में काठ के टुकड़ों को पर्वताकार में चुना। घड़ों में तेल, मक्खन और घृत भर-भरकर लाये और उस गड्ढे में डाला। अग्नि प्रज्वलित की, जिसकी शिखाएँ गगन को छूने लगीं। फिर, रोनेवाले देवों के हृदय में दया उत्पन्न हो, इस प्रकार (आचरण) करते हुए उन (असुरों) ने प्रह्लाद को उस ज्वाला में डाल दिया। तब प्रह्लाद हरि-हरि कहता हुआ उस भगवान् के उभय चरणों को नमस्कार करता हुआ खड़ा रहा। तब वह ज्वाला शीतल हो गई।

जब विष के समान कठोर राक्षसों ने अपने करों से हनुमान् की पूँछ में कपड़े लपेटकर घी में भिगोकर आग रखी और वह आग प्रलयकाल की अग्नि-सी भड़क उठी, तब पातिव्रत्य-धर्म से युक्त सीता के शुभवचनों के प्रभाव से वह आग शीतल हो गई थी। उससे जिस प्रकार हनुमान् की पूँछ नहीं जली थी, उसी प्रकार रत्न-समान प्रह्लाद की देह भी बहुत शीतल हो गई।

तब भयंकर असुरों ने हिरण्य के निकट जाकर निवेदन किया—ज्वालामय अग्नि आपके पुत्र को जला नहीं सकी। अब हम क्या करें? क्रोध से भड़ककर उस भयहीन हिरण्य ने कहा—अग्निदेव को बंदी बनाकर कारागार में डाल दो। उस छली प्रह्लाद पर अष्ट महानागों (सर्पों) को चलाओ।

हिरण्य के द्वारा स्मरण करते ही अनन्त, आदि आठ कालसर्प वहाँ आ पहुँचे और सुन्दर चित्रप्रतिमा-समान प्रह्लाद के ऊपर झपटकर क्रोध से उमड़ते हुए अपने खड्ग जैसे तीक्ष्ण दंतों से उसे काटा। किन्तु, नारायण का नाम कभी न विस्मृत करनेवाला प्रह्लाद किंचित् भी भीत नहीं हुआ।

जब आठ कालसर्पों ने प्रह्लाद को काटा, तब समीपस्थ सब प्राणियों के मुँह से भय के कारण रक्त की धारा बह चली। तीक्ष्ण पंखोंवाला गरुड भी काँप उठा। किन्तु, उन सर्पों के दाँत जो मेघ में घुसनेवाले अर्धचन्द्र के समान उस (प्रह्लाद) की देह में घुसे थे, बलरहित होकर टूट-टूटकर गिर पड़े। उन दाँतों के बड़े छेदों से अमृतबिन्दु बरसने लगे।

तब उन असुरों ने हिरण्य से निवेदन किया कि सर्प भी उसे नहीं काट सके। तब हिरण्य ने आज्ञा दी कि प्रह्लाद को मदमत्त दिग्गजों में श्रेष्ठ ऐरावत का लक्ष्य बनाओ।

प्रेम से रहित हृदयवाले उन असुरों ने (हिरण्य की) यह आज्ञा पाकर पूर्व दिशा में स्थित इन्द्र के निकट जाकर यह बात कही। तब झट इन्द्र ने दृढ दाँतोंवाले अति बलवान् हाथी ऐरावत को भेज दिया।

असुरों ने प्रह्लाद के कर, चरण वक्ष और कंठ को मंत्रबल से युक्त पाशों से बाँधा और मत्त गज के सम्मुख डाल दिया। असत्य-रहित प्रह्लाद ने उस गज से यह वचन कहा—

तुम्हारे कुलपुरुष गजेन्द्र ने पूर्वकाल में एक बार मकर के द्वारा ग्रस्त होकर

भगवान् विष्णु की पुकार की थी और कहा था—'हे सबके आदिकारणभूत ! हे परमतत्त्व ! हमारे रक्षक ! आओ !' तब झट आकर विष्णु ने उस (गजेंद्र) की रक्षा की थी। यही विष्णु मेरे हृदय में भी विद्यमान हैं।

यह वचन सुनकर उस महान् गज ने अपने स्वर्णमय मुखपट्ट को पृथ्वी पर छुलाते हुए प्रणाम किया और काँपता हुआ (प्रह्लाद के सामने से) हट गया। असुरों ने यह समाचार हिरण्य को दिया।

तब अति क्रुद्ध हो हिरण्य ने आज्ञा दी—विशाल समुद्र में सोनेवाले (विष्णु) के प्रति आदर दिखाते हुए इस हाथी ने मेरे पराक्रम का भंग किया है। हे बलवान् वीरो ! शीघ्र जाकर उस हाथी को मार डालो।

ज्योंही असुर उस हाथी को मारने के लिए झपटे, त्योंही वह गज विद्युत को मंद कर देनेवाले अत्युज्ज्वल दंतों से प्रह्लाद को मारने लिए आगे बढ़ा।

प्रह्लाद के अतिदृढ वक्ष पर उस हाथी के चारों दाँत भली विधि चुभ गये। किन्तु, तुरन्त ही अतिशीतल कदली-वृक्ष के तने के समान ही वे श्वेत दाँत भी टूटकर गिर गये।

यह देखकर असुर पलक मारते ही हिरण्य के निकट जा पहुँचे और कहा—ऐरावत के दाँत टूट गये। अब आपके पुत्र का प्राण हरण करना असंभव है। यह सुनकर हिरण्य की आँखें ग्रीष्मकाल के सूर्य के समान उग्र रूप से चमक उठी।

उसने असुरों को आज्ञा दी—किसी उपाय से न मरनेवाले इस वंचक (प्रह्लाद) को बड़ी शिलाओं के साथ कसकर बाँध दो और अपार सागर में डुबा दो।

तब उन असुरों ने जान लिया कि हिरण्य प्रह्लाद को छोड़नेवाला नहीं है। उसे मार डालने का प्रण कर लिया है। और, वायु-वेग से प्रह्लाद को शिलाओं के साथ बाँधकर समुद्र के मध्य में डाल दिया।

प्रह्लाद, तटस्थता को कभी न छोड़नेवाले (अर्थात्, पक्षपात-हीन न्याय करनेवाले) नारायण का शुभनाम निरन्तर जपता रहा। अतएव, वह समुद्र छोटे सरोवर के समान हो गया और वे शिलाएँ नौका के समान उतराने लगीं।

वह (प्रह्लाद) प्रलयकाल में, जल-राशि पर तैरनेवाले, वटपत्र पर शयन करनेवाले बालकाकार विष्णु के समान उस शिला पर शोभायमान था।

वेदों को जाननेवाला वह प्रह्लाद तरंगों से पूर्ण समुद्र में डूब नहीं गया। किन्तु, तैरनेवाली शिला पर लेटा रहा। और, आदिदेव नारायण के सहस्रों नामों का जप करता रहा—

हे (दुष्टों का निग्रह करने में) निष्ठुर रहनेवाले ! (किसी को) स्पष्ट रूप से अविज्ञेय ! दुर्गुणों से सर्वथा रहित ! मैं तुम्हारे दासों का दास बना रहना चाहता हूँ। क्या इसके अतिरिक्त मुझमें किंचित् भी अहंकार है ! मेरी दशा पर दया करो।

वंचकों के लिए तुम वंचक बनते हो। तुम्हारे लिए प्राणियों के हृद्गत भाव

अज्ञात नहीं हैं। हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न अमृत के समान मधुर लगनेवाले! क्या चंचल स्वभाववाले मेरे मन की और भी परीक्षा करना उचित है?

चतुर्मुख (ब्रह्मा), पंचमुख (शिव), देवों का राजा (इन्द्र)—ये सब वेदोक्त मार्ग पर रहकर भी चिरकाल तक तुम्हारे स्वरूप को नहीं पहचान सके हैं, तो अज्ञान से भरा हुआ मैं एक ही दिन में तुमको कैसे समझ सकता हूँ?

मैंने कौन-से पाप नहीं किये हैं? उन सब पापों को मुझे भोगना है। ठीक है। किन्तु, तुम्हारी कृपा यों अपूर्व है। वे पाप मेरी आत्मा को छोड़कर चले जायेंगे।

तुमको प्राप्त करने का उपाय अपना ज्ञान ही है—यों मानकर असंख्य लोगों ने (तुम्हें प्राप्त करने के) उपाय किये हैं। किन्तु, तुम्हारा स्वरूप उनके ज्ञान से परे रहा है।[1] अतः, तुम्हें पहचानने की शक्ति से हीन होकर वे तुम्हारी माया के जाल में फँसे रहे।

पूर्वकाल में कुछ व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जिनमें से प्रत्येक ने यह कहा था कि संसार की वस्तुएँ विनश्वर हैं और मैं ही सृष्टि का एकमात्र नायक हूँ। उनके यों कहने से क्या हुआ? (अर्थात्, उनका वह अहंकार व्यर्थ हुआ)। वास्तव में तुम्हारे अतिरिक्त परम-तत्त्व दूसरा कौन है? (कोई नहीं है।)

कोई एक देव को सब सृष्टि का आदिकारण बताता है। दूसरा उस उक्ति का खंडन करके अन्य किसी देव को प्रधान कारण बताता है। इस प्रकार, विविध मतों को प्रतिपादित करनेवाले अनेक शास्त्र-ग्रन्थ हैं। किन्तु (हे नारायण!) तुम्हारे परमतत्त्व-स्वरूप होने में इनसे कुछ बाधा नहीं पड़ती है। हे वेदों में प्रतिपाद्य परमपुरुष! यह भी तुम्हारा कैसा कपट-नाटक है!

मुझ जैसे अज्ञ व्यक्ति ब्रह्मा को, शिव को या अन्य किसी देवता को, विविध रूप में समझते रहें, तो उससे क्या होगा? (अर्थात्, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवों को परमतत्त्व समझें, तो उससे कुछ सिद्ध नहीं होता।) वृक्ष तो एक ही होता है न? (अर्थात्, जिस प्रकार वृक्ष में विविध वस्तुओं के होने पर भी वृक्ष के प्रधान और एक होने में कोई बाधा नहीं पड़ती है, उसी प्रकार ब्रह्मा, रुद्र आदि विविध देवों के होने पर भी नारायण के परमतत्त्व होने में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

तुमसे सब लोक उत्पन्न होते हैं और विविध परिवर्त्तनों से युक्त होते हैं। तो भी, तुमसे वे पृथक् नहीं होते। स्वर्ण के बने हुए आभरण (विविध आकार के होने पर भी) उस स्वर्ण से अलग नहीं होते।

माता और पिता के प्रेम से युक्त होकर तुम्हीं ने (मुझे) उत्पन्न किया। मेरा

---

१. विशिष्टाद्वैत-मत के अनुसार भगवान् को केवल ज्ञान से नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है परमभक्ति; परभक्ति से परज्ञान एवं परज्ञान से परमभक्ति उत्पन्न होती है। परमभक्ति तभी उत्पन्न हो सकती है, जब जीव में किंचित् भी अहंकार नहीं रह जाता है। इस अहंकार के कारण, जीव स्वयं को सब कार्यों का कर्त्ता मानने लगता है। देह में आत्मा का भ्रम करता है। यह अज्ञान ही माया है। जीव ऐसी माया में पड़कर चक्कर काटता रहता है। अतः, विशिष्टाद्वैत ने यह माना है कि प्रपत्ति और परमभक्ति से ही भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है।

हृदय तुम्हारा आवास-स्थान है। मुझे जन्म देनेवाले तुम ही इस जन्म के रोग को भी दूर करने में समर्थ हो।—इस प्रकार के वचन कहकर प्रह्लाद ने भगवान् की प्रस्तुति की।

उधर हिरण्य ने सेवकों से यह जानकर कि प्रह्लाद मरा नहीं, यह आज्ञा दी कि उसे मेरे सामने लाकर छोड़ो। तब असुर, प्रह्लाद को उसके सम्मुख ले आये। हिरण्य ने क्रोध के साथ कहा—इसके उन्माद को दूर करना है। दारुण विष से इसे मार डालो।

तब असुरों ने प्रह्लाद को भयंकर विष दिया। प्रह्लाद ने नारायण का ध्यान करते हुए उस विष को लेकर पी लिया। किन्तु, किंचित् भी प्रज्ञा खोये बिना वह खड़ा रहा। तब हिरण्य की आज्ञा से (उन असुरों ने) घोड़ों से चलाये जानेवाले मुँगरों से मारकर आघात किये।

उस समय सब कह रहे थे कि अब यह नहीं बचेगा। उस समय प्रह्लाद अपने मन में यह ध्यान कर रहा था कि मेरे मन में निवास करनेवाले भगवान् के कर एक सहस्र नहीं, किन्तु असंख्य हैं।

प्रह्लाद मरा नहीं, यह देखकर हिरण्य क्रोध के साथ यह बोल उठा कि इसकी स्वभावसिद्ध माया के कारण ही इसके प्राण इसकी देह से नहीं निकल रहे हैं। मैं स्वयं ही इसके प्राण निकालूँगा और प्रह्लाद के पास (यों गरजता हुआ) आकर खड़ा हुआ कि सप्त मेघ भी भयभीत हो उठे।

क्रोध के साथ अपने निकट आये पिता को देखकर प्रह्लाद ने उसे नमस्कार करके यह कहा—मेरे पिता! क्या आप मेरे विनश्वर जीवन को लेना चाहते हैं? यह जीवन आपके वश में नहीं है। सब लोकों के सृष्टिकर्त्ता (नारायण) के वश में है। उसके यों कहते ही—

हिरण्य ने उससे पूछा—लोकों की सृष्टि करनेवाला कौन है? क्या मेरे नाम की स्तुति करनेवाले त्रिमूर्त्ति इसके सृष्टिकर्त्ता हैं, या मुनि हैं, अथवा कोई और हैं, जो अपने सब अधिकार मेरे सम्मुख खो चुके हैं? कौन हैं? स्पष्ट रूप से कहो। वह (हिरण्य) यह चाहता था कि यदि सृष्टिकर्त्ता कोई उसे दिखाई पड़े, तो वह देखे। अतः, प्रह्लाद को उसने तुरन्त नहीं मार डाला।

तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हे पिता! जिसने सब लोकों की सृष्टि की और उन लोकों के विविध प्राणियों की सृष्टि की तथा उन सब प्राणियों के अंतर में निवास करता है, वह वही हरि है, जो पुष्प में सुगंधि के समान और तिल में तेल के समान सर्वत्र सब वस्तुओं में अन्तर्यामी बनकर रहता है।

मेरा वह प्रभु सर्वत्र विद्यमान है। उसे मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। मैं जब यह सत्य आपसे प्रेम के कारण कहता हूँ, तब आप इसे मानते नहीं हैं। आपके अनुज (हिरण्याक्ष) के प्राणों का हरण करनेवाले वे कमलाक्ष आपकी दृष्टि में सुलभतया नहीं आयगा।

(सत्त्व, रज और तम नामक) तीनों गुण उसी के हैं। (सृष्टि, रक्षा और

संहार नामक) तीनों कार्य उसी के हैं। (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नामक) तीनों मूर्त्ति वही है। (सूर्य, चन्द्र और अग्नि नामक) तीनों ज्योति वही है। (स्वर्ग, भूमि और पाताल नामक) तीनों लोकों की सृष्टि उसी ने की। आदि मध्य और अन्त से युक्त समस्त वस्तुओं के समुदाय का साक्षीभूत वही है। यही वेदान्त का सिद्धान्त है। यही सत्य है।—यों प्रह्लाद ने कहा।

प्रह्लाद के यों कहते ही, असुरराज (हिरण्यकशिपु) कलियों-जैसे दाँतों को प्रकट करता हुआ हँस पड़ा। फिर बोला—तुम कहते हो कि वह एक, अनेक (अर्थात्, विविध रूप की) वस्तुओं में समाया रहता है। पहले इसी बात की परीक्षा करेंगे, फिर उचित कार्य करेंगे। यदि तुम्हारा कथित वह हरि इस स्तंभ में छिपा रहता है, तो उसे प्रमाणित कर दिखाओ।

तब प्रह्लाद ने कहा—वह भगवान् हाथ-भर के स्थान में है। एक छोटे अणु के शतांश भाग में भी है। महा मेरुपर्वत में है। यहाँ के इस स्तंभ में भी है। आपके वचनों में है। इस सत्य को आप शीघ्र परीक्षा करके समझ लें। तब हिरण्य 'ठीक' कहकर आगे बोला—

देवताओं के लिए एवं तुम्हारे लिए अनुकूल रहनेवाले तथा समस्त लोक में व्याप्त रहनेवाले उस विष्णु को इस स्तम्भ में दिखाओ। यदि तुम नहीं दिखाओगे, तो मैं तुमको, कुंभवाले हाथी को जिस प्रकार सिंह मारता है, उसी प्रकार मारकर रक्त पीकर तुम्हारी देह को खा डालूँगा।

तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ प्रह्लाद ने कहा—मेरे प्राण हरण करना आपके लिए संभव कार्य नहीं है। यदि वह हरि, आपके छुए हुए स्थानों में प्रकट नहीं होगा, तो मैं स्वयं अपने प्राण छोड़ दूँगा। यद्यपि वैसे न मरकर पुनः सप्राण जीवित भी रह जाऊँ, तथापि मैं उसी विष्णु का दास रहूँगा।—इस प्रकार प्रह्लाद ने प्रण किया।

यह सुनकर हिरण्य ने, अपने मन के उपहास-भाव को प्रकट करता हुआ, हँसकर, 'ठीक है' कहा और विजय तथा यश को फैलानेवाले अपने कर से सामने स्थित स्तम्भ पर ऐसा आघात किया, जैसे अतिवेग से बिजली प्रकट होकर गिरी हो। यों आघात करते ही, शोणित नेत्रवाला एक सिंह, दिशाओं को चीरता हुआ, ब्रह्मांड को भेदता हुआ, हँस उठा।

जिसको ब्रह्मा भी सदा खोजता रहता है, तो भी उसे देख नहीं पाता, वैसे सूक्ष्माकार विष्णु (सिंह के रूप में) हँस पड़े, तो वह ज्ञानवान् प्रह्लाद, जिसने (हिरण्य से) यह कहा था कि मैं भगवान् को दिखाऊँगा, नाच उठा। अश्रु बहाने लगा। गाता हुआ कोलाहल मचाने लगा। अपने अरुण करों को सिर पर रखा। धरती पर गिरकर प्रणाम किया। उछल-उछलकर संसार-भर को चरणों से रौंद डाला (अर्थात्, आनन्द से चारों दिशाओं में दौड़ पड़ा।)

अपने नाम को स्थिर रखने के कारणभूत महान् प्रताप से युक्त वह हिरण्य बोल उठा—तू कौन है रे, जो हँस रहा है? इस (प्रह्लाद) का बताया हुआ हरि तू ही है क्या?

तू मुझसे भीत होकर समुद्र में जा छिपा था। उसे पर्याप्त न समझकर क्या अब इस स्तंभ को ढूँढ़कर इसके भीतर भी छिपा है? अरे! यदि तू लड़ सकता है, तो बाहर निकल आ रे।

हिरण्य के इस प्रकार कहतेही वह स्तंभ फट गया। उसमें से सिंहमूर्त्ति प्रकट हुई। झट उसका आकार अष्ट दिशाओं को भरता हुआ बढ़ गया। इस ब्रह्मांड के बाहर स्थित अन्य अंडों में भी व्याप्त हो गया। उसके पश्चात् क्या घटित हुआ—इस बात को ठीक-ठीक जानकर बतानेवाला कौन है? अंड-कटाह नीचे और ऊपर से भिदकर टूट गया।

सुगंधित मनोहर तुलसी-माला से भूषित उन नरसिंह-मूर्त्ति की ऊँचाई गगन में कहाँतक भेदकर गई थी—यह हम नहीं जानते। जब वह मूर्त्ति धरती पर अपने अरुण चरण रखकर खड़े हो गये, उसी क्षण ब्रह्मांड के ऊपरी लोक (सत्यलोक) में रहनेवाला ब्रह्मा उन (नरसिंह) की नाभि-प्रदेश में स्थित-सा दिखाई दिया।

यदि पूछा जाय कि उस नरसिंह-मूर्त्ति के कितने हाथ थे, तो उन (करों) को गिनकर कौन बता सकता है? एक सहस्र करोड़ 'वेल्लम'[1] संख्यावाले असुरों की सेना-रूपी समुद्र को वे हाथ से पकड़-पकड़कर मिटा रहे थे।

एक सहस्र करोड़ वेल्लम संख्यावाले तीक्ष्ण दाँतों से युक्त असुरों में प्रत्येक के सम्मुख (नरसिंह-मूर्त्ति का) एक-एक मुख था। दो-दो कर थे। उस प्रत्येक मुख में अग्नि के समान प्रज्वलित होनेवाली तीन-तीन लाल आँखें थीं। उस दिव्य वदन के गह्वर में सात समुद्र, पर्वत एवं समस्त पदार्थ भर सकते थे।

उन मूर्त्ति के अतिदीर्घ एवं टेढ़े होकर गिरे हुए केसर, प्रलयकाल में सारे ब्रह्मांड को निगलनेवाली अग्नि को भी नीचा करनेवाले थे। उन मूर्त्ति के श्वास प्रलयकालिक प्रभंजन को दबा देनेवाले थे। फिर भी, वे दोनों (केसर और श्वास) उन मूर्त्ति के ऊपरी भाग और अन्तर में ही थे। अहो! (अर्थात्, जिस प्रकार प्रलयाग्नि और प्रलय-कालिक प्रभंजन जगत् में सर्वत्र व्याप्त होनेवाले हैं, उसी प्रकार नरसिंह-मूर्त्ति के केसर और श्वास सर्वत्र नहीं फैले थे। फिर, वे प्रलयकालिक अग्नि और प्रभंजन को मात करनेवाले थे। यही आश्चर्य है)।

जिस प्रकार पक्षी अपने अंडों को सेता है, वैसे ही प्रलयकाल में सब ब्रह्मांड उस भगवान् के उदर में छिपे रहते हैं और (सृष्टि के आरम्भ में) प्रकट होते हैं। उसी प्रकार जीवित रहनेवाले सब प्राणी उन नरसिंह-मूर्त्ति के अमृतस्रावी दाँतों से युक्त विशाल वदन-गह्वर में घुस रहे थे।

सद्गुण में स्थिर रहनेवाले साधुजनों की कभी हानि नहीं हो सकती। ब्रह्मा से लेकर चिर काल से प्रचलित धर्म-मार्ग पर जो नहीं चलते थे, ऐसे असुरों एवं उनसे सम्मिलित लोगों का विनाश करके, उन (असुरों) से इतर सब प्राणियों को वह नरसिंह-मूर्त्ति उस समय अपने उदर में रखकर माता के समान उनकी रक्षा कर रही थी।

वे (नरसिंह) असुरों में से अनेक को अपने अर्धचन्द्र-सदृश दाँतों के मध्य डाल-कर पीसते। कुछ को इस ब्रह्मांड से बाहर फेंकते। कुछ को पकड़कर मेरुपर्वत पर दे

---

१. 'वेल्लम' संख्या कितनी होती है—यह पहले लिखा गया है।

मारते। कुछ को अपनी उँगलियों से पीस देते। कुछ को समुद्र के मध्य यों डुबोते कि जल के ऊपर बुलबुले निकल आते और कुछ को वडवाग्नि में डाल देते।

वे उन असुरों को तोड़कर दो टुकड़े कर देते। उनके चर्म को यों फाड़ देते, जैसे कोई कपड़ा हो। उन (असुरों) का रक्त, उनकी अग्नि-से प्रज्वलित आँखों को खोदकर निकालते। आँतों को पकड़कर तोड़ देते। उनकी देह को यों निचोड़ते कि रक्त की एक बूँद भी न बचती। अपने नाखूनों के बीच फँसे असुरों को दूसरे नखों से दबाकर चीर देते।

वे नरसिंह, हाथियों, रथों, घोड़ों तथा अन्य (असुर आदि) को, उनके शरीर को चबा-चबाकर खा डालते। शब्दायमान तरंगों से युक्त सातों समुद्रों को मीनों के साथ पी डालते। गगन के मेघों को बिजलियों के साथ निगल जाते। उन नरसिंह-मूर्त्ति की उग्रता को देखकर धर्म-देवता भी यह सोचकर कि इनका क्रोध कभी शान्त न होगा, भय से थरथरा उठा!

वे नरसिंह कुछ को चक्रवाल-पर्वतों (जो भूलोक की सीमा पर होते हैं) से दे मारते। कुछ को ब्रह्मांड के बाह्य आवरण पर डाल देते। कुछ को सप्त कुलपर्वतों से रगड़ते। कुछ को अपने दीर्घ करों से उठाकर आठों दिशाओं की सीमा पर डालते।

कुछ को घसीटकर उनके पर्वत-जैसे सिरों को नखों से नोच-नोचकर लुढ़का देते। कुछ को ऐसे रौंदते कि आग निकल पड़ती। कुछ को उनकी क्रूरता के जैसे ही चित्रवध (?) कर डालते। कुछ के प्राणों को निकालकर पी डालते। कुछ को समुद्र में इस प्रकार डालकर मथते कि (समुद्र का) उबला हुआ जल गगन-प्रदेश को भर देता।

उन्होंने तीनों लोकों के सब असुरों को पकड़-पकड़कर मिटाया, उनकी स्त्रियों के गर्भों को भी विनष्ट कर दिया। अब इस ब्रह्मांड में असुरों के न रहने से उन (नरसिंह-मूर्त्ति) के कुछ हाथ बाहर के अंडों को भी छूकर वहाँ असुरों को खोजने लगे।

विशाल नेत्रोंवाले उन नरसिंह-मूर्त्ति ने हिरण्य एवं उसके देवशरण्य पुत्र (प्रह्लाद) को छोड़कर, अन्य सब असुरों को क्षणकाल में मिटा दिया। अब वीर-कंकण-धारी हिरण्य ने उन नरसिंह को अपनी ओर बढ़ते देखा।

तब वह (हिरण्य), वज्रायुध के समान करवाल को कोश से निकाले, पूरे गगन को ढकनेवाले विशाल ढाल को एक हाथ में थामे, ऐसा गर्जन करता हुआ, जिसे सुनकर देवों के प्राण सूख जाते थे और सप्तपर्वत एवं सप्तसमुद्र काँप उठते थे, सजीव मेरु-पर्वत के समान, अपना ओंठ चबाता हुआ, क्रोध के साथ खड़ा रहा।

यों खड़े हुए हिरण्य को देखकर सकल लोकों के द्वारा प्रशंसित प्रह्लाद ने कहा—कदाचित् इस दशा में भी आपके मन में किंचित् भी सत्य का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है। शत्रु-विनाशन में बलिष्ठ चक्रायुध को धारण करनेवाले भगवान् को नमस्कार कीजिए। ऐसा (नमस्कार) करने से ही भगवान् आपके सब पाप-कृत्यों को क्षमा कर देंगे।

इसपर हिरण्य ने कहा—यह सुनो, तुम्हारे देखते-देखते मैं इस सिंह के करों

और चरणों को काट दूँगा और तुम्हें भी टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। फिर, मैं अपने करवाल को नमस्कार करूँगा। इसके अतिरिक्त मैं और किसी को नमस्कार नहीं करूँगा। प्रणय-कलह में भी मैं कभी (अपनी प्रेयसी के सम्मुख) अपना सिर झुकानेवाला नहीं हूँ।—यह कहकर वह अट्टहास कर उठा।

यों हँसकर वह यों क्रोध प्रकट करने लगा कि उसके मुँह से, करों से, करवाल से और चलते हुए पदों से, धूमसहित अग्नि निकल पड़ी। वह (हिरण्य) नरसिंह का सामना करता हुआ आगे बढ़ा। पीडा देनेवाले असुरों की चालाकी से भी बढ़कर चालाकी दिखानेवाले विष्णु ने गणितशास्त्रज्ञों के लिए भी अज्ञात संख्यावाले अपने करों एवं चरणों से उस (हिरण्य) को दृढता से घेरकर पकड़ लिया।

वे दोनों परस्पर बँधे हुए जब खड़े थे, तब वह दृश्य ऐसा था कि भयंकर आकार एवं कठोर क्रोधवाला हिरण्य मेरु-पर्वत का-सा लगा और नरसिंह-मूर्त्ति अन्य पर्वतों के समुदाय जैसे लगे। (भाव यह है कि स्वर्णमय मेरु-पर्वत के चारों ओर सप्तकुलपर्वत, चक्रवाल आदि जैसे होते हैं, वैसे ही स्वर्ण के रंगवाले हिरण्य को घेरकर रहनेवाले नरसिंह-मूर्त्ति के असंख्य कर थे।)

नरसिंह-मूर्त्ति, अपने भयंकर गर्जन तथा तीक्ष्ण नखोंवाले दीर्घ एवं असंख्य करों के कारण ऐसे लगते थे, जैसे विविध प्रकार की तरंगों से युक्त क्षीरसमुद्र उमड़कर ब्रह्मलोक के भी ऊपर उठ गया हो। उन नरसिंह के हाथों में फँसा हुआ हिरण्य मेरु की समता करता था।

नरसिंह ने, अपने एक विशाल कर से हिरण्य के परस्पर समान दोनों टाँगों को एक साथ पकड़कर घुमाया, तो उस समय (हिरण्य का) करवाल, कंधे, हाथ और किरीट ब्रह्मांड की ऊपर की भित्ति से रगड़ उठे। उस (हिरण्य) के उत्तम रत्नों से जटित आभरण अनेक ग्रहों से युक्त ज्योतिर्मंडल के समान लगा।

यों घूमते समय हिरण्य के दोनों कर्णों के कुंडल टूटकर, एक पूर्व में और एक पश्चिम में बिखर गये, मानों वे ही कुंडल अब भी सूर्य से प्रकाशित हो उठनेवाले उदय और अस्ताचल हैं। उन कुंडलों के माणिक्य की कांति ही प्रातः और सायंकालीन लालिमा बनकर बिखरती है।

इस प्रकार के अद्वितीय आकार तथा स्वभाववाले उन नरसिंह-मूर्त्ति की दशा का मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ? अपनी शरण में आनेवाले भक्तों को मोक्षपद प्रदान करनेवाले उन उदार भगवान् ने अपने धवल नखों को हिरण्य के वज्रतुल्य वक्ष में ज्योंही चुभोया, त्योंही रक्त का प्रवाह उमड़कर सर्वत्र भर गया।

मायावी विष्णु भगवान् ने उस हिरण्य को सायंकाल में, उसके सुन्दर प्रासाद के बाहरी द्वार पर, अपनी जंघाओं के मध्य रखकर, सूर्य की जैसी कांति बिखेरनेवाले वज्र-जैसे उसके दृढ वक्ष को वज्र-जैसे अपने नखों से ऐसा चीर डाला कि रक्त-प्रवाह उमड़ चला और अग्नि-ज्वालाएँ फूट पड़ीं। यों उस (हिरण्य) का वध करके उन्होंने देवों के दुःख को दूर किया।

पहले हिरण्य से डरकर अज्ञात प्रदेशों में भागकर छिपे हुए त्रिनेत्र (शिव), अष्टनेत्र (ब्रह्मा), कमल-समान सहस्र नेत्रोंवाला (इन्द्र), अष्ट दिशाओं के पालक देवता एवं मुनि वहाँ आ पहुँचे और यह न जानते हुए कि किस नेत्र से भगवान् के नरसिंह आकार को देखा जा सकता है, स्तब्ध हो खड़े रहे।

जहाँ भी उन लोगों की दृष्टि पड़ती थी, वहाँ भगवान् का ही मुख, कर एवं चरण दिखाई देता था। यों वचन से, भाव से और प्रज्ञा से भी अज्ञेय होकर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले भगवान् के नरसिंह के रूप को देखकर वे सब भीत हो उठे।

उन नरसिंह-रूप के ऐसे करोड़ों मुख सर्वत्र फैले थे, जिनमें एक दाँत और दूसरे दाँत के मध्य अनेक योजन का अवकाश था। यों उस अपार रूप के दर्शन करके, प्रफुल्ल कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव, भगवान् का गुणगान करने लगे।

तुमने स्वयं को इस स्तंभ से उत्पन्न किया है। यही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा आदिकारणभूत तुम स्वयं ही हो। जब तुम अपनी सृष्टि करनेवाले स्वयं तुम ही हो, तो यह कैसी बात है कि तुमने प्राणिवर्गों की सृष्ट करने के लिए मुझे सृष्ट किया? (यह केवल तुम्हारी लीला-मात्र है।)

जिस प्रकार बुलबुले समुद्र में उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक कोटि ब्रह्मांड तुमसे उत्पन्न होकर फिर तुम्हीं में विलीन होते हैं। जब सब पदार्थ तुम्हीं हो, तब इस भयंकर (नरसिंह) रूप को धारण करते हो और सबका विनाश करने लगते हो, तो क्या उससे अनवस्था[1] नामक दोष नहीं होगा?

तुम एक होकर भी अनेकनामरूपात्मक होते हो। तुम्हीं सृष्टि का एकमात्र आदिकारण हो। तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी इस सृष्टि में नहीं है। अतः, तुम किसका सर्जन करते हो, किसकी रक्षा करते हो और किसका विनाश करते हो?—हम नहीं जानते।

तुमने मुझे अपने से ही उत्पन्न किया। तुम्हारी कृपा से मैंने अपने अन्तर से सब जड़ एवं चेतन पदार्थों को उत्पन्न किया। हे मेरे माता एवं पिता! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई कारण नहीं है। न मेरा कोई कार्य ही है। (तुमसे उत्पन्न हुआ) मैं ऐसा ही हूँ, जैसा स्वर्ण का बना हुआ स्वर्ण-आभरण हो।

इस प्रकार, प्रस्तुति करके आठ अपलक नयनोंवाले ब्रह्मा ने, युद्ध-कुशल परशु-आयुध को रखनेवाले शिव ने तथा अन्य देवताओं ने नमस्कार किया और दोनों पार्श्वों में खड़े रहे। तब चक्रधारी नरसिंह ने भी अपनी अदम्य उग्रता को शान्त किया।

यह सोचकर कि सब लोक अभी मिट जानेवाले हैं, थरथरानेवाले देवताओं को देखकर नरसिंह ने कहा—निर्भय रहो। और, करुणामय दृष्टि के साथ प्रफुल्ल कमल को नीचा करनेवाले अपने सुन्दर कर से अभय मुद्रा दिखाई।

तब ब्रह्मा आदि देवों ने कमल में निवास करनेवाली उन लक्ष्मी देवी की प्रार्थना करके उन्हें नरसिंह के निकट भेजा, जो (लक्ष्मी) सौंदर्य का आभरण हैं, सबका ऐश्वर्य हैं,

१. 'अनवस्था' =अव्यवस्था—यह न्याय-शास्त्र में एक दोष के रूप में निरूपित है।

(भक्तों को) मोक्षपद देने की कृपा करनेवाली हैं,[1] सब प्राणियों की रक्षा करनेवाली हैं, अमृत के संग उत्पन्न हुई हैं और देवों के लिए भी माता के तुल्य हैं।

अपना कोई उपमान न रखनेवाले विष्णु ने, कमलपुष्प की पीठ पर प्रज्वलित दीप के समान प्रकाशित होते रहनेवाली, सुरभि के आवासभूत कोमल पल्लव की समता करनेवाली तथा सब लोकों तथा प्राणियों को आदिकाल में क्रमशः जन्म देनेवाली, उन लक्ष्मी देवी को देखा।

विलक्षण परमज्योति-स्वरूप उन नरसिंह-मूर्त्ति ने अकलंक सृष्टि करने में सहायक बननेवाली लक्ष्मी देवी को प्रेम से देखा। ऋषिवर्ग ने परमात्मा की महिमा का गान किया। तब दुःखहीन प्रह्लाद पर भगवान् ने अपना कटाक्षपात किया।

भगवान् ने कहा—मैंने तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारे पिता के शरीर को चीरकर उसे मारा। तब भी धर्म पर स्थिर रहनेवाले अचंचल मन-सहित तुम मुझपर अपार प्रेम और श्रद्धा के साथ स्थित रहे। करुणा के पात्र! हे तात! मुझपर तुम्हारी इस भक्ति के बदले मैं क्या दूँ?

एकमात्र काल के सहस्रांश में मैंने तुम्हारे पिता को पकड़कर उसके अपराधों के कारण, उसकी देह को चीरकर, जैसे उसके प्राणों को ढूँढ़ रहा हो, यों उसकी देह के भीतर कटों को इधर-उधर टटोलकर मार डाला। फिर भी, तुम अधीर न होकर स्थित रहे।

अब तुम्हारे कुल के असुरों को, अपार अपराध करने पर भी, मैं नहीं मारूँगा। तुम्हारे किसी भी जन्म में तुमपर मेरी कृपा रहेगी। यदि मुझसे कुछ प्राप्त करना चाहो, तो निर्भीक होकर झट माँगो—यों भगवान् ने कहा।

तुम्हारी कृपा से मैंने अबतक जो भलाई पाई, वही अनन्त है। अब और क्या प्राप्त करना है? यदि मुझे अब भी कुछ माँगना होगा, तो मैं यही माँगूँगा कि मैं अस्थिहीन कृमि-कीट आदि का जन्म भी क्यों न पाऊँ, किन्तु तुम पर मेरी भक्ति सदा अटल रहे।

यों वर माँगनेवाले प्रह्लाद को देखकर करुणामय भगवान् ने आनन्दित होकर कहा—यह मेरा उत्तम भक्त है। अति पुरातन पंचभूत भले ही मिट जायँ, फिर भी तुम नहीं मिटोगे। तुम सर्वकाल में मेरे समान ही स्थित रहोगे।

बिजली को पकड़कर खंभे में बाँध दिया गया हो—ऐसी अपार कांति से युक्त (हे प्रह्लाद)! तीनों लोक तुम्हारे अधीन हैं। मेरी भक्ति करने से जो फल मिलता है, वह फल तुम्हारा भजन करने पर भी मिलेगा।

हे वेदों के मर्मज्ञ! मेरे सब दास तुम्हारे दास होंगे। क्या तुम केवल असुरों के अधिप हो? नहीं, तुम देवताओं के भी प्रभु बन गये। ऐसी महिमा और किसी के लिए प्राप्त करना असंभव है।

हे अति उत्तम देहकांति से पूर्ण! उत्तम धर्म, सत्य, चारों वेद, उत्तम करुणा,

---

१. लक्ष्मी देवी निरन्तर नारायण के संग रहती हैं और शरणागत भक्तों का उद्धार करने के लिए जगत्पिता से सिफारिश करती रहती हैं। इसलिए, इस पद्य में लक्ष्मी को मोक्ष देनेवाली कहा है।—ले०

अपार तत्त्वज्ञान, अनन्त पदार्थ, आठ गुण[1]—सब तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेंगे। तुम मेरे समान ही विजयी रहो।

इस प्रकार वर देकर भगवान् ने देवताओं को आज्ञा दी कि सब लोकों के निवासियों के द्वारा नमस्कृत होनेवाले इस प्रह्लाद का राज्याभिषेक हो। द्वार पर भेरियाँ बजें। तुम सब लोग उसके आवश्यक कार्य प्रेम से करो।

देवता और उन देवों के प्रभु (देवेन्द्र) ने सब कार्य किये। ब्रह्मा ने अग्नि प्रज्वलित कर होम-कार्य संपन्न किया। सब लोकों के ईश्वर नरसिंह ने प्रह्लाद को राज्याभिषिक्त किया। यों वेदों को पढ़े विना ही उनके तत्त्व को समझनेवाला प्रह्लाद त्रिभुवन का शासन करता रहा।

अतः, हे प्रभु (रावण)! पूर्वकाल में ऐसी घटना हुई थी। यदि तुम मेरी बात को किंचित् भी माने विना उसकी उपेक्षा करोगे, तो हानि निश्चित है।—इस प्रकार, ज्ञानियों में श्रेष्ठ विभीषण ने (रावण से) कहा। (१—१७६)

●

अध्याय ४

विभीषण-शरणागति पटल

विभीषण के वचन सुनकर भी रावण उन वचनों के तत्त्व को नहीं समझ सका और अपने हित को नहीं समझा। किन्तु क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र लाख के रस से पूर्ण (अर्थात्, लाल) हो गये।

'हे मृत्यु को जीतनेवाली तपस्या से युक्त! (अर्थात्, चिरंजीवी!) हिरण्य हम-जैसों से भी अधिक बलवान् था, पर शरणागतों की रक्षा करनेवाले विष्णु ने उसे मार डाला।'—क्या यही सोचकर तुम उस विष्णु पर अनुरक्त हो गये हो।

अपने प्रतापी पिता (हिरण्य) का वक्ष उस मायावी विष्णु के द्वारा चीरे जाते हुए देखकर आनन्दित होनेवाला वह प्रह्लाद और हमारे विरोधियों से प्रेम रखनेवाले तुम दोनों ही परस्पर समान हो। क्या अन्य कोई तुम्हारी समता कर सकता है?

जिसे बलवान् हिरण्य के पुत्र ने किया था, वैसे ही क्या तुम भी यह सोच रहे हो कि यदि मैं उन राम-लक्ष्मणों से हार जाऊँ, तो तुम मेरा राज्य प्राप्त कर सुखी रहोगे? तुम्हारा यह विचार व्यर्थ है।

पहले से ही तुम उन राम-लक्ष्मण से प्रेम करने लगे हो। हमारे बड़े विरोधी उन नरों के जैसे ही तुम भी राक्षसों से विरोध कर रहे हो। उन (नरों) के लिए अपनी

---

१. अष्टगुण ये हैं—१. अपहतपाप्मत्व (पापरहित होना), २. विजयत्व (बुढ़ापा न होना), ३. विमृत्युत्व (मरणहीन होना), ४. विशोकत्व (दुःखरहित होना), ५. विजिघत्सत्व (भूख न होना), ६. अपिपासत्व (प्यास न होना) ७. सत्यकामत्व (सत्य की श्रद्धा) और ८. सत्य-संकल्पत्व (ऐसा संकल्प रखना, जो व्यर्थ न हो)।

हड्डियाँ गला रहे हो (अर्थात, अधिक प्रेम दिखा रहे हो)। आनन्द के अश्रु बहा रहे हो। स्तुति कर रहे हो। वे नर ही तुम्हारे सखा हैं, और कोई बात नहीं है।

मेरा विरोध करनेवाले उन नरों के साथ तुम प्रेम करने लगे हो। तुमने अपना कर्त्तव्य पृथक् सोच लिया है। मुझे हराने का उचित उपाय सोच लिया है। लंका का राज्य पाने की इच्छा करने लगे हो। तुम्हारा कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः, तुम से बढ़कर मेरा शत्रु और कौन हो सकता है?

उस दिन जब एक वानर आकर हमारे अशोकवन को उजाड़ने लगा, तब मैंने यह आज्ञा दी थी कि इस (वानर) को मारकर खा डालो। तब तुमने यह कहकर कि 'दूतों को मारना उचित कार्य नहीं है' उन्हें रोक दिया था। भविष्य में होनेवाले कार्य का विचार करके ही तुमने ऐसा किया था। उसके अनुकूल ही आज घनी पुष्पमालाओं से भूषित राम को तुम अपना मित्र बनाना चाहते हो।

(हमारे विरोधियों से) तुम भय खाते हो, अतः, तुम युद्ध करने के योग्य वीर नहीं हो। मनुष्यों को तुम शरण देनेवाले मानते हो। मन में वंचना से भरे हो। तुम अपने कुल के विपरीत हो गये हो। तुमको साथ रखकर जीने की अपेक्षा विष को अपने साथ रखकर जीना उत्तम हो सकता है।

यह सोचकर कि भाई को मारने का अपयश मुझे प्राप्त होगा, मैंने तुमको मारा नहीं, छोड़ दिया। जो कुछ तुम्हारे मुँह में आता है, उसी को बोलते जा रहे हो। अतः, तुम शीघ्र हमें छोड़कर यहाँ से चले जाओ। मेरी आँखों के सामने खड़े न रहो। विनाश पाने के लिए जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, उस रावण ने इस प्रकार कहा।

रावण ने यों कहने पर (उसका) अनुज विभीषण, अपने कर्त्तव्य का विचार करके अपने साथियों के साथ, गगनतल में उठ गया और वहाँ खड़े होकर पुनः रावण के प्रति अनेक नीति-वचन कहे।

हे जीवन की इच्छा रखनेवाले ! मेरी बात सुनो। तुमने चिरकाल तक सुखी रहकर जीवन बिताने का मार्ग नहीं सोचा। तुम नीच व्यक्तियों के दिये परामर्श के अनुसार चलकर अपना विनाश करने जा रहे हो। धर्म से भ्रष्ट होनेवाले लोग क्या सुखी जीवन पा सकते हैं?

क्या तुम राम के उग्र शरों के द्वारा अपने पुत्रों, बड़े लोगों, बन्धुओं, मित्रों, बल-हीनों, बलवानों और अन्य सब लोगों का जीवन समाप्त होते हुए देखने के पश्चात् तुम अपना जीवन समाप्त करना चाहते हो?

मैंने सब प्रकार से हितकारी और नीतिपूर्ण हित-वचन तुमसे कहे। किन्तु, तुम उनको न समझ सके। हे प्रभु ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।—यों कहकर उत्तम गुणों से पूर्ण विभीषण उस लंकानगर को छोड़कर चलने लगा।

मुखरित वीर-कंकणधारी और अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने में चतुर अनल, अनिज्ञ, हर और संपाति नामवाले सन्मार्गगामी चारों वीर विभीषण के संग चले।

विभीषण और उसके ये चारों मंत्रियों ने यह परामर्श किया कि वानरों की सेना के

साथ रामचन्द्र और लक्ष्मण, प्रभूत जल से पूर्ण समुद्र के किनारे आकर ठहरे हैं। हम शीघ्र वहाँ जायेंगे—और (राम के स्थान की ओर) चल पड़े।

विभीषण आगे का कर्त्तव्य सोचकर, समुद्र को पार करके गया और वहाँ उसने विशाल वानर-सेना को देखा, जो ऐसी थी, मानों प्रकाश में चमकनेवाले क्षीरसमुद्र में असंख्य पुष्प विकसित हुए हों।

कलंकरहित मनवाले विभीषण ने मांसयुक्त एवं उज्ज्वल (शूल आदि) शस्त्र धारण करनेवाले अपने मंत्रियों से कहा—यदि मांसमय शरीरवाले प्राणियों को एक ओर और वानरों को दूसरी ओर खड़ा करें, तो वानरों का समूह ही बड़ा होगा।

मैं राम के प्रति भक्ति-भाव रखता हूँ, जिन्होंने धर्म की रक्षा का प्रण लिया है। मैं यश देनेवाले धर्ममार्ग से जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। भूलकर भी पापमय जीवन व्यतीत करना नहीं चाहता। मेरे भाई (रावण) ने यह कहा कि तुम अपने भाई की बात नहीं मानते हो और मुझे अपने राज्य से निष्कासित कर दिया है। इस दशा में मेरा कर्त्तव्य क्या है, बताओ।

तब शास्त्रज्ञान से युक्त मंत्रियों ने उचित-अनुचित का विचार करके कहा—रामचन्द्र धर्मस्वरूप हैं। अपनी शरण आनेवालों के अभीष्ट को पूर्ण करनेवाले हैं, उनके दर्शन करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

तब विभीषण ने कहा—तुम लोगों ने हितकारी वचन कहे। इस समय यदि हम तुम्हारा परामर्श न मानकर अन्य कोई कार्य करेंगे, तो हम भी राक्षस-जाति के जैसे कार्य करनेवाले ही होंगे। आज हम अपार सद्गुणों से पूर्ण रामचन्द्र के दोनों पादों का आलिंगन करेंगे।

इसके पूर्व हमने कभी उन (राम) के दर्शन नहीं किये हैं। उनके बारे में अधिक कुछ सुना भी नहीं है। फिर भी, मेरे मन में उनके प्रति यह जो भक्ति-भावना उत्पन्न हुई है, उसका कारण मैं नहीं जान पाया हूँ। उनके स्मरण करने मात्र से मेरी हड्डियाँ भी शीतल हो जाती हैं। मन पिघल जाता है। मुझे ऐसा लगता है कि वे क्षुद्र ज्ञान से युक्त इस जन्म के विरोधी हैं (अर्थात्, जन्म-बंधन से मुक्ति देनेवाले भगवान् हैं)।

मैंने पूर्वकाल में जब ब्रह्मा के प्रति तपस्या की थी, तब ब्रह्मदेव से यह वर प्राप्त किया था कि सृष्टि के आदिकारणभूत परमात्मा के प्रति भक्ति, धर्म-मार्ग पर दृढता, नीति से कभी विचलित न होने की शक्ति, सब प्राणियों के प्रति प्रेम तथा ब्राह्मणों की करुणा—ये सब मुझे प्राप्त हों।

उस वर के सफल होने के लिए उपयुक्त समय अब आया है। तुम मंत्रियों ने विचार कर जो कहा है, वह ठीक ही है। सब के पुरातन प्रभु नारायण के कमल-समान चरणों के समीप जाकर हम अपने मन की इच्छा पूर्ण करेंगे।—यों कहकर विभीषण (चिन्ता से मुक्त हो) प्रसन्न रहा।

कर्त्तव्य को ठीक-ठीक जाननेवाले विभीषण एवं उसके मंत्रियों ने यह सोचकर कि रात्रि में राम के समीप जाना उचित नहीं होगा, एक भयंकर घने अरण्य में छिप गये।

उसके पश्चात् (रात्रि के व्यतीत होने पर) एक चक्रवाले रथ पर आरूढ हो सूर्य उदयाचल पर प्रकट हुआ।

उधर रामचन्द्र, तरंगों से भरे समुद्र को पार करने का उपाय सोचते हुए एवं नीलोत्पल के समान नयनोंवाली सीता के प्रवाल-सदृश लाल अधर का स्मरण करके शिथिल-चित्त होते हुए समुद्र के विशाल तट पर आ पहुँचे।

रामचन्द्र समुद्र-तट के उद्यानों, लवण उत्पन्न करनेवाले जलाशयों, केतकी-वृक्षों, नीलोत्पलों, 'पुन्नै' (नामक) वृक्षों, गगनतल में दीख पड़नेवाले हंस-हंसिनियों की पंक्तियों तथा प्रेमभाव के उद्दीपक पुष्पमय उपवनों का संदर्शन करते हुए आगे बढ़े।

वहाँ राम ने मोती, प्रवाल, समुद्र की तरंगों के द्वारा बहाकर लाये गये रत्नों की राशियाँ, स्वर्ण-समान मनोहर तटों, भय उत्पन्न करनेवाले घने उपवनों, सैकतश्रेणियों तथा तट से टकरानेवाली वीचियों को देखा।

राम ने 'पुन्नै' (नामक) वृक्षों से पूर्ण उन उद्यानों को देखा, जहाँ (अपने प्रियतमों के साथ रहने के समय) मधुर हास करनेवाली मछुआ-युवतियाँ अब शिथिलचित्त होकर वालुकामय भूमि पर, बिजली जैसे चमकनेवाले आभरणों से युक्त अपनी उँगलियों से रेखाएँ खींचती थीं, जिन (रेखाओं) को उनके अश्रुजल मिटा देते थे।[1]

राम ने देखा—शरत्काल की श्वेत तरंगों के द्वारा उछाले गये जल के छींटों से आहत होकर केतकी के श्वेत रंगवाले झुके हुए पत्ते जलबिंदु गिराते रहते हैं। उन केतकी-वृक्षों पर हंस-हंसिनियाँ अपने पंखों की ओट किये हुए सुखनिद्रा करती रहती हैं। यह दृश्य देखकर (रामचन्द्र ने) निःश्वास भरा।

मीठे स्वरवाली सारसी, सुस्वादु मीन को लाने के लिए उड़कर गये हुए सारस के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, वृक्ष पर बैठी है।—यह देखकर रामचन्द्र दयार्द्र हो उठे।

एक स्थान पर अकेली सारसी पर मुग्ध होकर दो बलवान् सारस अत्यंत क्रोध के साथ लड़ रहे हैं और पीछे नहीं हट रहे हैं। उनके निर्भीक नयनों से चिनगारियाँ निकल रही हैं।—वह दृश्य देखकर राम ने अपनी भौंहें सिकोड़ लीं।

प्रणय-कलह में हारी हुई एक हंसिनी समागम के समय हंस को परास्त कर रही है।—यह दृश्य देखकर राम ने प्रवाल-समान अपने अधर को, उस (अधर) से आवृत रहनेवाले मुक्ता-समान दंतों से दबाया। (अर्थात् , मन की पीडा को मन में ही दबा लिया।)

जब राम ऐसी पीडा का अनुभव कर रहे थे, तब सुग्रीव, हनुमान् आदि विज्ञ साथी वहाँ आये और उन्हें सांत्वना देकर वहाँ से ले चले। रामचन्द्र वहाँ से इस प्रकार चले, जैसे कोई उन्मत्त व्यक्ति ज्ञान पाकर उन्माद से मुक्त हो चलता है।

---

१. अपने प्रियतमों के, मछली मारने के लिए समुद्र में दूर चले जाने पर उनके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई मछुआ-स्त्रियाँ घर पर रहती हैं। प्रियतम सकुशल लौटेंगे कि नहीं—यह जानने के लिए वे स्त्रियाँ आँखें बन्द करके उँगली से धरती पर रेखा खींचती हैं। यदि रेखा के दोनों सिरे मिल जायँ, तो शुभ शकुन मानती हैं और न मिले, तो अशुभ समझती हैं। किन्तु, यहाँ ये स्त्रियाँ शकुन का निर्णय भी नहीं कर पातीं; क्योंकि उनके अश्रुजल उन रेखाओं को मिटा देते हैं।—ले०

रामचन्द्र अपने निवास में पहुँचकर, जानने योग्य सब विषयों के ज्ञाता अपने मित्रों के साथ आसीन हुए। ऐसे समय में (युद्ध) नीति के अनुसार आचरण करनेवाली वानर-सेना के निकट, शब्दायमान वीर-वलयधारी विभीषण निःशंक मन से आ पहुँचा।

उस समय (विभीषण की) ऐसी पुकार (राम के) कानों में पड़ी कि 'अपने समान अन्य उपमान न रखनेवाले हे विजयी वीर! शरण! शरण!' उन्होंने (उसका कारण जानने की इच्छा से) अपने साथियों के मुख की ओर देखा।

उन्होंने पूछा—यह पुकार कि 'हे पिता! हे राघव! शरण (दो)!' किसकी है? बताओ। तब भीषण वानर-सेनापतियों ने जो मंत्रणा की, उसका वर्णन हम करेंगे।

तब वानर-सेना में हलचल मच गई। 'भीषण धनुष्टंकार से युक्त राक्षस हमारी सेना में आ पहुँचे हैं; उन्हें मारो! पकड़ो! जला दो!' यों वज्रघोष में चिल्लाते हुए वानरों ने (विभीषण आदि को) घेर लिया।

'धर्म-देवता ने स्वयं इसको यहाँ ला दिया है। यहाँ आनेवाला व्यक्ति लंका का राजा ही है, जो अति क्रूर पापकर्म करनेवाला है। अब हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया।' वानर यों कहते हुए उनको (विभीषण आदि को) घेरने लगे।

वे कहते—'उस अभागे राक्षस के जो बीस भुजाएँ तथा दस सिर थे, क्या वे गिर गये? क्या वह हमसे युद्ध कर सकता था?' यों कहते हुए वानर-सैनिक एक के आगे एक बढ़कर उनको घेरने लगे।

वे कहते—इनको पकड़कर बंदी बनायेंगे। फिर, महाराज (रामचन्द्र) के पास जाकर समाचार सुनायेंगे। कुछ यह कहते हुए कि 'इसे मारे विना देखते हुए चुपचाप क्यों खड़े हो?'—उनके निकट जाते।

वे वानर कहते—'पलक मारने के पहले ही ये गगन में उड़ जायेंगे। ये राक्षस हैं न? तब क्या कर सकोगे? अतः, इनको अभी मारने के अतिरिक्त और क्या कर्त्तव्य हो सकता है?

जब वे वानर-वीर यों कह रहे थे, तब 'ऐंद्र'[1] के विद्वान् की आज्ञा से 'मैंद' और 'तुमिंद' नामक दो नीतिज्ञ वीर वहाँ आये।

उन्होंने वानरों को हटाया और देखा कि वे (विभीषण आदि) धर्म और नीति के ज्ञाता जान पड़ते हैं। छल का चिह्न भी उनमें नहीं है। उनमें धार्मिक लक्षण ही प्रकट हो रहे हैं।

तब उन्होंने (विभीषण आदि से) पूछा—तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये हो? क्या (हमसे) युद्ध करने की इच्छा है? या और कोई विचार है? जो यथार्थ बात है, उसे निर्भय होकर स्पष्ट कहो।

तब अनल (नामक विभीषण के साथी) ने कहा—सूर्यवंश में उत्पन्न प्रसिद्ध चक्रवर्ती (राम) के चरणों को प्राप्त कर उद्धार पाने के लिए यह (विभीषण) आया है।

---

१. ऐन्द्र व्याकरण संस्कृत का सबसे पुराना व्याकरण माना जाता है। हनुमान् इस व्याकरण के महापंडित माने जाते थे।—ले०

यह पवित्र विचारवाला है। धर्म और नीति पर चलनेवाला है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पोते का बेटा है। सत्यसंध है।

इसने कमलभव (ब्रह्मा) की दीर्घ तपस्या की है और धार्मिक है। आदिमूर्त्ति (विष्णु के अवतार राम) पर अपार भक्ति रखनेवाला है ; सत्यपरायण है ; वेदज्ञों का आदर करनेवाला है।

इसने (रावण को) परामर्श दिया कि तुम दुर्मति बनकर अग्नि को कपड़े में बाँधने चले हो। भगवान् की देवी को तुमने बन्दी बनाया। यदि उन देवी को बंधन से मुक्त कर दोगे, तो तर जाओगे, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।

किंतु, पापपूर्ण हृदयवाला वह (रावण) बुद्धिभ्रष्ट हो गया है। अतः, उसने इस (विभीषण) से कहा कि तू मेरा भाई बनकर जनमा है, इसीलिए तू बच गया। यदि अब यहाँ खड़ा रहा, तो मृत्यु को प्राप्त होगा। चला जा यहाँ से। इसलिए, यह सब कुछ त्याग कर (राम की शरण में) आया है—यों अनल ने विस्तार से समझाया।

इसे सुनकर मैंने कहा—मैं तुम्हारी बात प्रभु को सुनाऊँगा। फिर, वानरों से यह कहकर कि सजग होकर इनकी रक्षा करते रहो, वहाँ से चला गया।

धर्म, ज्ञान और तपस्या के प्राचीरों तथा दोषहीन क्षमा और गौरव-रूपी द्वारों से युक्त एवं करुणा-रूपी मंदिर में विष्णु के समान स्थित प्रभु (राम) के निकट, आदरपूर्वक जाकर उनके चरणों को नमस्कार किया।

उस (मैंद) ने निवेदन किया—हे प्रभु ! एक निवेदन है। तब कमल की शोभा को भी मंद करनेवाली शोभा से युक्त प्रभु ने जटाओं से शोभित सिर को हिलाकर कहा—हे सत्यव्रत ! तुमने जो देखा और सुना है, उसे कहो।

न जाने क्या घटना हुई है कि उस छली लंकेश का भाई कमल के समान करोंवाला विभीषण अपने चार साथियों के साथ हमारी सेना में आया है।

वानर-सेना यह कहती हुई कि 'इनको पकड़ो ! मारो !' उनको घेरने लगी। तब हमने उनको रोककर उन आगंतुकों से पूछा कि तुम कौन हो ? क्यों आये हो ?

उसने कहा कि 'प्रतिकूल (फल देनेवाले) पापों को मिटानेवाले आदि भगवान् (राम) के चरणों की शरण में जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।'—यही सोचकर कृपा के समुद्र (राम) की शरण में आया हूँ।'

यह भी कहा कि उसने ब्रह्मा से धर्म में आसक्ति एवं आदिमूर्त्ति विष्णु के प्रति अपार भक्ति का वर प्राप्त किया है तथा पवित्र आचरणवाला है।

यह भी कहा कि—उसने अपने अग्रज (रावण) को यह परामर्श दिया कि यदि तुम पतिव्रता (सीता) को बंदी ही बनाकर रखोगे, तो लंकानगर (राक्षसों की) अस्थियों के पर्वतों से भर जायगा और तुम्हारे मुकुट-भूषित सिर विनष्ट हो जायेंगे।

तब रावण के यह कहने पर कि 'तू मरने योग्य है। यदि मेरे सम्मुख क्षणकाल भी खड़ा रहेगा, तो तुम्हारा नाश होगा। तू यहाँ से भाग जा।' यह विभीषण यहाँ आया है—यों उसने कहा।

उस समय राम ने अपने पास बैठे हुए मित्रों से पूछा—तुमलोगों ने सारा वृत्तांत सुना। बताओ कि यह शरण देने योग्य है या त्यागने योग्य। नीति का विचार करके अपना परामर्श दो।

तब देश-काल के औचित्य को जाननेवाले, नीतिज्ञ, उज्ज्वल किरीट-भूषित सुग्रीव ने अपने करों को जोड़कर विशाल नयनोंवाले प्रभु से कहा—

हे ब्रह्मा से भी परे स्थित देव! प्रभूत वेदों तथा मनुधर्म आदि प्रसिद्ध शास्त्रों के पारंगत आप हम जैसे व्यक्तियों से परामर्श माँगते हैं, क्या हमारे मनोभाव को जाँचना चाहते हैं?

फिर भी, मैं निवेदन करता हूँ। हे करुणासागर! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अपने विचार प्रकट करता हूँ। आप उन विचारों को उचित समझें अथवा अनुचित, परिणाम को समझकर आप अपना निर्णय करें।

यह (विभीषण) यदि अपने भाई का त्याग कर यहाँ आया है, तो इसका कारण (अपने भाई के साथ) उत्पन्न कोई युद्ध नहीं है। अन्य कोई निन्दनीय कार्य नहीं है। या अपने प्राणों का भय उत्पन्न होना भी नहीं। अतः, इसका अपने भाई को छोड़कर आना यहाँ धर्म या नीति के अनुकूल नहीं है। इन पापी राक्षसों में क्या कोई सज्जन हो सकता है।

शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर अपनी सेना को, अपने माता-पिता को, आदरणीय गुरुजनों को, अपने राजा को, इस प्रकार त्याग देना निन्दनीय है, प्रशंसनीय कार्य नहीं है।

जब भयंकर युद्ध हो रहा हो, तब आवश्यक परामर्श न देकर, स्वयं युद्ध में जाकर, निहत हुए बिना जो यों हमारे पास भागकर आया है, वह उत्तम कार्यों से पूर्ण इस संसार में आदरणीय नहीं हो सकता।

यदि उसकी बुद्धि धर्म का अनुसरण करना चाहती है, तो धर्महीन राक्षसों का स्थान त्यागकर कहीं जाकर मरना ही उसके लिए उचित था। किन्तु, शत्रुपक्ष में से जा मिलना क्या उसके उचित है? क्या इससे उसका अपयश नहीं होगा?

अपने भाई के सुखमय जीवन में साथी बना रहा। जब युद्ध उपस्थित हुआ, तब शत्रुपक्ष में आकर मिल गया। यह व्यक्ति किसका साथी बनकर रहेगा? हे कृपामय चक्रधारी! विचार करें।

जो राक्षस (मारीच) पहले स्वर्णहिरण बना था, वह अपने भतीजे (रावण) का पापकर्म करने की प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी तपस्या एवं तत्त्वज्ञान को छोड़कर पाप करने लगा था। उसे देखकर भी क्या अब हम इस (विभीषण) को आश्रय देंगे? (अर्थात, यद्यपि अभी धर्म की ओर इसकी प्रवृत्ति हुई है, तो भी समय आने पर पुनः पाप में निरत होगा)।

चाहे यम ही सारे संसार को साथ लेकर हमसे लड़ने के लिए आये, तो भी हम उसका सामना करने को तैयार हैं। हमारे शत्रु का भाई आकर हम लोगों से मिल जाय और हमारा साथी बने, यह कैसी बात है?

हम राक्षस का समूल नाश करके सद्धर्म की स्थापना करने के उद्देश्य से आये हैं।—ऐसे गौरव से युक्त होकर हम यदि कृपा-हीन राक्षस को ही अपना साथी बनायें, तो क्या लोग यह नहीं समझेंगे कि हमारा पराक्रम कुंठित हो गया है।

बंधुजन एक दूसरे से पृथक् होकर भी एक जैसे रहते हैं। अपने मित्र के सुख को देखकर भी एक जैसे रहते हैं। अपने मित्र को संपत्ति खोकर दरिद्र बनते देखकर भी एक जैसे रहते हैं और जब वह संपन्न बनकर सबको भोज देता हुआ सुखी रहता है, तब भी वे एक जैसे रहते हैं (अर्थात्, बंधु सदा सभी अवस्थाओं में अपने मित्र का साथ देते हैं।)

यह छल करने के लिए ही आया है, हमारी शरण की कामना से नहीं। हे अंजनवर्ण ! क्या इस विष के समान व्यक्ति को आप अपनायेंगे ? यों सुग्रीव ने कहा।

उसके पश्चात्, शास्त्रों के ज्ञान में अपना उपमान नहीं रखनेवाले जांबवान् को देखकर राम ने पूछा—तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? भाषण की रीति को जाननेवाले (जांबवान्) ने कहा—

चाहे कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, यदि वह अपने शत्रुओं से मिलकर कार्य करेगा, तो अवश्य उसकी हानि होगी। यदि नीति का विचार किया जाय, तो क्या संसार यह विश्वास कर सकता है कि राक्षसों में सद्गुण हो सकता है ?

जो विजय प्राप्त करना चाहते हैं, अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं, अपनी कमी को पूरा करने चाहते हैं, वैसे लोग क्या अपने शत्रु के साथ, अधम स्वभाववाले लोगों के साथ मिल सकेंगे ? क्या यह उचित होगा ?

जिन (राक्षसों) ने वेदों और यज्ञों को नष्ट किया, वेदज्ञों को हानि पहुँचाई, देवताओं को कष्ट दिये, ऐसे पापी राक्षस हमारे पास आकर हमारा अहित न करके क्या मित्रता करेंगे ?

यदि ऐसे लोगों को शरण दें, यदि छल और असत्य को आश्रय दें या उसकी रक्षा के लिए हम अपने प्राण भी त्याग दें, तो भी हमें अपयश ही मिलेगा।

अब भावी हित या अनहित के बारे में क्या कहा जाय ? इस (विभीषण) का आगमन भी, इसके पहले वनवास के समय में हिरण के वेष में आये हुए राक्षस के आगमन के जैसा ही (अहितकर) है।—यों जांबवान् ने कहा।

विविध शाखाओं में विभक्त शास्त्रों से उत्पन्न ज्ञान से संपन्न प्रभु (राम) ने नील को देखकर पूछा—क्या तुम्हारा अभिप्राय है ? कहो। तब नील कहने लगा—

शत्रु को अपना साथी बना लेना ठीक नहीं है। हे शास्त्रों के ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। एक वानर का वचन उपहास के योग्य ही है। फिर भी, कृपा कर सुनिए।

जो भीषण युद्ध में अपने कुल के लोगों को ही मारते हैं, जो अत्यंत दीन बनकर शरण में आते हैं, जो स्त्री के निमित्त (अपने पक्ष के किसी व्यक्ति से ही) वैर रखते हैं। जो दूसरों के द्वारा अपनी प्रभूत संपत्ति के हर लिये जाने पर दरिद्र हो गये हैं—

जो अभिमानी स्वभाववाले हैं, जो युद्ध में पीठ दिखाकर भाग जानेवाले हैं, जो संपत्ति का वारिस बने हुए अपने कुल के लोगों को मरवा देते हैं,

जो दूसरे राज्य के राजा की आज्ञा से पीडित हैं, जो शत्रु के साथ मिले हुए हैं— वैसे लोग, एक ही माता के पुत्र होने पर भी (अर्थात्, शत्रु के सगे भाई होने पर भी) हमारी शरण में आने पर आश्रय देने योग्य हैं।

किन्तु, अब जो व्यक्ति हमारी शरण में आया है, वह अपने शत्रु से पीडित नहीं हुआ है। हमारी सहायता करनेवाला नहीं है। अतः, समय पड़ने पर वह हमें छोड़कर चले जाने का विचार करेगा। उसे हम क्यों आश्रय दें?

इस समय के महत्त्व का विचार करें, या नीति-ग्रन्थों का विचार करें।—क्या इस समय (अपने भाई पर) क्रुद्ध होकर आये हुए (विभीषण) के चरित्र को पहचानना संभव है?—यों नील ने कहा।

सत्य ज्ञान रखनेवाले, तथा प्रेम से पूर्ण अन्य मंत्रियों ने भी एक ही निर्णय सुनाया कि उस (विभीषण) को आश्रय देना उचित नहीं है।

जब सब लोग अपना-अपना मत प्रकट कर चुके, तब ज्ञान से परे रहनेवाले प्रभु ने अनुपम ज्ञानवान् तथा नीतिज्ञ मारुति से प्रश्न किया कि तुम्हारा अभिप्राय क्या है, बताओ।

मित्र भले ही अज्ञ हों, फिर भी उनके विचारों पर ध्यान देना उचित होता है।—यों कहकर सूक्ष्म ज्ञान से पूर्ण वह मारुति सिर झुकाये, मुँह को हाथ से ढके हुए, आगे बोला—

परामर्श देने योग्य जितने लोग हैं, उन सब उत्तम व्यक्तियों ने एक ही निर्णय दिया है कि इस (विभीषण) को स्वीकार नहीं करना चाहिए। हे विज्ञ प्रभु! अब और (अर्थात्, उस निर्णय के विरुद्ध कुछ) क्या कहा जाय?

हे चक्रधारी! विद्वानों के विचार का खंडन नहीं करना चाहिए, तो भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। इस (विभीषण) को मैं पापी नहीं समझता। इसपर मुझे कुछ आशंका नहीं है। मैं कुछ विषय निवेदन करना चाहता हूँ।

हे भ्रमरों से शब्दायमान पुष्पमाला धारण करनेवाले! छली लोगों के उज्ज्वल मुख को देखने से ही उनके मन का कपट व्यक्त हो जाता है। (मन में) कपट होने पर उसे छिपाना असंभव है। जो भिन्न हैं, वे क्या एक होकर, मिलकर, पुनः पृथक् होते हैं? (अर्थात्, जिनके मन भिन्न हैं, वे कभी मिल ही नहीं सकते।)

जैसे अंधकार गर्त्त में भरा रहता है, खुले स्थान में (जहाँ प्रकाश फैला रहता है) वह फैल नहीं पाता, वैसे ही कपट की भावना लोगों के हृदय के भीतर भरी रहती है। किन्तु, उसके मुख से वह व्यक्त हो जाती है।

यह (विभीषण) वाली को स्वर्ग एवं उसके अनुज (सुग्रीव) को राज्य देनेवाली आपकी विजय को तथा आपके सौजन्य को जानकर ही आपकी शरण में, (लंका का) राज्य पाने की इच्छा से, आ पहुँचा है।

यह जानता है कि वीर-वलयधारी राक्षसों का शासन उत्तम धर्म के अनुसार नहीं है, अतः शीघ्र मिट जानेवाला है। तरंगायित समुद्र से आवृत पृथ्वी का राज्य भाई को दिलानेवाली आपकी करुणा को तथा सत्यपरायणता को जानकर ही वह यहाँ आया है।

यदि यह कहा जाय कि इसके यहाँ आने का यह उचित समय नहीं है, तो (मैं यह कहूँगा कि) शत्रु वाली के नाश से आपका पराक्रम प्रमाणित हो गया है। इसलिए, यह विश्वास करके कि उस (लंकाधिपति) की भी मृत्यु निश्चित है, वह अपने साथियों को त्यागकर यहाँ आया है।

पापी राक्षस बड़े मायावी होते हैं। उन मायाओं को जाननेवाला एक व्यक्ति अब हमारे पास आ गया है। इससे योग्य फल की प्राप्ति हमारे लिए सुलभ हो जायगी।

इसके मन में कुछ भी कपट नहीं दिखाई देता। यह समझना ठीक नहीं है कि यह हमारा अहित करेगा। इस दीन बनकर आये हुए व्यक्ति को बलवान् शत्रु समझना क्या उचित है?

जब रावण ने आज्ञा दी कि इसे मार डालो। तब इस (विभीषण) ने ही यह कहकर कि दूतों को मारना अधम कार्य है, उससे अपयश ही होगा। फिर, हम युद्ध में विजय नहीं पा सकेंगे—(उन राक्षसों को मुझे मारने से) रोका।

स्त्रियों को मारना, अधर्म से रहित अंधों को मारना, विनाशकारी होने पर भी दूतों को मारना, उचित नहीं है। इस प्रकार की उत्तम युक्तियाँ इस (विभीषण) ने दी थी।

हे चक्रधारी! जब मैं (लंका में) एक रात को इसके स्वर्णमय प्रासाद में गया था, तब वहाँ शुभ लक्षण ही दिखाई दिये थे।

वहाँ मैंने मद्यपान, अनैतिक मांसाहार आदि निन्दनीय कार्य नहीं देखे। वहाँ धर्ममय दान, उपासना, नैतिक कार्य आदि इस प्रकार हो रहे थे, जैसे वह किसी ब्राह्मण का घर हो।

इस (विभीषण) की पुत्री (त्रिजटा) ने मेरी पूजनीया माता (सीता) से कहा था कि ब्रह्मा का दिया हुआ एक शाप है कि यदि दुर्मति रावण तुम्हारा स्पर्श करेगा, तो वह यमपुर को पहुँच जायगा।

(रावणादि) राक्षसों के द्वारा प्राप्त किये महान् वर, उनके जन्मसिद्ध छल—सब आपके धनुष से निकले एक शर से जलकर भस्म हो जायेंगे।—यह जानकर ही यह राक्षस (विभीषण) यहाँ आया है। इसके ज्ञान को, इसके द्वारा प्राप्त वर को तथा अपनी करुणा का विचार करें, तो क्या इस राक्षस (विभीषण) से बढ़कर तपस्वी अन्य कोई हो सकता है?

आप देवों, दानवों, दिक्पालों एवं त्रिमूर्त्तियों के लिए भी असंभव कार्य को पूर्ण करने का निश्चय कर चुके हैं। आपत्ति में पड़ा हुआ एक व्यक्ति आपसे अभयदान की प्रार्थना कर रहा है। यदि उसे आप छोड़ देंगे, तो क्या वह कार्य ऐसा ही नहीं होगा, जैसे समुद्र एक कुएँ को देखकर डर जाय।

यदि यह सोचकर कि शत्रुपक्ष के लोग मित्रता के योग्य नहीं हैं, हम इस (विभीषण) को आश्रय न दें, तो हम उपहास के योग्य बनेंगे। स्वभावतः, एक दूसरे से प्रेम रखनेवाले पिता, भाई आदि निकट संबंधी भी किसी वस्तु के लोभ में पड़कर परस्पर ऐसे वैरी बन जाते हैं कि एक दूसरे को मारने पर तुल जाते हैं, यही संसार की रीति है न?

अतः, इसके आगमन को मैं श्रेयोदायक ही मानता हूँ। वेद के समान (गंभीर) आपके हृदय को मैं नहीं जानता।—यों उस मारुति ने कहा, जो चतुर्मुख ब्रह्मा के लिए भी गुनने को कठिन सकल शास्त्रों के ज्ञान को सूर्य से प्राप्त किया था तथा समुद्र को पार करके जगत् का उद्धार किया था।

हनुमान् के इन वचनों को सुनकर महान् ज्ञानी प्रभु संतुष्ट हुए, जैसे उन्होंने अमृत का पान किया हो, और बोले—'ठीक है! ठीक है!' फिर, सबको देखकर कहा—ठीक-ठीक विचार करके देखो, यह सलाह बिलकुल उचित जान पड़ती है। आगे वे बोले—

यह (विभीषण) विचार करके उचित समय पर ही यहाँ आया है। यह (लंका के) राज्य की कामना से यहाँ आया हो, फिर भी इसका ज्ञान सीमारहित है। हमारी शरण में इसका आगमन यही सूचित करता है कि यह तपस्या-संपन्न और दोष-रहित है, जो अब विपद्-ग्रस्त हुआ है।

अब और कुछ कहना आवश्यक नहीं। हनुमान् का निष्कर्ष ठीक ही है। हम चाहे विजय पायें या पराजय, फिर भी जो 'अभयदान दो' कहता हुआ हमारी शरण में आया है, उसे हम अवश्य स्वीकार करेंगे।

यह आज ही हमारी शरण माँगने आया है—यह कोई महत्त्व की बात नहीं। यदि मेरे पितृतुल्य जटायु को मारनेवाला (रावण) ही शरण माँगे, तो मैं उसे भी शरण दूँगा। हमारे आश्रय में आनेवाले हमारे दीर्घकालिक मित्र के समान ही प्यारे होते हैं। यदि पीछे वह हमें छोड़कर चला जाय, तो भी उससे हमारा यश ही होगा, अपयश नहीं।

हम जन्म से ही उस 'शिवि' चक्रवर्त्ती का यश गाते आ रहे हैं, जो (एक कपोत को व्याध से बचाने के लिए स्वयं तराजू में बैठा या और उसकी तौल के बराबर अपना मांस देने लगा था। आज यदि मैं आश्रय न देकर इसको त्याग दूँ, तो इससे वह दिन ही मेरे लिए श्रेष्ठ होगा, जब मैं इस (आश्रित राक्षस) के द्वारा मारा जाऊँगा।

क्या तुम यह नहीं जानते कि संकट-ग्रस्त (देवों) के अभय माँगने पर किस प्रकार समुद्र से निकले हुए हलाहल को शिवजी ने पी लिया था। यदि कोई विपदा में पड़े हुए व्यक्ति की सहायता न करे, अपने पास की कोई वस्तु दूसरों को नहीं दे तथा शरणागत पर कृपा न करे, तो उसका धर्म कहाँ रहा और उसका पौरुष कहाँ रहा?

एक व्याध एक कपोती को पकड़कर, उसके नर-कपोत को भी पकड़ने के विचार से वृक्ष के नीचे बैठा था, तब उस कपोत ने उसकी भूख मिटाने के लिए अपना शरीर ही दे दिया था और मुक्ति प्राप्त की थी, यह वचन वेद के समान आदरणीय है न?

जब मगर से युद्ध करते समय निर्बल होकर एक गज ने भगवान् को पुकारा था और यह कहा था कि 'शरण दो', तब वेदों के लिए अगम्य परमपुरुष ने प्रकट होकर

उसके महान् दुःख को दूर किया था। क्या ज्ञानीजन कभी इस बात को भूल सकते हैं?

जो भगवान् समस्त जगत् की सृष्टि और उसकी रक्षा करता है, जो भगवान् स्वयं नानारूपात्मक जगत् तथा धर्म बनकर रहता है, वही शरणागत को शरण देकर (चाहे वह कितना बड़ा पापी क्यों न हो), मोक्ष प्रदान करता है। तो, अब और क्या प्रमाण चाहिए? (भाव यह है कि चाहे कोई कितना भी पापी क्यों न हो, यदि वह भगवान् की शरण में आकर अभय माँगता है, तो वे उसके पापों का विचार किये बिना उसकी रक्षा करते हैं। यही धर्म है।)

विष को कंठ में धारण करनेवाले (शिवजी) ने पूर्व (मार्कण्डेय के) पिता की प्रार्थना से उसे पुत्र होने का वर दिया था। किन्तु, जब सोलह वर्ष की आयु में ही उस पुत्र को मृत्यु प्राप्त हुई, तब उसने शिवजी से अभयदान माँगा। तब उन देव ने पदाघात के द्वारा क्रोधी यम को हटा दिया था। शरणागत की ऐसी रक्षा से बढ़कर और क्या हो सकता है?

जब (पंचवटी में) जानकी यह कहकर रोई थी कि 'मुझे शरण देकर मेरी रक्षा करनेवाला कौन है?' तब जटायु ने, यह कहकर कि डरो मत, मैं हूँ, उस क्रूर राक्षस (रावण) से भयंकर युद्ध करके अपने प्राण दिये थे। मेरे लिए भी वैसा ही आचरण योग्य है न?

'तुम्हारी शरण में हूँ', यों कहनेवाले के प्राणों की जो अपने प्राणों के समान ही रक्षा नहीं करता, जो दूसरों के उपकार को भूल जाता है, जो वेदों के द्वारा विहित सत्य-मार्ग को असत्य कहता है—वे सब ऐसे नरक में जायेंगे, जिससे उद्धार पाना कठिन है।

मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि देवताओं का अहित करनेवाले राक्षसों का वध करूँगा।[1] यह प्रतिज्ञा मैंने सीता के निमित्त नहीं की थी। किन्तु, जब मुनियों ने मुझसे अभय माँगा था, तब मैंने उनको वैसा वचन दिया था। क्या मैं उस वचन को लाँघ सकता हूँ?

चाहे हित हो या अहित, दयालु लोगों के लिए इससे (अर्थात्, शरणागत की रक्षा से) बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है, चाहे शरणार्थी नीच ही क्यों न हों, उनकी रक्षा के लिए अपने प्यारे प्राणों को देना ही क्षत्रिय का कर्त्तव्य होता है।

अतः, 'अभय दो' यह सुनने मात्र से अभय प्रदान करना ही उत्तम धर्म है। तुम लोगों ने मेरे प्रति अपने अगाध प्रेम के कारण ही वैसा विचार प्रकट किया था (कि राक्षस को शरण देना ठीक नहीं।) अब अन्य कुछ सोचना आवश्यक नहीं। हे सूर्य-पुत्र (सुग्रीव)! तुम स्वयं जाकर उस दोषरहित (विभीषण) को ले आओ—यों राम ने कहा।

सुग्रीव का सारा संदेह मिट गया। क्योंकि, देवाधिदेव (राम) के अभिप्राय से पृथक् उसका अभिप्राय कुछ नहीं था। अतः, सुग्रीव यह कहकर कि 'मैं शीघ्र उस

---

१. अरण्यकाण्ड में राम तथा मुनि के संवाद में इसका विवरण है।

(विभीषण) को ले आऊँगा,' उस सत्य के आश्रयभूत (विभीषण) के निकट चल पड़ा।

इधर मैंद के भाई (दुमिंद) ने कपिराज को आते देखकर अपने अग्रज से कहा—हे भाई, पर्वताकार कंधोंवाले सूर्यपुत्र आ रहे हैं। तब दुविधाग्रस्त चित्तवाला (विभीषण) प्रसन्नचित्त होकर सामने आया।

दीर्घकाल से सहवास करते रहने पर भी कपटी लोग पवित्र मित्रता नहीं कर सकते। किन्तु, जो पवित्र चित्तवाले होते हैं, वे (प्रथम) दर्शन में ही सुहृद् बन जाते हैं। वे दोनों (अर्थात्, विभीषण और सुग्रीव) परस्पर का हृदय एक करते हुए, ऐसे आलिंगन में बँध गये, जैसे दिन तथा रात्रिकाल परस्पर आलिंगन कर उठे हों।

तब सूर्यपुत्र ने (विभीषण से) कहा—कमलनयन (राम) ने अपने प्राचीन कुल-धर्म के अनुसार निर्दोष रूप से तुम्हें अभय प्रदान किया है। अतः, अब शीघ्र आकर उनके मनोहर चरणों का नमस्कार करो।

सिंह-सदृश सुग्रीव का वह वचन कान में पड़ने के पूर्व ही रात्रि के जैसे रंगवाले उस (विभीषण) की आँखों से आनन्दाश्रु की धारा बह चली। उसके शरीर पर यों पुलक छा गई, जैसे उसके मन में उत्पन्न शीतलता ही उमड़कर बह चली हो।

रूई के समान कोमल चरणोंवाली (सीता) देवी को उनसे वियुक्त करनेवाले पापी वंचक के भाई मुझ (राक्षस) को भी क्या उन्होंने अभयदान दिया है? क्या मुझे भी उन्होंने अपने शरण में लिया है? अहो! प्रभु की कृपा से मुझ-जैसा एक स्वान भी जटाधारी (शिवजी) के द्वारा पिये गये विष के समान श्रेष्ठ बन गया।

हाय! उस भ्रांतचित्त (रावण) ने मेरी बात नहीं मानी। रथारूढ हो गगन पर चलनेवाला सूर्य अब लंका के ऊपर से जा सकेगा (अर्थात्, रावण का प्रताप मिट जाने से सूर्य अब उससे नहीं डरेगा)। यदि निर्मलचित्तवाले प्रभु (राम) का स्वभाव ऐसा है, तो वे राक्षस व्यर्थ ही अपने को मिटा रहे हैं (अर्थात्, वे प्रभु की शरण में न जाकर पापकर्म करके विनष्ट हो रहे हैं)।

कठोर पाप करनेवाले भी यदि उन पवित्र हृदयवाले महान् कृपालु की शरण में आते हैं, तो रक्षा पाते हैं। पूर्व में क्षीरसमुद्र ने, उसमें बड़े पर्वत को डालकर संतप्त करते हुए उसे मथनेवाले देवों को भी अमृत दिया था न?

मुनियों तथा तपस्वियों का हित करनेवाले पवित्र प्रभु ने मुझे शरण देकर मेरी रक्षा की है। मैं कठोर पाप से भरी माया से मुक्त हुआ और जन्म-बंधन से भी मुक्त हुआ। नरक से बचा।

सुचारु ज्ञान से पूर्ण सूर्यपुत्र ने कहा—हे बुद्धिमान्! प्रभु अपने शरणागतों की रक्षा करने में निरत रहते हैं। इसमें चाहे उनका हित हो या अहित। वे सबको अपने प्राणों के समान प्रिय मानते हैं। वे निष्कलंक (प्रभु) तुम्हें देखना चाहते है। अतः, शीघ्रतर उनके पास चलो।

जैसे अंजन-पर्वत एवं (स्वर्णमय) मेरु-पर्वत, मेघों से आवृत अनेक शैलों से

घिरकर जा रहे हों, वैसे ही वे दोनों पुण्यात्मा (विभीषण और सुग्रीव) वानरों से घिरे हुए चले और सप्त सालवृक्षों को गिरानेवाले प्रभु के समीप जा पहुँचे।

चतुस्समुद्रों से आवृत धरती के चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) को विभीषण ने वानर-सेना से आवृत एक स्थान में देखा। उनके पार्श्व में धनुर्धारी लक्ष्मण सतर्कता से उनकी रक्षा कर रहे थे। रामचन्द्र कुमार (राम) ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों कोई कालमेघ क्षीरसमुद्र से घिरा हुआ, धनुर्धारी मेरु-पर्वत से रक्षित तथा प्रफुल्ल कमलों से युक्त दिखाई दे रहा हो।[1]

(विभीषण ने) समय पड़ने पर इस पृथ्वी को भी उठाकर गगन में फेंक देने की शक्ति रखनेवाली वानर-सेना के मध्य राम को यों शोभायमान देखा, जैसे पूर्व में स्वच्छ तथा शीतल वीचियों से युक्त एवं अतिस्वच्छ धवलवर्ण क्षीरसागर पर देवों की प्रार्थना पर (भगवान् विष्णु) निद्रा से उठे थे।

विभीषण ने उन राम को देखा, जो ऐसे शोभायमान थे, जैसे वक्र वीचियों-रूपी भौंहों से युक्त, अत्यन्त उज्ज्वल मुक्ताओं की जैसी कांति से अलंकृत सैकत-रूपी श्वेत विस्तीर्णता के मध्य उज्ज्वल ललाटवाली सीता की (आँखों की) पुतली शोभित हो रही हो।[2]

प्रलयकाल में जैसे कोई कालमेघ इन्द्रधनुष से रहित होकर दिखाई पड़ रहा हो, वैसे ही वक्ष पर रत्नहार से रहित हो शोभायमान रहनेवाले एवं जैसे मंदराचल, वासुकि नामक मथने की रस्सी से विहीन दिखाई पड़ रहा हो, वैसे ही कंकण आदि आभरणों से रहित भुजाओं से शोभायमान होनेवाले प्रभु को (विभीषण ने) देखा।

विभीषण ने उन प्रभु को देखा, जिनका वदन धवल चन्द्रिका को छोड़कर केवल करुणा-रूपी अमृत को फैलानेवाले पूर्णचन्द्र के समान था और जो अपने पिता के दिये मुकुट को अपने भाई को देकर अपनी जननी के आज्ञानुसार जटामय मुकुट से शोभायमान हो रहे थे।

विभीषण ने जब उन महान् वीर (राम) को देखा, तब उसकी देह में पुलक छा गई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। उसका हृदय द्रवित हो उठा। उसने सोचा—क्या यह अरुण नयनोंवाला कोई अंजन-पर्वत है? किन्तु नहीं। या कोई काल-मेघ कमल-पुष्पों से भरा है? नहीं। अवश्य यह भगवान् विष्णु ही है। अहो! क्या अपूर्व करुणा एवं धर्म का आकार भी काले रंग का होता है?

जुगनू के जैसे चमककर मिट जानेवाले जीवन से मुक्ति प्राप्त करके रत्नकिरीट को छोड़कर (राम की) पादुकाओं को सिर पर धारण करनेवाले (भरत) के भाई, प्रभु (राम) के कमल-समान चरणों में मैं शरण पा सका। अहो! मेरे भाई (रावण) ने मेरा कैसा उपकार किया है!

---

१. वानर-सेना क्षीरसमुद्र है। लक्ष्मण मेरु-पर्वत और राम कालमेघ।

२. समुद्रतट को कवि ने सीता का नेत्र कहा है। वीची भौंहें है। उज्ज्वल सैकत नेत्र का श्वेत भाग है और रामचन्द्र आँख का तारा। यह अति सुन्दर उपमान है।—अनु०

फिर, विभीषण ने मन में सोचा—महान् तपस्या करनेवाले लोगों की जन्म-व्याधि को दूर करनेवाली ओषधि बने हुए प्रभु (राम) स्वयं शर-संधान कर (राक्षसों को) जन्महीन करनेवाले हैं। अहो ! इसके बारे में क्या कहा जाय ? राक्षस भी बड़ी तपस्या से संपन्न हुए हैं ! (अर्थात्, राम के बाणों से निहत होकर राक्षस मुक्ति के अधिकारी बन जायेंगे, इसलिए उनकी तपस्या धन्य है।)

विभीषण के दोनों हाथ उसके रत्नमय किरीट पर जुड़ गये। (राम के प्रति) उसकी भक्ति देखकर पत्थर और वृक्ष भी पिघल गये। करुणासमुद्र प्रभु की दृष्टि जैसे-जैसे उस (विभीषण) पर पड़ती गई, वैसे-वैसे वह धरती पर गिरकर दंडवत् करता हुआ जाकर वरदानों की जलधि के सदृश (राम के) चरणों पर नत हुआ।

'अब मेरा जन्म-बंधन टूट गया'—ऐसा भाव उस (विभीषण) के मुख पर प्रकट हो रहा था। आँखों के अश्रुजल से सिक्त अपने वक्ष को पृथ्वी पर अंचित करते हुए और दण्डवत् करते हुए विभीषण को प्रभु ने देखा, मानों वे अपनी करुणा से ही उसको आलिंगित कर रहे हों और उठकर अपने कर कमलों से उसे पकड़कर आसन पर बिठा लिया।

कृपामय दृष्टि से चक्रधारी ने उसे देखा और उमंग से भरकर कहा—जब-तक चौदह भुवन स्थिर रहेंगे और जबतक मेरा नाम संसार में स्थिर रहेगा, तबतक उज्ज्वल दाँतोंवाले राक्षसों की लंका का राज्य तुम्हारा ही रहेगा।

प्रभु की कृपा का पात्र बनकर उस (विभीषण) ने बड़ा महत्त्व प्राप्त किया। ज्यों ही प्रभु ने वह वचन कहा, त्यों ही संसार के चराचर प्राणी सब पृथक्-पृथक् यह कहकर हर्षध्वनि कर उठे कि अब हम तर गये।

'यह दास अब उद्धार पा गया'—यह कहकर बार-बार चरणों पर नत होनेवाले अंजन-पर्वत के समान उस (विभीषण) को प्रभु ने कृपापूर्ण दृष्टि से देखा। फिर, अपने दोषहीन यशस्वी भाई (लक्ष्मण) को देखकर कहा—हे निद्राहीन नयनोंवाले ! इसे (लंका का राज्य पाने के उपलक्ष्य में) मुकुट पहनाओ।

तब भविष्य के परिणामों को जाननेवाले विभीषण ने प्रभु से निवेदन किया—हे प्रभु ! आपने मुझे अपरिमेय संपत्ति प्रदान कर दी। छली राक्षस का भाई होकर जन्म लेने का मेरा दोष भी आपने दूर कर दिया। आपने अपने भाई (भरत) को जो पादुकाएँ दी थीं, उन्हें मुझे भी प्रदान करें।

तब राम ने कहा—(पहले हम चार भाई थे) गुह के साथ हम पाँच बने। फिर मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) के साथ मिलकर हम छह भाई बने। प्रेम-भरे हृदय के साथ हमारे पास आनेवाले तुम मेरे सातवें भाई बने। मुझे वन में भेजकर तुम्हारे पिता (अर्थात्, यहाँपर दशरथ) अनेक उत्तम पुत्रों के पिता बने।

तब विभीषण ने कहा—हे प्रभु ! अब क्या कहूँ ? आपने मुझ श्वान-समान व्यक्ति को भी अपना भाई बना लिया ! मैं पहले दास था, अब श्रेष्ठ बन गया—यह कहकर मन की आशंका से रहित होकर उसने प्रभु के स्वर्णवलय-भूषित चरणों की पादुकाओं को सिर पर रख लिया।

प्रभु की पादुकाओं को सिर पर धारण किये, सूर्य से शोभायमान पर्वत के जैसे स्थित उस राक्षसराज (विभीषण) को देखकर दोनों भाई आनन्दित हुए। सब वानर आनन्दित हुए। देवताओं ने आशीर्वाद देकर उसपर पुष्पवर्षा की।

तब सातों समुद्र हर्षध्वनि कर उठे। मेघ शब्द कर उठे। दिव्य भेरियाँ बज उठीं। शंख बज उठे। स्वर्णमय वर्षा हुई। सुगंधित चूर्ण अंतरिक्ष में फैल गया। उस समय सर्वत्र महान् ध्वनि भर गई।

कमलभव ब्रह्मा, जो अमृत के समान मधुरवाणीवाली सीता के प्रति रावण के अपराध करने से यह सोचकर कि मेरा वंश पतित हो गया, दुःखी हो रहे थे, अपने असह्य संताप से मुक्त हुए। धर्म-देवता भी यह कहकर हर्षनाद कर उठा कि रावण का पापमय वैभव अब मिट गया।

जब ऐसा हो रहा था, तभी राम ने लक्ष्मण से कहा—लंका का राज्य विभीषण को मिला है—इस समाचार को सर्वत्र सुनाते हुए हमारी विशाल सेना में इस (विभीषण) को घुमाओ।

तब मंदर-समान कंधोंवाले लक्ष्मण एवं सुग्रीव ने अपार गुणों से पूर्ण विभीषण को (राम की) पादुका-रूपी मुकुट के साथ, चन्दनमय विमान पर आरूढ़ कराके, वानर-सेना-पतियों के उस (विमान) को उठाकर चलते हुए, स्वयं यह घोषणा करके कि 'इस (विभीषण) ने इन्द्र की संपत्ति प्राप्त की है', सारी सेना में घुमाया।

अन्वेषण करनेवाले (तत्त्वज्ञानी) जिन चरणों को प्राप्त करते हैं, उनको चतुर्मुख ने स्वयं प्राप्त करके अपने कमंडलु के जिस जल से उसको सिंचित किया था, उस जल की धारा में (अर्थात्, गंगा में)[1] स्नान करनेवाले भी जब सकल पापों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त करते हैं, तब उन लोगों के बारे में क्या कहा जाय, जो स्वयं उन चरणों को ही सिर पर धारण करते हैं?

ज्ञानी महान् आश्चर्य के साथ यह कह उठे—अबतक जितने ऋषि, ज्ञानी, महान् योगी, बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले हुए हैं, उनमें कौन ऐसा हुआ, जिसने इस लंकेश (विभीषण) के जैसा भाग्य पाया? (१—१५४)

●

अध्याय ५

लंकाप्रबंध-श्रवण पटल

रामचन्द्र ने अपने चरण पर आकर नत हुए राक्षसराज को एक सुन्दर विश्राम-स्थान प्रदान किया और (विश्राम करने को) उसे भेज दिया। इतने में सूर्य ने भी अपनी उष्ण किरणों को समेट लिया।

---

१. त्रिविक्रमावतार में भगवान् का चरण जब ऊपर के लोकों में पहुँचा, तब ब्रह्मा ने अपने कमंडलु के जल से धोकर उस (चरण) की पूजा की। वही जल गंगा बनकर बहा था।—अनु०

राम संध्या-वंदन आदि सायंकृत्य पूर्ण करके शान्तचित्त होकर निःश्वास भरते हुए विश्राम करने लगे। मन्मथ अपने पुष्पबाणों का प्रयोग करके उन्हें पीडित करने लगा। तब संध्या आई। सारे ब्रह्मांड में अंधकार छाने लगा।

विशाल दिशाओं को अंधकार यों आवृत करने लगा, जैसे काला समुद्र उमड़कर सर्वत्र व्याप्त हो रहा हो। जल-भरे सरोवर में जैसे पुष्प विकसित हुए हों, वैसे ही नक्षत्र चमक उठे।

तन्वंगी सीता का स्मरण करके संतप्त होनेवाले धनुर्धारी (राम) के मन को दुःखी करने की इच्छा से ही मानों मल्ली-पुष्पों का वन भी गगन के नक्षत्रों के समुदाय के समान ही प्रफुल्ल हुआ।

उज्ज्वल करवाल-समान चन्द्रमा, अपने अंतर के कलंक के साथ मानों यह विचार कर उदित हुआ कि अपने अनुपम मुखच्छवि से मुझे नीचा दिखानेवाली (सीता) के पति को मैं आज पराजित कर दूँगा।

चन्द्रमा ने मानों यह सोचकर कि दृष्टि से परे कहीं अदृश्य रहने पर भी यदि स्त्री (सीता) की छाया दिखाई पड़े, तो मैं पकड़ लूँगा, उसने समुद्र से आवृत पृथ्वी में सर्वत्र अपनी चन्द्रिका-रूपी जाल को फैला दिया।

ऊँची तरंगों-रूपी हाथों को उठा-उठाकर बड़ा शब्द करनेवाला समुद्र ऐसा लगा, जैसे वह यह सोचकर कि अपने वास्तविक रूप को छिपाकर (मनुष्य-रूप धारणकर) आया हुआ राम उसपर बाँध बनाकर उसे रोकने आया है, व्याकुल होकर हलचल से भर गया हो।

समुद्र-रूपी सर्प ने अनेक युगों से जो केंचुलियाँ छोड़ी हैं, वे सब एकत्र हो पड़ी हों, यों समुद्र के विशाल तट पर सर्वत्र दूध की धारा के समान चन्द्रिका फैल गई।

सुगंधित मल्ली-पुष्प-रूपी दाँतोंवाला, भ्रमर-रूपी काली चित्तियोंवाला (पुष्पों के) मधु-बिंदुरूपी आँखोंवाला मलयपवन-रूपी व्याघ्र पर्वत की कंदराओं से होकर गरजता हुआ निकला।

अपने हाथों से अति गंभीर क्षीरसमुद्र को जिसने मथ डाला था, उस (वाली) के वक्ष को एवं वन में सिर ऊँचा करके खड़े रहनेवाले सप्त सालवृक्षों को जिसके शर ने विद्ध कर दिया था, उस (राम) के वक्ष में चन्द्रिका-रूपी करवाल, मन्मथ के शरों के साथ, घुस गया।

रामचन्द्र अपनी देह को देखते। अपने प्राण-समान सीता को देखते (अर्थात्, स्मरण करते)। अपने सम्मुख उपस्थित बाधाओं को देखते, सामने पड़े समुद्र को देखते। उस चोर (रावण) के निवासभूत (लंका) द्वीप को देखते और फिर अपने धनुष को देखते।

वे प्रभु अति सुन्दर मेखलाधारिणी (सीता) के प्रति प्रेम के कारण उन्मत्त-से हो गये। क्या मुक्ता-समान उज्ज्वल दाँतों तथा लाल मणि के समान शोभित (सीता के) मुँह को वे भुला सकते थे ?

इसी समय सूर्यपुत्र ने आकर निवेदन किया—हे प्रभु ! आप क्यों व्याकुल

हो रहे हैं ? अब करने योग्य जो कार्य हैं, उनको उस आगंतुक (विभीषण) के साथ परामर्श करके पूर्ण करने का विचार कीजिए।

तब प्रभु शिथिलता को छोड़कर स्वस्थ हुए। और, (सुग्रीव से) कहा—'उस सन्मार्गगामी बुद्धिमान् (विभीषण) को ले आओ।' सुग्रीव के बुलाने पर, दुष्ट मार्ग को छोड़कर धर्म-मार्ग पर चलनेवाला (विभीषण) आ पहुँचा।

सुरभित तथा सद्योविकसित कमल-पुष्पों से भरे तालाब के समान लगनेवाले प्रभु ने सुन्दरता से पूर्ण कमल-समान चरणों पर नत हुए विभीषण से कहा—उठो। यहाँ आसीन होओ। तब विभीषण वैसे ही आसीन हुआ।

राम ने विभीषण से पूछा—समुद्र से आवृत लंका के प्राचीरों, उसकी रक्षा, वहाँ के मुखरित वीर-कंकणधारी राक्षस (रावण) के बल तथा उसकी सेना के विषय में विस्तृत रूप में कहो।

तब विभीषण उठकर खड़ा हुआ। राम ने कहा—बैठ जाओ। फिर, कमल-नयन ने उस सम्पूर्ण ज्ञानवाले (विभीषण) से जो पूछा, उसका विस्तृत उत्तर उस (विभीषण) ने हाथ जोड़कर यों दिया।

पूर्व-उत्तर दिशा में स्थित मेरु के शिर के समान स्थित स्वर्णमय शिखर-त्रय[1] को तोड़कर हनुमान् के पिता (पवन) ने तरंगायमान समुद्र के मध्य डाल दिया था।

उस (लंका) का प्राचीर सात सौ योजन विशाल है। उसकी गहराई शत योजन है, सारे संसार को जैसे चक्रवाल-पर्वत घेरकर रहता है, वैसे ही वह प्राचीर स्थित है और सूर्य से भी अधिक ऊँचा है।

उस (प्राचीर) की व्यवस्था को, उसमें रखे गये यंत्रों के महत्त्व को तथा उसकी रक्षक सेना आदि के संबंध में हम विचार भी नहीं कर सकते। काला समुद्र ही उसके चारों ओर परिखा बनाकर पड़ा हुआ है।

उसके उत्तर द्वार पर सोलह कोटि राक्षस निरंतर उसकी रक्षा करते रहते हैं। वे युगांत में प्रकट होनेवाले रुद्र से भी युद्ध करने की शक्ति रखते हैं।

पश्चिम द्वार पर रहनेवाले भयंकर राक्षस, उनसे (अर्थात्, उत्तर द्वार पर स्थित राक्षसों की अपेक्षा) दो करोड़ अधिक हैं। यदि वे अपनी आँखें टेढ़ी करके यम को देख लें, तो रक्त के साथ उसके प्राण भी सूख जायेंगे।

दक्षिण दिशा में सोलह कोटि क्रूर राक्षस स्थिर हैं। उन पर्वताकार राक्षसों की क्रूरता का क्या वर्णन किया जाय ? वे यम को भी उसके राज्य से हटा देने की शक्ति रखनेवाले हैं।

पूर्व दिशा में जो अधम राक्षस हैं, वे भी सोलह कोटि संख्या में हैं। दिशाओं में स्थित पर्वताकार दिग्गजों को भी पैरों से पकड़कर उन्हें धरती पर पटक दे सकते हैं।

सोलह करोड़ क्रूर राक्षस गगन में रहकर लंका की रक्षा करते हैं। धरती पर भी उतने ही राक्षस, देवता आदि शत्रुओं से लंका की रक्षा करने के लिए खड़े रहते हैं।

---

१. यही त्रिकूट-पर्वत है, जिसपर लंका बसी थी।

उस अति विशाल प्राचीर के दोनों पार्श्वों में, निद्रा से हीन, हवा का ही आहार करके रहनेवाले तथा चरखी के समान सर्वत्र घूमनेवाले राक्षस दस सौ कोटि हैं।

ऐसे प्राचीर तीन हैं। उनकी व्यवस्था का वर्णन कहाँतक किया जाय? समस्त वैभव से परे लंकानगर के रक्षक के रूप में तीस कोटि से तिगुने राक्षस रहते हैं।

उस (रावण) के द्वारा सम्मानित, प्रभूत संपत्ति से पूर्ण, धर्म के महान् शत्रु, अपार शक्ति से भरे हुए, बड़े-बड़े शत्रुओं से युद्ध करके सच्ची सहायता करनेवाले राक्षस सोलह सौ करोड़ हैं।

क्रोधाग्नि से पूर्ण नयनोंवाले, पलक मारने में भी कर्त्तव्य की हानि समझनेवाले राक्षस, मेरु की समता करनेवाले और नगर-द्वार पर बायें और दायें घूमते रहनेवाले राक्षस की संख्या चौंसठ करोड़ है।

अधिक कहने से क्या प्रयोजन? उसने इस विशाल धरती पर जो बड़ी सेना एकत्र कर रखी है, उसका यदि संहार करना चाहें, तो अनेक दिनों तक ऐसा करते रहना पड़ेगा। ऐसी उसकी सेना की संख्या सहस्र 'समुद्र' है।

इतना ही नहीं। यदि उसके विशाल प्रासाद के आँगन में स्थित राक्षसों के बारे में कहें, तो वे इस संसार को उठाने की शक्ति रखते हैं, पर्वत के समान दृढ हैं। उनकी संख्या करोड़ों में है।

लंका की रक्षण-व्यवस्था ऐसी है। शिवजी ने जो करवाल दिया था, उसे दक्षिण हस्त में रखनेवाले उस (रावण) के साथी असंख्य हैं। वे अपार बल, वर तथा तपोबल से युक्त हैं।

प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण कुंभ नामक एक वीर है, जिसके पास हाथियों, रथों, अश्वों आदि की दो करोड़ सेना है। स्वर्ग में स्थित सिद्धों को उसने बंदी बनाया था।

अनेक युग-पर्यंत तपस्या करके जिसने अनेक वर प्राप्त किये हैं, जिसको युद्ध के अतिरिक्त और कोई सुख ही नहीं है, जिसके पास बहुत-बड़ी सेना है और जो नख एवं दाँतों से हीन नरसिंह के समान है, ऐसा अकंप नामक एक वीर है। वह तरंगायमान समुद्र को भी पीने की शक्ति रखता है।

'निकुंभ' नामक एक वीर है, जिसके पास पर्वत से भी बड़े घोड़ों, हाथियों, रथों तथा पदाति-सेना है, जो नौ करोड़ से भी अधिक है और जिसने गगन में मेढ़ के वाहन पर सवार होकर आनेवाले अग्निदेव को भी हरा दिया था।

'महोदर' नामक एक वीर है, जिसके पास भूतों, शरभों, हाथियों तथा गदहों से जुते रथों की दस करोड़ सेना है, जिसने अपनी माता को भी छल से पीडित किया था।

पर्वतों में निवास करनेवाले नौ करोड़ राक्षसों का अधिपति 'यज्ञशत्रु' नामक एक क्रूर राक्षस है, जो सब प्राणियों को दाँतों से चबाकर यों खा जाता है कि जो आज हैं, वे कल अदृश्य हो जाते हैं। उसने अनेक बार देवों को युद्ध में हराया है।

एक 'सूर्यशत्रु' नामक तीक्ष्ण स्वभाववाला राक्षस है, जो आँखों से घूरकर अग्नि

को भी भयभीत कर देता है और जिसके पास आठ करोड़ की ऐसी सेना है, जो धरती एवं स्वर्ग के सब निवासियों को एक ही दिन में निगल जा सकती है।

एक 'महापार्श्व' नामक वीर है, जो पर्वत से भी अधिक प्रबल है, जो इतना भयंकर और क्रोधी है कि देवता, मुनि तथा त्रिमूर्त्ति भी (उसके भय से) बगलें झाँकते रहते हैं और जिसके पास सोलह करोड़ की भयंकर सेना है।

'वज्रदंष्ट्र' नामक एक वीर है, जो यम का प्रतिद्वन्द्वी है, जिसका मुख प्रज्वलित शिखावाली अग्नि के समान है, जिसके पास आठ करोड़ की घातक सेना है और जो त्रिमूर्त्तियों के लिए भी अजेय है।

एक 'पिशाच' नामक उन्मत्त राक्षस भी है, जिसके पास दस करोड़ अचंचल सेना है, जो युद्ध में अपने अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपने वश में कर सकता है और जिसने पूर्व में एक भयंकर युद्ध में यक्षों का विनाश किया था।

एक 'दुर्मुख' नामक धर्म-रहित राक्षस है, जो अति महान् रथों, हाथियों, अश्वों तथा उत्तम धनुर्धारी पदाति-सैनिकों की चौदह करोड़ सेना का अधिपति है और जो इतनी शक्ति से युक्त है कि समुद्र को भी बड़े पर्वत के समान मथ सकता है।

'विरूपाक्ष' नामक एक राक्षस है, जो घूरकर देखता है, तो सूर्य को भयभीत कर देता है, जो समुद्र-मध्य स्थित लंका नामक द्वीप के मध्य दस करोड़ शूलधारी सैनिकों का नेता है और जिसने खड्ग-प्रयोग में कुशल विद्याधरों के यश को भी मिटा दिया था।

एक 'धूम्राक्ष' नामक राक्षस है, जिसने देवताओं को भगाया था, जो शवों को श्मशान में न छोड़कर अपने दाँतों के मध्य रखकर उन्हें चबा जाता है तथा जो ध्वजाओं से शोभित एक 'पद्म' सैनिकों का पति है।

'रणमत्त' आदि अनेक भयंकर राक्षस ऐसे हैं, जिनकी सेनाएँ समुद्र से भी विशाल हैं। संसार में उनका सामना करनेवाला कोई वीर नहीं है। यह संसार जितना बड़ा है, उनकी वीरता का यश भी उतना ही बड़ा है।

मैं क्या कहूँ कि ऐसे कितने सहस्र राक्षस वहाँ हैं। 'प्रहस्त' नामक एक युद्धोन्मत्त राक्षस ऐसा है, जिसके पास उसकी आज्ञा का सदा पालन करनेवाली अतिविशाल सेना है।

उसने अनेक बार युद्धों में तीक्ष्ण शर छोड़कर देवों को परास्त करके भगाया था और इन्द्र के सिंदूर-मस्तक गज के पैरों को उखाड़ दिया था।

'कुंभकर्ण' नामक (रावण का) एक भाई है, जो बड़े मत्तगजों के शुक्लपक्ष के चार चन्द्रों के समान आकारवाले दाँतों को पकड़कर, खींचकर उखाड़ देता है, जो युद्ध के उन्माद से भरकर मेरु-पर्वत के समान घूमा था और जिसने पूर्व में देवों को परास्त किया था।

'इन्द्रजित्' उस (रावण) का पुत्र है, जिसने एक बार दोनों ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को बंदी बना रखा था, जिसने युद्ध में देवेन्द्र पर ऐसा आघात किया था कि अबतक उसके वक्ष एवं कंधों पर उन चोटों के चिह्न बने हुए हैं।

'अतिकाय' नामक एक राक्षस है, जो अपने राजा (रावण) की आज्ञा का पालन करने में निरत रहता है, जिसने ब्रह्मा से धनुष प्राप्त किया है।

'अतिकाय' नामक एक राक्षस है, जो यह नहीं सोचता कि धर्म उस अधर्मी को भी कभी मिटा सकता है। ब्रह्मा से उसने एक दृढ धनुष प्राप्त किया है। इन्द्र को उसने पराजित तो किया था, किन्तु (इन्द्र-पद) के जैसा दूसरा कोई पद न रहने से उसने 'इन्द्र' का नाम स्वयं नहीं रख लिया।

(रावण की सेना के) वीरों का यह रूप है। उनका बल ऐसा है। अब जहाँ-तक मैं जानता हूँ, रावण की शक्ति को बताता हूँ। वह ब्रह्मा के पौत्र का पुत्र है। उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा एवं शिव से वर प्राप्त किये हैं।

उसने, बड़े भूतों से घिरे तथा बिंदियोंवाले हरिण-चर्म एवं उमादेवी से युक्त शिवजी के महान् रजत-पर्वत को, जड़ से उखाड़कर, सारे संसार को भय-विकंपित करते हुए, गगन में उठा लिया था।

उसने सारी पृथ्वी का भार वहन करनेवाले दिग्गजों के दृढ दाँतों को अपनी पुष्ट भुजाओं से दबाकर तोड़ दिया था। उसके त्रास से तैंतीस करोड़ देवता व्याकुल होकर भागते हैं।

उज्ज्वल करवाल से उसने 'कालकेय' राजाओं के कुल को मिटा दिया था। उसका नाम सुनने मात्र से अब भी दानव-स्त्रियों के गर्भ विचलित हो जाते हैं।

कुरंड (नामक जलचर पक्षी) जहाँ क्रीडा करते हैं, ऐसे सरोवरों से शोभायमान अलकापुरी का अधिपति कुबेर अपनी विशाल संपत्ति और सब निधियाँ खोकर, लंकानगर को एवं द्विविध मान (अर्थात्, अभिमान और पुष्पक-विमान) को भी खोकर ऐसे भाग गया, जैसे सिंह को देखकर हरिण भागा हो।

जब यम (रावण से) पीठ दिखाकर भागा, तब उसकी पीठ पर अनेक घाव लग गये। दशमुख का क्रोध कभी उसके प्राण पी जायगा—इस डर से वह अपने पद से भ्रष्ट होकर आतंक में अपने दिन गिन रहा है।

अंधकार को निःशेष मिटा देनेवाले सूर्य को छोड़ दीजिए, (उसका सारथि) अरुण भी कभी लंका पर अपनी दृष्टि नहीं डाल सका। युद्ध-कला में अत्यन्त निपुण वरुण भी अपने भयंकर पाशायुध के (रावण के द्वारा) अपहृत हो जाने पर मकरों से पूर्ण समुद्र में छिपकर रहता है।

पर्वत भले ही हिल जायें, पर उसकी भुजाओं का बल नहीं हिलेगा। ऐसी विजय एवं पराक्रम से युक्त वह रावण चाहे आज मरे या कल या कुछ दिन और जीवित रहकर उसके बाद मरे, वह आपको छोड़कर और किसी से नहीं मरेगा।

उस दिन हनुमान् के हाथ राक्षसों की बड़ी दुर्दशा हुई। तोरण के खंभे की चोट से समुद्र पर के बालुकण से भी अधिक संख्या में राक्षस मरे। हिंसक व्याघ्र जिस प्रकार बकरियों को मारता है, उसी प्रकार राक्षस मिटे और लंकानगर जल गया।

उस समय जो राक्षस जल गये थे, उनके रक्त के चिह्नों से पूर्ण शत्रु अबतक समुद्र

के मध्य ढेरों पड़े हैं। हनुमान् ने 'अक्ष' को उसके धनुष के साथ धरती पर पटककर, पीसकर जो कीचड़ बनाया था, वह (कीचड़) अबतक लंका की वीथियों में सूखा नहीं है।

पाँच वीर सेनापति ऐसे थे, जिन्होंने पूर्व में देवताओं की सुरक्षा एवं अभिमान को मिटा दिया था। वे वीर अपनी समुद्र-समान सेना के साथ हाथी के पैरों के नीचे आये दीमकों के जैसे पिस गये।

मेरे कुल के अस्सी सहस्र राजा, जो पर्वत-समान आकारवाले थे, हनुमान् के पैरों से, पूँछ से एवं हाथों से आहत होकर ऐसे मिट गये, जैसे शिवजी के हाथ से त्रिपुरासुर मिटे थे।

हे प्रभु! जंबुमाली समुद्र के समान एक विशाल सेना को लेकर (हनुमान् से) युद्ध करने आया था। इस (हनुमान्) की भुजाओं में सहस्रों बाण चुभा दिये थे। उसी शिव-धनुष से ही मारा जाकर वह स्वर्ग में जा पहुँचा।

उस विशाल लंका-नगरी में असंख्य राक्षस रौंदे जाकर, पिसकर, छिन्न-भिन्न हो गये थे। अब जो वीर बचे हैं, वे आपके ही हाथों मरनेवाले हैं। उस दिन रक्तधारा से भरी लंका इस (हनुमान्) की लगाई हुई अग्नि से जलकर भस्म हो गई।

वहाँ सब प्राणी कैसे जलकर मरे, उसका पृथक्-पृथक् वर्णन क्या करूँ? लंकाधीश (रावण) भी सुन्दर पुष्पमाला, चंदन तथा उस दिन पहने हुए आभरण, वस्त्र एवं हाथ में उज्ज्वल करवाल के साथ सात दिनों तक गगन में रहा।

अति बलशाली रावण की लंका के बारे में मैंने कहा। वहाँ की रक्षा एवं वैभव के बारे में कहा। उस रावण की आज्ञा से ब्रह्मा ने स्वयं उस लंका को पुनः निर्मित किया।

यदि मैं यहाँ आया हूँ, तो वह यह सुनने के कारण नहीं कि युद्ध में खर आदि राक्षस निहत हो गये। किन्तु, हनुमान् के हाथों राक्षसों का नाश एवं लंका का जलना देखकर ही उससे प्रभावित होकर मैं यहाँ आपकी शरण में आया हूँ।

उस (विभीषण) के द्वारा कही सब बातें राम ने सुनी। कलापी-तुल्य अति सुन्दर सीताजी से अनेक दिनों तक वियुक्त रहने से अत्यन्त कृश हुई उनकी भुजाएँ (उत्साह से) उमड़ उठीं। उन्होंने दूत (हनुमान्) को देखकर कहा—

तुमने उन शत्रुओं की सेना को मिटाया। लंका को जलाया। अब वहाँ और क्या बचा? उस मंजुभाषिणी सीता को देखकर भी यदि तुमने अपनी शक्ति से ही उसको मुक्त नहीं किया, तो वह केवल मेरे धनुःकौशल को प्रकट कराने के लिए ही तो था।

तुम्हारे अद्भुत कृत्यों से पूर्ण लंका के निकट अब हम आ पहुँचे हैं। हम भी कुछ वीरता के कार्य करनेवाले हैं। किन्तु, अब हमारे कार्य अधिक महत्त्व नहीं रखते। हे स्वर्ण-शैल-समान कंधोंवाले! हम एक बड़ी सेना को लेकर यहाँ आये हैं। हम कौन-सा बड़ा कार्य करके अब यश पायेंगे?

हे साकार भाग्य-जैसे स्थित वीर! तुमने हमको समर्पित किये हुए अपने बल

से उस रावण की शक्ति को भी अपने अधीन कर लिया। पूर्व में इस सारी सृष्टि की रचना करनेवाले ब्रह्मपद को उसके पश्चात् मैंने तुम्हें दे दिया।

तब हनुमान् संकोच के कारण प्रभु के सम्मुख कुछ बोल नहीं सका और सिर नीचा करके खड़ा रहा। तब वहाँ स्थित वानरों, सेनापतियों और बानरपति (सुग्रीव) सबने उस (हनुमान्) का पराक्रम सुनकर कहा—अहो! अब हम सभी मुक्त हुए! (१—७३)

●

अध्याय ६

वरुण-आराधना पटल

राम ने विभीषण से कहा—यदि हम चाहें, तो तीनों लोकों को अपने भुजबल से ही दबा सकते हैं, या मिटा सकते हैं। यह कार्य हमारे लिए कुछ कठिन नहीं है। किन्तु, हे विज्ञ! अब ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे हमारी सारी सेना इस विशाल समुद्र को पार करे।

तब विभीषण ने कहा—यह तरंगायमान समुद्र आपके गूढ स्वरूप को पहचानेगा, आपके प्रसिद्ध कुल के आदिपुरुष सगर-पुत्रों के प्रभाव को सोचकर यह आपको वर देगा। अतः, आप इससे सेना के चलने के लिए मार्ग देने की प्रार्थना कीजिए।

लंकेश (विभीषण) का वचन ठीक है।—यह सोचकर प्रभु अपने महान साथियों से अनुसृत होते हुए समुद्रतट पर जा पहुँचे। तभी सूर्य के अश्व उदयाचल पर से गगन में फाँद चले।

सूर्य से उत्पन्न किरणों से सारा अंधकार फट गया। तब समुद्र से आवृत पृथ्वी ऐसी लगी, जैसे षोडश कलाओं से पूर्ण शीतल चंद्रमा, अत्यन्त रोषभरे काली रेखाओं से युक्त (राहु नामक) सर्प से मुक्त होकर प्रकाशमान हो रहा हो।

राम ने यह आशा की कि उनकी पत्नी को बंधन से मुक्त करने के लिए (सेना को समुद्र के पार ले जाने के लिए) समुद्र मार्ग देगा। वे करुणासमुद्र शास्त्रोक्त प्रकार से दर्भों की शय्या बिछाकर उसपर लेट गये और वरुण-मंत्र का ध्यान करते रहे।

उनकी देह में धूल लगी। उष्णकिरण (सूर्य) के कर उनके नीलरत्न-समान उज्ज्वल वदन पर फिरते रहे। एक-एक दिन एक युग के समान व्यतीत हुआ। ऐसे सात दिन व्यतीत हो गये। फिर भी, समुद्र का अधिपति वरुण नहीं दिखाई पड़ा।

समुद्र के देवता से 'हाँ' या 'नहीं', कुछ उत्तर हमें नहीं मिल रहा है—यह सोचकर राम के कमल-समान नयन क्रोध से लाल हो गये, जैसे जलपूर्ण सरोवर में अग्नि उत्पन्न हुई हो।

मैं अपने दीर्घ धनुष को छोड़कर मार्ग देने के लिए इस समुद्र से प्रार्थना करता रहा। किन्तु, यह प्रकट नहीं हुआ—यह सोचकर राम मन में अत्यन्त क्रुद्ध हुए। तप्त श्वास के साथ उनकी भौंहें यों कुंचित हुईं, जैसे प्रत्यंचा चढ़ाने पर धनुष झुक गया हो।

किसी के समीप जाकर कोई कुछ माँगे, तो वह (माँगनेवाला) हीनता को प्राप्त होता है। अहो ! आज मैंने इस समुद्र से प्रार्थना की, तो इसने मेरा तिरस्कार किया ! ठीक है ! ठीक है !—यों सोचकर बाष्प निकालते हुए वे (राम) हँस पड़े।

रावण ने मेरी पत्नी का अपहरण किया। मैं प्रताप से रहित धनुष से युक्त और वीरता से हीन एक साधारण मनुष्य हूँ, इसलिए यह समुद्र भी मेरा तिरस्कार करके निष्करुण हो गया है।—यों राम ने सोचा।

किसी का कुछ उपकार करके, प्रशंसा के साथ कुछ प्राप्त करना, या युद्ध में किसी को पराजित करके उसका धन अपहरण करना—यह परिपाटी आदिकाल से ही चली आई है। अब यह समुद्र, प्रार्थना करके इससे कुछ माँगने पर भी, स्वाभाविक धर्म तथा गुणों से हीन होकर चुप रहता है, तो अब और क्या किया जाय ?

मैं वन में आकर कंद-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—कदाचित् समुद्र यही सोच रहा है (और मेरी उपेक्षा कर रहा है)। अब देवता मत्स्यों से पूर्ण इस समुद्र के महत्त्व को एवं मुझ मनुष्य के लघुत्व को देखें।

किसी का अहित न चाहते हुए मैंने इससे विनम्रता से प्रार्थना की, तो मुझे दीन मानकर इसने मेरा तिरस्कार किया। मैं ऐसे सात समुद्रों को सुखाकर धूल बना दूँगा। पाँचों भूत हाथ जोड़कर व्याकुलप्राण होकर मेरे चरणों पर आकर लोटेंगे, तब मेरी सेना आगे बढ़ जायगी।

परमतत्त्व को पहचाननेवाले सच्चे ज्ञानी भी यदि इस संसार में आयें, तो भी यहाँ के अज्ञ लोग उसमें कोई विशेषता न देखकर उसका अनादर करते हैं। कोई प्रज्वलित अग्नि के समान ही गुणवान् क्यों न हो, वे उनको नहीं चाहते। जो लोग दूसरों के लघुत्व को ही देखते हैं, वे उसके महत्त्व को देखना भी नहीं चाहते।

यों सोचनेवाले राम की शिथिलता कुछ कम हुई। उनका वदन प्रलयकाल के सूर्य के समान दहक उठा। उन्होंने अपने अनुज से कहा—मेरा धनुष लाओ। क्रोध से रुधिर उगलती हुई आँखोंवाले भाई (लक्ष्मण) ने धनुष लाकर दिया।

राम ने धनुष को उठाया। उसपर शर-संधान किया। अंगुलित्राण को पहनकर डोरी को खींचा। तब उस धनुष से जो टंकार निकला, उससे त्रिनेत्र (शिव) की देवी (पार्वती) का मान भी दूर हो गया (अर्थात्, टंकार सुनकर भय से पार्वती ने शिवजी के प्रति अपना मान छोड़कर उनका आलिंगन कर लिया)।

सूर्य की किरणों के जैसे अति तीक्ष्ण, वर्षा की बूँदों से भी अधिक संख्या में, ऐसे चुने हुए बाणों को राम ने प्रयुक्त किया, जो उस समुद्र के सारे जल को निःशेष पी सकते थे।

उन्होंने ऐसा शर प्रयुक्त किया, जो सप्त कुलपर्वतों से भी अधिक शक्तिशाली था, रेखाओं से युक्त था और संसार के चर और अचर प्राणियों को जलानेवाली अग्निशिखा के समान था।

मत्स्य, हाथी तथा पर्वत सभी ईन्धन बने। चर, अचर सभी जल उठे, जलधि का जल घृत के समान हुआ और समुद्र नामक छोटा तालाब अग्नि से जलता हुआ, एक अग्निकुंड के समान दिखाई पड़ा।

राम के धनुष से निकले शर ने सप्त समुद्रों को जलाते हुए, प्रलयकालिक अग्नि-ज्वालाओं के समान सर्वत्र धूम फैलाते हुए, चक्रवाल-पर्वतों के परे रहनेवाले अंधकार को भी दूर कर दिया।

समुद्र के अंतराल में स्थित बड़े-बड़े मीन जले, स्वर्ग के कल्पवृक्ष भी जले। वे कल्पवृक्ष स्वर्ग से ऐसे गिरे, जैसे वज्र गिरे हों, जिससे समुद्र-जल के बिंदु उछलकर स्वर्गलोक में जा गिरे।

अग्नि उगलनेवाले उस शर से जलकर गगन पर चलनेवाले मेघ झर गये। नृत्य करनेवाली देवस्त्रियों के केश भी श्वेत हो गये। अग्निशिखा से निकला हुआ धूम सर्वत्र भर गया।

उस शर की अग्नि से आहत होकर मकर-कुल रुधिर उगलता हुआ जलकर भस्म हो गया। अनेक 'तिमिंगिल' एवं 'तिमिंगिलगिल' छिन्न-भिन्न होकर छितरा गये।

अग्नि यों भड़की कि उससे पर्वत भी भस्म हो गये। अनेक सहस्रकोटि तीक्ष्ण बाण ऐसे निकले कि उनसे अति गंभीर समुद्र भी सूख गया। उसका कीचड़ भी जल गया और (पाताल में स्थित) आदिशेष के शिर भी झुलस गये।

मीनकुल यों निःशेष हो गया, जैसे असत्य साक्ष्य देनेवाले का कुल मिट जाता है। अनेक मीन शर से विद्ध होकर ऐसे तैर रहे थे, जैसे ऊँचे मस्तूल से युक्त नौकाएँ हों।

रुधिर का प्रवाह एवं अग्निकणों से भरा हुआ वह अपार समुद्र संध्याकालिक गगन के समान लाल हो गया। पंक्तियों में निकलनेवाले अग्निमय शरों से आहत होकर कुछ मीन भस्म हुए, कुछ झुलसे, कुछ काले पड़ गये और कुछ भुन गये।

पृथ्वीनाथ (राम) के द्वारा प्रयुक्त तीक्ष्ण शर के पीने से सारा जल सूख गया। सर्वत्र अग्नि के फैलने से सब मीन ऐसे भुन गये, जैसे वे काले समुद्र-रूपी भांड में तप्त घृत में भूने गये हों।

असंख्य भीषण बाणों ने रक्तमुख होकर समुद्र के जल को निःशेष पी डाला। उसमें स्थित रत्न-समुदाय, आग से तप्त हो जाने के कारण, अग्निकणों के समान बिखर गये।

सर्वत्र अग्नि के व्याप्त होने से मज्जा से भरे हुए असंख्य मीन एवं शंख-समुदाय, शाक एवं कंद के समान ढेरों में समुद्र के मध्य पड़े थे, जैसे वे उबले हुए जल में पकाये गये हों।

उष्ण शरों से मीनकुल यों जला, जैसे बाँसों के वन में आग भड़क उठी हो। जीव-जन्तुओं के द्वारा उगले गये रुधिर-प्रवाह, समुद्र-जल की समता करते हुए, तरंगित हो रहे थे।

प्रभु के तीक्ष्ण शर के लगने से पर्वतों पर दृढ़ता से मिट्टी में जड़ जमाये खड़े वृक्ष

कट-कटकर उड़ रहे थे और ज्यों-ज्यों उनपर समुद्र से उठनेवाली अग्निशिखाएँ लगती थीं, त्यों-त्यों वे ऐसे जल उठते थे, जैसे तेल में भिगोये गये हों।

रामचन्द्र के बाण ब्रह्मदेव के शाप के समान अत्यंत तीक्ष्ण थे और मन से भी अधिक वेग से जा रहे थे। समुद्र में यत्र-तत्र अग्निशिखाएँ भड़क उठी थीं। वह दृश्य ऐसा था, मानों समुद्र कमल-पुष्पों से शोभायमान एक सरोवर बन गया हो।

महान् लोग यदि क्रोध करें, तो भी उससे हित ही होता है। यहाँ भी वही बात हमने देखी। लवणसमुद्र नाम पाने से जिसे अपयश प्राप्त हुआ था, वह समुद्र अब 'अप्पुक्कडल'[1] बन गया।

(प्रलयकाल में) पृथ्वी को जल निगल जाता है। उस जल को अग्नि पी जाती है।—इस तत्त्व को अब प्रभु ने प्रमाणित कर दिखाया। जो भगवान् एक के ऊपर एक स्थित अनेक ब्रह्मांडों को उठाकर निगल जाते हैं, उनके लिए यह कार्य क्या दुष्कर है?

मंगल से युक्त तपस्वी, जो रात-दिन उस समुद्र में रहकर तपस्या करते थे, भगवान् के चरणों का ध्यान करते रहने के कारण, ताप से पीडित नहीं हुए। उमड़ती अग्नि-रूपी जल में भी वे अक्षत रहे।

दक्षिण, पश्चिम आदि सब दिशाओं में प्रभूत धूम उठकर भर गया। जिससे (झुलसकर) काले पड़े हुए सूर्य के घोड़े खड़े हो गये और मार्ग से भटककर आगे नहीं जा सके।

'वियोग में कैसा दुःख होता है, यह जानकर भी ये (राम) न जाननेवाले की तरह कार्य कर रहे हैं'—यों सोचते हुए पक्षी, राम के शरों से उनकी पत्नियों के विद्ध होने पर, दुःखी होकर स्वयं भी अग्निज्वाला में गिर जाते थे।

काला समुद्र रोष-भरे राम के बाणों से ऐसे जलने लगा, जैसे बाँस का वन जल उठा हो। उसका वर्णन कैसे करूँ? उसकी अग्नि से सर्वत्र धूम ऐसे उठा कि अनिमेष (देवताओं) ने भी अपने पलक बंद कर लिये और उनकी देह में स्वेद छा गया।

जिनके कोमल चरण पुष्प पर भी चलने में हिचकते थे, ऐसी उन (सीता) की गति की समता करने में असमर्थ होकर अपयश पाये हुए हंस अग्नि से हीन कोई दिशा न होने से ऊपर नहीं उड़ सके और वरुणदेव के यश के समान ही जलकर भस्म हो गये।

विशाल समुद्र के रहनेवाले पक्षी जब आकाश में उड़ने लगे, तब पिघलकर नीचे गिर पड़े; जैसे अल्प पुण्यवाले जीव स्वर्ग जाने का प्रयत्न करके भी पुनः पृथ्वी पर गिर पड़े हों।

जो जलचर पक्षी राम के बाणों से विद्ध होकर मरे, वे तो मर ही गये, पर जो विद्ध नहीं हुए, वे भी चारों ओर आग के फैल जाने से अस्त-व्यस्त हो भागने लगे और वहाँ बिखरे मोतियों को अपने अंडे समझकर उठा-उठाकर ले जाने लगे।

---

१. तमिल में 'अप्पुक्कडल' शब्द के दो अर्थ होते हैं—१. स्वच्छ जल का समुद्र तथा २. शरों का समुद्र प्रस्तुत पद्य में श्लेष के आधार पर चमत्कार है।—अनु०

समुद्र के जल में रहनेवाले (जल-) वानर यह कहते हुए कि 'हाय ! हमने इन महानुभाव (राम) को एक साधारण नर समझकर उनका उपहास किया। हम कितने मूढ़ हैं', अपने धवल दाँतों को निपोरकर गगन में उछल जाते थे।

अनेक क्रूर कार्य करनेवाले, समुद्र के मध्य छिपकर रहनेवाले तथा मांस एवं रक्त से अंचित शूल धारण करनेवाले राक्षस मरकर सूज गये और पर्वताकार होकर मरे हुए मीनों के साथ उतराने लगे।

जैसे कोई स्वर्णघट फूट गया हो, यों गगन में चलनेवाले विमान पिघलकर टुकड़े-टुकड़े हो गये। आकाश-गंगा का जल सूख गया और गगन में चमकनेवाले नक्षत्र भी झुलस गये।

रामचन्द्र के बाण अत्यन्त प्रभावपूर्ण थे, अग्नि प्रज्वलित करते थे, सीधे मार्ग पर (सन्मार्ग पर) चलते थे, तपोयुक्त थे (तपस्या से एवं ताप से युक्त थे), अति क्रोध से भरे हुए विविध रूपवाले थे ; अतः वे (बाण) वामन मुनि (समुद्र को सोखनेवाले अगस्त्य) की समता करते थे।

लहरों से भरे समुद्र की अग्निज्वालाएँ लंका के स्वर्णमय प्राचीरों से जाकर टकराईं। उन प्राचीरों को जलकर पिघलते हुए देखकर लंका के राक्षस इस आशंका से विकल हुए कि कहीं दुबारा वह दूत (अर्थात्, हनुमान्) तो नहीं आ गया।

अग्नि से जलकर कांति बिखेरनेवाले स्वर्णमय (त्रिकूट-पर्वत के) शिखर पिघल गये और रुधिर से सिंचित एवं लाल होकर पलाश-पुष्प के समान लगने लगे। प्रवाल-लताएँ जलकर कोयले के समान काली हो गईं।

पर्वत के जैसे बड़े आकरवाले मत्स्य भी किसी भी दिशा में जाकर जीवित नहीं बच सके। कुछ जल के भीतर जा घुसते और कुछ यह सोचकर कि जलते हुए जल से पृथ्वी ही अच्छी है, धरती पर उछल आते थे।

वे बाण लहरों से भरे समुद्र के जल को पीकर, धरती को भेदकर पाताल में जा घुसते थे और सूर्य के समान प्रकाश फैलाकर वहाँ के अंधकार को भी मिटा देते थे।

काले समुद्रों के साथ सारे लोक को तप्त करके वे बाण, आगे बढ़कर, ब्रह्मांड के भी परे निकल जाते थे और वे (ब्रह्मांड को) बाहर से आवृत करके रहनेवाले समुद्र को भी सुखा देते थे।

समुद्र से जो रत्न ढेरों में बिखरकर गिरते थे, वे ऐसे लगते थे, जैसे समुद्र का रक्त बिखर रहा हो। समुद्र-जल के सूख जाने पर उसमें जो बड़े-बड़े साँप पड़े थे, वे ऐसे लगते थे, मानों समुद्र की आँतें बाहर निकल पड़ी हों।

समुद्र का जल सूख जाने से अनेक रत्नों से भरा हुआ वह (समुद्र) रत्नपेटिका के समान लगता था। शंखों के रंध्रों में शर लगने से वे शब्दायमान शंख कलछुल के जैसे लगते थे।

शत-सहस्र बाण लगने से शत पर्वतों के सहस्र कोटि टुकड़े हो गये। मुक्ताएँ

भी एक-एक की सौ-सौ हो गईं। बड़े लोगों के क्रोध करने पर भी क्या उससे किसी की कुछ कमी हो सकती है ?

(सृष्टि करनेवाले) भगवान्, जब स्वयं क्रुद्ध हो गये, तब उनके हाथ मिटनेवाले सब प्राणी मोक्ष पा गये। बाँसों के वन में जैसे आग लगी हो, यों अग्निज्वाला (समुद्र में) भड़क उठी। उससे गगन की नदी का जल भी सूख गया।

यम के समान तीक्ष्ण बाणों से भूमि का हरित वस्त्र जल गया और वह (धरती) अग्नि-रूपी लाल वस्त्र से शोभायमान हुई।

एक विद्वान् दूसरे विद्वान् को देखकर जैसे ईर्ष्या करता है, वैसे ही समुद्र में स्थिर वडवाग्नि, विजयी प्रभु के शरों से उत्पन्न अग्नि को समुद्र का जल पीते हुए देखकर, जैसे ईर्ष्या कर उठी और उमड़ आई, मानों किसी दूसरे समुद्र में जाकर रहने की इच्छा से उमड़ आई हो।

ऐसी महान् अग्निज्वाला सारे संसार को आवृत कर सब प्राणियों को स्वर्ग पहुँचाने लगी। ऐसा लगता था, मानों उस दिन सारी सृष्टि को मिटानेवाला प्रलय ही आ गया हो।

धरती से जो अग्निशिखा स्वर्ग तक उठी थी, उससे तप्त होकर स्वर्ग के निवासी उस लोक से ऊपर उठकर ब्रह्मा के सत्यलोक में जाकर शरण पाने लगे। तो अब अन्य लोकों के निवासियों के बारे में क्या कहा जाय ?

तब प्रभु ने यह विचार करके कि '(संसार के) अहित की मैं क्यों चिन्ता करूँ, अब (ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर) वरुण को विवश कर दूँगा', असंवरणीय क्रोध से भरकर ब्रह्मास्त्र का संधान किया। तब सभी देवता उससे भय-विकंपित हो गये।

सभी पर्वत हाहाकार कर उठे। वरुण का मुँह सूख गया। सभी प्राणी दुहाई देने लगे। सारी नदियाँ थम गईं। इस डर से कि अब किसी दिशा में कोई भी जीवित नहीं रह सकेगा, सभी जीव अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

ब्रह्मांड के बाहर स्थित महाजलधि भी उबल उठी, तो (इस लोक के) सप्त समुद्रों के बारे में क्या कहा जाय ? शिवजी की जटा में आदिकाल से स्थित गंगा भी काँप उठी। ब्रह्मा के कमंडलु में स्थित जल भी 'कुलु-कुलु' करके उबल उठा।

ज्ञानी कह उठे—'जब (राम) प्रार्थना कर रहे, थे तब यह वरुण उनको संसार की सृष्टि करनेवाले तथा उसका विलय करनेवाले भगवान् के रूप में नहीं पहचान सका। उन (राम) का क्रोध देखकर भी वह प्रकट नहीं हुआ। ऐसे वरुण से बढ़कर विरुद्ध आचरण करनेवाला क्या और कोई राक्षस हो सकता है ?

अन्य (पृथ्वी, वायु आदि) भूत यह कहकर वरुण की निन्दा करने लगे कि जो भगवान् अन्य किसी वस्तु की सहायता के विना स्वयं अपने से ही इस सृष्टि की रचना करता है, वही अब क्रुद्ध हो उठा है। अतः, हमारे जैसे दोषहीन भूत भी अब विनष्ट हो जायेंगे। हाय ! यह सब वरुण के कारण हो रहा है।

इसी समय, प्रज्वलित अग्निशिखा के साथ अत्यधिक धूम से घिरा हुआ, कहीं कोई मार्ग न देख पाता हुआ और आँखों से अश्रु बहाता हुआ वरुण, भयभीत और द्रवित होकर, दूध के समान स्वच्छ हृदय के साथ, हाथ जोड़े हुए आकर (राम के सम्मुख) प्रकट हुआ और बिलखते हुए यों कहने लगा—

'श्वान के समान नीच मैं, सप्त समुद्रों के उस सिरे पर था। अतः, यह नहीं जान सका कि आपने मेरा स्मरण किया है'—यह कहता हुआ जल-देवता वरुण राम के रोष को शान्त करता हुआ अग्निशिखाओं से आवृत समुद्र-तरंगों से होकर ऐसे आया, जैसे अग्नि पर ही चला आ रहा हो।

उस (वरुण) का सिर जल गया। उसकी देह झुलस गई। उसका मन भय से त्रस्त हो गया। चारों ओर धूम से घिरा हुआ वह वरुण अत्यन्त विकल होकर घबराया हुआ मुँह से शब्दों को बिखेरता हुआ आया।

'हे समस्त लोकों के प्रभु! यदि स्वयं तुम्हीं क्रोध करने लगे, तो तुम्हारी शरण के अतिरिक्त और कहाँ रक्षा हो सकती है? ऐसी रक्षा का कार्य तुम्हारे लिए कुछ कठिन नहीं है। मेरा और कोई सहायक भी नहीं है। अभय दो! अभय दो! हे प्रभु शरण दो!'—वरुण बार-बार इस प्रकार पुकार करने लगा।

'हे प्रभु! तुम जल हो, अग्नि हो। इनके अतिरिक्ति समस्त भूत तुम्हीं हो। समस्त लोक तुम्हीं हो। उन लोकों में स्थित समस्त प्राणी तुम्हीं हो। हे चक्रधारी! यह दास तुमको कैसे भूल सकता है? अब प्रज्वलित वह्नि से घिरकर मैं जल रहा हूँ। हे वेद-मूर्त्ति! रक्षा करो!'

'तुम्हीं सारी सृष्टि को प्रकट करते हो, उसकी रक्षा करते हो और अन्त में प्रलयाग्नि से उसे विनष्ट कर देते हो। तुम्हारे लिए क्या कठिन है? तुम एक ही तीक्ष्ण बाण से सब लोकों को जला सकते हो। मुझ श्वान-जैसे एक व्यक्ति पर क्या इतना कोप आवश्यक है?'

'अपनी प्रचंड किरणों-रूपी खड्ग से घने अन्धकार का नाश करनेवाले सूर्य-मंडल में तुम्हीं रहते हो! हे ज्योतिरूप! हे वेदों के प्राण! आदिब्रह्मा से लेकर सकल चर और अचर वस्तुओं के अन्तःकमल में रहनेवाले! हे भगवन्! हे पुरातन! तुम्हारी जय हो! जय हो।'

''जब मकर से ग्रस्त होकर महागज ने यों पुकारा था कि 'हे सारी सृष्टि के रचयिता! सबके आदिकारण! हे करुणालु! रक्षा करो!' तब तुम गरुड पर आरूढ होकर प्रकट हुए थे और उसके महान् शोक को मिटाया था। हे पुरातन पुरुष! तुम्हारी जय हो! जय हो!''

'तुम्हीं माता हो! पिता हो! अन्य सब कुछ तुम्हीं हो। भूत तुम्हीं हो, भविष्य तुम्हीं हो। पतन तुम्हीं हो और उत्थान भी तुम्हीं हो। हे प्रभु! यह कैसी बात है कि तुमने मेरा तिरस्कार किया! हे ईश्वर! तुम जब स्वयं अपने प्रभाव को नहीं जानते हो, तो अब मैं तुम्हें कैसे समझ पाऊँ?'

घोर अंधकार को मिटानेवाले सूर्य को भी मंद कर देनेवाले महान् प्रकाश से युक्त होकर वह वरुण, धरती पर चलकर आया और यह कहता हुआ कि 'हे सहस्रनामवाले परमात्मा! शरण दो। यदि छोटे लोग अपराध करें, तो उन्हें क्षमा करना बड़ों का ही कर्त्तव्य होता है'—राम के चरणों पर आकर गिर पड़ा।

जैसे सारा अंतरिक्ष जल रहा हो, यों अत्यधिक प्रकाश को सर्वत्र फैलाता हुआ वरुण 'अभय दो' कहता हुआ जब उनके चरणों पर आ गिरा, तब अदम्य प्रभाववाले प्रभु का क्रोध वैसे ही शांत हो गया, जैसे उबलनेवाला दूध शीतल जल का स्पर्श पाकर शांत हो जाता है।

हम शान्तक्रोध हो गये। अपनी कृपा से तुमको हमने अभय प्रदान किया। जब नम्रतापूर्वक प्रार्थना की थी, तब तुम प्रकट नहीं हुए। किन्तु, जब हम रोष करके उठे, तब तुम प्रकट हुए हो। इसका क्या कारण है? कहो।'—राम के वचन सुनकर वरुण हाथ जोड़कर बोला—

'हे प्रभु! मुझे अभी तुमसे यह समाचार विदित हो रहा है कि क्षमा-गुण में पृथ्वी से बढ़ी हुई और पातिव्रत्य-धर्म से पूर्ण सीता दारुण दशा में पड़ी हुई हैं? यह विषय पहले मैंने देवों से नहीं सुना था। सप्तम समुद्र में रहनेवाले मीनों में घोर युद्ध हो रहा था। उसी युद्ध को शान्त करने के लिए मैं गया हुआ था। अतः, मैं शीघ्र यहाँ नहीं आ सका।'

उसके इतना कहते ही प्रभु ने उसपर कृपा करके पूछा—अब मेरे इस अमोघ शर का लक्ष्य क्या हो? कहो। तब वरुण बोला—ठीक है! प्रभु! यह भी अच्छा ही हुआ। यह संसार और मैं दोनों एक दुःख से अब मुक्त हो रहे हैं। तुम्हारे शर का लक्ष्य क्या हो, मैं कहता हूँ—

'मरुकांतार नामक एक द्वीप में शतकोटि से भी अधिक राक्षस रहते हैं। उनसे सारा लोक विनष्ट हो रहा है। हे प्रभु! तुम अपने इस अग्निमुख बाण का लक्ष्य उन लोगों को ही बनाओ।'

तब वेदज्ञों के ज्ञान के भी परे रहनेवाले प्रभु ने अपने शर को आज्ञा दी—'तू जाकर उन असंख्य राक्षसों को मिटा दे।' एक क्षण व्यतीत होने के पूर्व ही वह शर उन सबको विनष्ट करके लौट आया।

सद्धर्म का अनुसरण कर सत्यकार्य करनेवाले लोगों को सदा हित की ही प्राप्ति होती रहती है। उनकी कभी हानि नहीं होती। विनाशकारी बाण ने वरुण पर आकर भी पाप करनेवाले राक्षसों का ही विनाश किया।

अनेक कोसों की दूरी पार करके उस शर ने पाप-ही-पाप करते रहनेवाले राक्षसों को जलाकर, धुआँ बनाकर उड़ा दिया। वह बाण दीप के समान ज्ञान से पूर्ण वेदज्ञ मुनि के शाप के समान था। अहो! धर्म ही सदा बलवान् होता है।

'तुमने मुझसे अभय माँगा। अतः मैंने अपना क्रोध शान्त किया। अब तुम

मुझे मार्ग दो, जिससे जाकर मैं अपने लिए अपयश उत्पन्न करनेवाले पापी राक्षसों का विनाश कर सकूँ'—यों राम ने कहा।

तब वरुण ने कहा—हे प्रभु! मेरी गहराई और विशालता मेरे लिए भी अपरिमेय है। इधर सप्तलोक भी असीम रूप में फैले हैं। अतः, मुझे सुखाना कठिन है। यदि अनन्त काल तक तुम्हारी सारी सेना मेरे जल को उलीचती रहे, तब भी यह कार्य पूर्ण नहीं होगा।

यदि मेरा जल सूख जाय, तो संख्यातीत प्राणी तुरन्त मर जायेंगे। अतः, एक उपाय बताता हूँ। तुम मेरे ऊपर एक सेतु बनवा दो। उसे मैं अनन्त काल तक ढोता रहूँगा। उसपर चलकर तुम अपना कार्य पूर्ण करो।

तब प्रभु बोले—ठीक है! ऐसा ही करेंगे। समुद्र पर हम सेतु बनायेंगे, जिससे सब भूत भी सुखी रह सकें और हमारा कार्य भी पूर्ण हो जाय। फिर, प्रभु ने वानरों को यह आज्ञा देकर कि वे शैलों को लेकर सेतु बनावें, अपने आवास को चले गये। वरुण भी संतुष्ट होकर चला गया। (१—८५)

●

अध्याय ७

सेतु-बंधन पटल

कपिराज (सुग्रीव) ने अपार ज्ञान से युक्त सेनापतियों तथा राक्षसेश्वर (रावण) के अनुज (विभीषण) के साथ परामर्श किया। फिर, उचित कार्य संपन्न करने के लिए नल (नामक वानर) को आने की आज्ञा दी।

वानर-शिल्पी नल आया। उसने अपने राजा से पूछा—'क्या आज्ञा है?' राजा ने आज्ञा दी—'वीचियों से भरे समुद्र में सेतु बनाना है।' तब उस अनिन्दनीय नल ने कार्य आरंभ किया।

नल ने कहा—'समुद्र को बाँधकर सेतु बनाना ही कार्य है न? मैं ऐसा सेतु बनाऊँगा कि मेरु और अणु दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जायगा। पत्थर की चट्टान उठवाकर मँगाइए।'

तब जाम्बवान् ने घोषणा की—अनुजदेव (लक्ष्मण), प्रभु (राम), लंकापति (विभीषण) तथा हमारे कुल के राजा (सुग्रीव) को छोड़ अन्य सभी समुद्र में बाँध बनाने के लिए आयें।

एक समुद्र पर बाँध बनाने के लिए दूसरा एक समुद्र चला आया हो, इस प्रकार वानरों के दल काले पर्वतों को असंख्य परिमाण में दोनों हाथों, कंधों और सिरों पर रखकर ले आये।

कुछ (वानर) पहाड़ों को उखाड़ते थे। उखाड़े गये पहाड़ों को कुछ वानर खींच ले आते थे। कुछ सिर पर उठाकर लाते थे। कुछ वानर उन पर्वतों को पानी पर रखते थे और कुछ खड़े-खड़े शोर करते और नाचते-गाते थे।

कोई वानर एक पर्वत को पैरों से ढकेलता, कोई भारी पर्वत को अपने हाथों पर उठा ले आता और कोई गगनचुंबी शिखरों से युक्त मेघों से आवृत किसी पर्वत को पूँछ से घसीटकर ले आता था।

तीन करोड़ वानरों के उठा-उठाकर पर्वत लाने पर भी नल उन सबको 'लाओ! लाओ!' कहकर ललकारता और लाये हुए पर्वतों को एक हाथ से उठाकर सेतु में रख देता। वह अपनी शक्ति से समुद्र को कंपित कर रहा था।

मेघों से आवृत बड़े-बड़े पर्वतों को बड़े-बड़े वानर उठा लाते थे और समुद्र में फेंक देते थे, किन्तु नल अपने कौशल से उन सबको ऐसे ही सँभाल लेता था, जैसे 'वेण्णै नल्लूर' (नामक गाँव) में 'शडैयन्'[1] (नामक दानी) अपने आश्रय में आनेवाले असंख्य व्यक्तियों को सँभाल लेता है।

विजयी कपिवीर जब ऐसे ऊँचे पर्वतों को अपने पैरों से ढकेलकर लाते थे, जिनके सानुओं में हरिणांकित चन्द्रमा क्रीडा करता रहता था, तब मेघ-समूह घबराकर बिखर जाता था ; यक्ष अपनी पत्नियों के साथ उठकर दूर हट जाते थे।

वे वीर जब एक पर्वत के ऊपर दूसरे को फेंकते थे, तब उनसे अग्निकण निकलकर चारों ओर बिखर जाते थे और वरुण अपने जल में उन अग्निकणों को देखकर आशंका कर उठता था कि जाने यह अग्नि किसकी उत्पन्न की हुई है।

गवाक्ष नामक एक वानर एक काले पर्वत को उखाड़ लाया और उसे समुद्र में फेंका। तब स्वच्छ कांतिवाले मोती, जलबिंदुओं के साथ उड़कर, आकाश में जा पहुँचे और वहाँ स्थित नक्षत्रों के साथ प्रतिद्वंद्विता करने लगे।

जब वानर बड़े-बड़े हाथियों से भरे पर्वतों को लाकर समुद्र में फेंकते, तब उससे मोती उड़कर आकाश में फैल जानेवाले और मेघों में जा लगते। इससे आकाश ऐसा लगता था, मानों आकाश-रूपी वितान को मोतियों से सजाया गया हो।

जब वानर, बाँसों से भरे पर्वतों को समुद्र में फेंकते थे, तब उनसे छिटककर जल-बिंदु स्वर्गांगनाओं के वस्त्रों पर जा गिरते थे और उन (देवस्त्रियों) के नितंबों पर उन (गीले) वस्त्रों के लगने से उनके अंश प्रकट हो जाते थे। इस प्रकार अपने अंगों को प्रकट होते देख वे लज्जित हो जाती थीं।

मधु के छत्तों से पूर्ण पर्वतों को जब (वे वानर) समुद्र में फेंकते थे, तब उनसे उड़कर जलबिंदु स्वर्ग में जा पहुँचते थे और स्वर्ग में मानों वर्षा होने लगती थी।

---

१. 'शडैयन्' तमिलनाडु में एक प्रसिद्ध दानी था। महाकवि कंबन को उसी ने आश्रय दिया था कंबन ने अपनी इस प्रसिद्ध रचना में दस स्थानों पर अपने आश्रयदाता के महत्त्व का वर्णन इसी रीति से किया है। —अनु०